दो शब्द

श्री तारकनाथ वाली की पुस्तक सुमित्रानन्दन पन्त का पहली वार व्यापक दृष्टिकोण और निष्पक्ष मूल्याकन को महत्त्व देती है, क्योकि अब तक की आलोचनाएँ अपने विशेष पूर्वाग्रहो को लेकर लिखी गई हैं। यही कारण है कि इस रचना में बौद्धिक जागरूकता ही नही, विचारो को विकास पथ पर ले जाने वाली चेतना भी मिलती है।

सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी काव्य का एक स्तम्भ है। उसका अभी मूल्याकन नही हुआ। केवल उसके प्रति नवीनता का चमत्कार ही देखना, वास्तव मे उसके बाह्यरूपमात्र को देखना है, जबकि हमे उसके काव्य को आन्तरिक शक्ति को देखना है, उस सास्कृतिक धरोहर को जो वह अतीत मे से छान कर लाया है और वर्तमान से उसका तादात्म्य करके, अपने ही ढङ्ग से भविष्य के लिए प्रस्तुत कर रहा है। यह प्रश्न तो एक पक्ष मात्र है कि आलोचक उसके निर्दिष्ट पथ को स्वीकार करता है या नही, प्रश्न यह है कि जिस गरिमावृत्ति को पन्त ने प्रस्तुत किया है वह मानव के लिए कितनी रसवन्ती है, कितनी सप्राण है और उसमे मानसिक स्तर की गहराइयो मे हृदय को छूने की कितनी शक्ति है।

श्री तारकनाथ वाली ने पन्त के दो रूप स्वीकार किए है कि पन्त मे बुद्धि और भाव दो पक्ष हैं और दोनों का ही उसमे साधारणीकरण हुआ है, ऐसे ही जैसे कि तुलसी और कबीर मे। यह निस्सन्देह एक नया दृष्टिकोण है और वस्तुत. यह रसवाद के आधार साधारणीकरण को शास्त्रीय पक्ष मे व्यापक बनाने का ही प्रयत्न नही, वरन् उनकी एक नयी देन भी है। मेरे मतानुसार तो

यह द्वन्द्व रसवाद मे पुराना है। अपने शब्दो मे कहूँगा कि तारकनाथ बाली ने रसवाद के आधार मे केवल व्यक्ति को न लेकर, समाजपक्ष की भी स्वीकृति दी है, क्योकि अन्ततोगत्वा वे भी मानवतावाद को ही सिस्रष्टु की चेतना का मूल मानते है और इस प्रकार वे भी वर्तमान के बौद्धिक और हृदयगत द्वन्द्वो को मिटाकर नये मानव को सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

आदर्श और यथार्थ को उन्होने अपने-अपने अन्योन्याश्रित पक्ष मे प्रगति माना है, और मेरे मतानुसार इस प्रकार उन्होने इस दूसरी नयी बात को कहा है कि प्रगति मनुष्य के घिराव मे नही, उसके व्यापकत्व में भी है।

उन्होंने पहली बार सुमित्रानन्दन पन्त पर ठोस विषय का प्रतिपादन किया है। अरविन्द के प्रभाव को इतनी समीचीनता से पन्त के साथ रखकर नही देखा गया था।

मै समझता हूँ हिन्दी में यह पुस्तक अपना विशेष महत्त्व रखती है, क्योकि पन्त की विचारधारा की शृंखला का एक आभास आपको यहाँ मिलेगा, और उसमे पन्त के युगोचित मूल्याकन का प्रयास भी स्पष्ट दिखाई देगा।

—रांगेय राघव

भूमिका

पन्त की अनेक रूप कला और बहुविध चिन्तन का 'परिदर्शन' मात्र करा देना ही प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नही है। स्थान-स्थान पर पन्त की मान्यताओ की यथोचित मीमासा और आलोचना भी की गई है। 'चिन्तन' का विस्तार अधिक है। पन्त को समझने के लिए यह आवश्यक था।

इस पुस्तक में आलोचना-जगत के सामने कुछ नई मान्यताए रखी गई है। 'बुद्धिगत साधारणीकरण' की बात से अनेक विद्वान चौंकेंगे। किन्तु बुद्धिगत साधारणीकरण की कसौटी पर केवल आधुनिक साहित्य ही नही, कबीर और तुलसी की अनेक रचनाओ का भी सही मूल्याकन करना आवश्यक है। 'रामचरित मानस' के उपदेशात्मक खण्डो और कबीर की साखियो के साहित्यिक उत्कर्ष का कारण तुलसी और कबीर के सिद्धातो का बुद्धिगत साधारणीकरण ही है।

बुद्धिगत साधारणीकरण की स्थापना भावगत साधारणीकरण को उखाडने के लिए ही नही की गई है। दोनों एक दूसरे के विरोधी नही, पूरक है। यदि कोई यह पूछे कि दोनो सिद्धान्तो मे से कौनसा अधिक महत्त्वपूर्ण है तो मैं उनसे यह पूछूंगा कि विनय-पत्रिका का 'केशव कहि न जाय का कहिए' पद अधिक महत्त्वपूर्ण है या 'सुनि सीतापति सील सुभाउ' पद अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा कबीर की साखियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं या उनके पद ?

'यथार्थ, आदर्श और प्रगति' मे मैंने तीनो प्रमुख वादो की नई विवेचना की है। इन वादो के अलग-अलग कटहरे समझना मुझे अवैज्ञानिक प्रतीत हुआ।

पन्त साहित्य के आलोचनात्मक और कलात्मक अध्ययन के लिए यह आव-

यह द्वन्द्व रसवाद मे पुराना है। अपने शब्दो मे कहूँगा कि तारकनाथ वाली ने रसवाद के आधार मे केवल व्यक्ति को न लेकर, समाजपक्ष की भी स्वीकृति दी है, क्योकि अन्ततोगत्वा वे भी मानवतावाद को ही सिस्रष्टु की चेतना का मूल मानते हैं और इस प्रकार वे भी वर्तमान के बौद्धिक और हृदयगत द्वन्द्वो को मिटाकर नये मानव को सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

आदर्श और यथार्थ को उन्होने अपने-अपने अन्योन्याश्रित पक्ष में प्रगति माना है, और मेरे मतानुसार इस प्रकार उन्होने इस दूसरी नयी बात को कहा है कि प्रगति मनुष्य के घिराव मे नही, उसके व्यापकत्व मे भी है।

उन्होंने पहली वार सुमित्रानन्दन पन्त पर ठोस विषय का प्रतिपादन किया है। अरविन्द के प्रभाव को इतनी समीचीनता से पन्त के साथ रखकर नही देखा गया था।

मैं समझता हूं हिन्दी में यह पुस्तक अपना विशेष महत्त्व रखती है, क्योकि पन्त की विचारधारा की शृखला का एक आभास आपको यहाँ मिलेगा, और उसमे पन्त के युगोचित मूल्याकन का प्रयास भी स्पष्ट दिखाई देगा।

—रांगेय राघव

भूमिका

पन्त की अनेक रूप कला और बहुविध चिन्तन का 'परिदर्शन' मात्र करा देना ही प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नही है। स्थान-स्थान पर पन्त की मान्यताओ की यथोचित मीमासा और आलोचना भी की गई है। 'चिन्तन' का विस्तार अधिक है। पन्त को समझने के लिए यह आवश्यक था।

इस पुस्तक मे आलोचना-जगत के सामने कुछ नई मान्यताएं रखी गई है। 'बुद्धिगत साधारणीकरण' की बात से अनेक विद्वान चौंकेंगे। किन्तु बुद्धिगत साधारणीकरण की कसौटी पर केवल आधुनिक साहित्य ही नही, कबीर और तुलसी की अनेक रचनाओ का भी सही मूल्याकन करना आवश्यक है। 'राम-चरित मानस' के उपदेशात्मक खण्डो और कबीर की साखियो के साहित्यिक उत्कर्ष का कारण तुलसी और कबीर के सिद्धान्तो का बुद्धिगत साधारणीकरण ही है।

बुद्धिगत साधारणीकरण की स्थापना भावगत साधारणीकरण को उखाड़ने के लिए ही नही की गई है। दोनो एक दूसरे के विरोधी नही, पूरक हैं। यदि कोई यह पूछे कि दोनो सिद्धान्तो मे से कौनसा अधिक महत्त्वपूर्ण है तो मैं उनसे यह पूछूंगा कि विनय-पत्रिका का 'केशव कहि न जाय का कहिए' पद अधिक महत्त्वपूर्ण है या 'सुनि सीतापति सील सुभाउ' पद अधिक महत्त्वपूर्ण हैं अथवा कबीर की साखियां अधिक महत्त्वपूर्ण हैं या उनके पद ?

'यथार्थ, आदर्श और प्रगति' मे मैंने तीनो प्रमुख वादो की नई विवेचना की है। इन वादो के अलग-अलग कटहरे समझना मुझे अवैज्ञानिक प्रतीत हुआ।

पन्त साहित्य के आलोचनात्मक और कलात्मक अध्ययन के लिए यह आव-

श्यक था कि कवि की नवीन रचनाओ के विषय मे भी प्रकाश डाला जाए। 'चिन्तन' में पन्त के नवीनतम दृष्टिकोण का विशद स्पष्टीकरण और उचित मूल्याकन करने का प्रयत्न किया है।

मैंने पन्त की विराट समन्वय भावना पर भी पूर्ण प्रकाश डालने की चेष्टा की है। एक विशेष बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि यह समन्वय परवर्ती काव्य में नही, उत्तरा की भूमिका (शब्द के दोनो अर्थो मे) है। पन्त ने स्वय लिखा है कि उत्तरा मे तो स्वर्ण चेतना की दिव्य क्रीडाओ को सकेतात्मक कला में मूर्त्तिमान करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का भूमिका भाग 'सुमित्रानन्दम पन्त' नाम से पृथक भी छपा है।

अन्त मे मैं उन सब विद्वानो का आभार स्वीकार करता हूँ जिनके उद्धरण मैंने पुस्तक मे दिए हैं।

रक्षाबन्धन स० २०१२

—तारकनाथ बाली

माधव आश्रम, आगरा छावनी

नवीन-संस्करण

'आधुनिक कवि पन्त' का दसवाँ संस्करण पन्तजी की काव्य-धारा का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसमें कवि की परिपक्व और अभिनव कवि-प्रतिभा से प्रसूत कविताओ का सग्रह है। इस नवीन-सस्करण मे समस्त कविताओ की विस्तृत व्याख्या और समीक्षा इस प्रकार की गई है कि विषय-वस्तु के स्पष्टीकरण के साथ पन्तजी की अभिनव-विचारधारा और कवि प्रतिभा का सम्यक् निरूपण हो सके। व्याख्या और समीक्षा से पहले पन्त जी की काव्यधारा, काव्य-कला-सौन्दर्य एव उनकी विभिन्न भाव-धाराओ का विस्तार से विवेचन किया गया है।

'आधुनिक कवि पन्त' के उक्त दसवें संस्करण मे कविताओ मे जो परिवर्तन एव परिवर्द्धन कर दिया गया है। उसी के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त और उनका आधुनिक कवि' मे व्याख्या, समीक्षा और आलोचना को रखा गया है।

इस प्रकार इस नवीन-सस्करण की उपयोगिता पिछले सस्करणो की अपेक्षा कहीं अधिक हो गई है। अत कवि पन्त की विचारधारा और काव्य-कला को समझने मे यह सस्करण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसा मुझे विश्वास है।

लेखक—

अनुक्रमणिका

१—अभिव्यंजना पद्धति	१
पल्लव की भूमिका	१
(क) भाषा का सामान्य विवेचन	१
(ख) कविता की भाषा की योग्यता	२
छायावाद	३
(१) लाक्षणिक वैचित्र्य	४
(२) प्रतीक विधान	४
(३) विशेषण विपर्यय	४
(४) विरोध चमत्कार	४
(५) मानवीकरण	५
(६) अन्योक्ति	५
अलकार	५
विकास	६
२—प्रकृति चित्रण	६
(१) आलम्बन रूप	६
(२) उद्दीपन रूप	११
(३) अलकार रूप	१२
(४) पृष्ठभूमि के रूप में	१२
(५) रहस्य सकेत	१२
(६) दार्शनिक तत्वों की उद्भावना	१३

(७) मानवीकरण १४
(८) प्रस्तुत-अप्रस्तुत १७
(९) व्यापक प्रभाव १७
(१०) मानवीकरण १८
प्रकृति के प्रति वदलता हुआ दृष्टिकोण १८
३—रससिद्धान्त की उपयोगिता २२
क्या गीत रसोद्रेक करने मे समर्थ हैं ? २२
गीत और निबन्ध २४
बुद्धिगत साधारणीकरण २५
रसानुभूति और बौद्धिक सहानुभूति ३०
वीणा ३०
ग्रन्थि और पल्लव ३१
गुञ्जन ३१
युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या ३२
परवर्ती काव्य ३४
४—प्रणय और प्रेम ३५
५—चिन्तन ३८
साहित्य और दर्शन ३८
दर्शन के दो रूप ३९
कवि को प्रभावित करने वाले स्रोत ४०
१—उपनिषद दर्शन ४१
२—अद्वैतवाद ४३
३—स्वामी विवेकानन्द ४५
४—मार्क्सवाद ५०
द्वन्द्ववाद ५०
इतिहास की भौतिक व्याख्या ५२
वर्ग-संघर्ष ५४

अर्थ-सन्चय और क्रान्ति	५४
५—महात्मा गाधी	५५
६—श्री अरविन्द	५७
चेतना और पदार्थ का सामरस्य	५७
मूल सत्य	५८
सृष्टि क्रम (विकासवाद)	६०
कवि के चिन्तन का विकास	६३
वीणा	६३
ग्रन्थि पल्लव	६४
गुन्जन	६५
युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या	६८
यथार्थ की विषमता	६८
चिन्तन का रूप	७२
(१) कोरे अध्यात्मवाद का खण्डन	७३
(२) कोरे भौतिकवाद का खण्डन	७५
(३) कोरे गाधीवाद का खण्डन	७६
(१) अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय	८३
(२) गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय	८५
(३) अध्यात्मवाद और भूतवाद का समन्वय	८८
विरोध या विकास ?	९१
बौद्धिकता की प्रधानता क्यों ?	९५
कला का अभाव क्यो ?	९६
क्या पन्त पलायनवादी हैं ?	९६
६—व्याख्या	१०१ से २७८

आह्वान

आओ हे दुर्धर्ष वर्ष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन।

अभिव्यञ्जना पद्धति

भाव की तीव्रता भाषा की सस्वरता मे, सघनता शक्तिमत्ता मे और विशदता प्राञ्जलता मे स्फुट होती हैं। यह सत्य भाव और भाषा के अभेद की ही प्रतिष्ठा करता है। सामान्य व्यक्ति के लिए जो मनोवेग-मात्र हैं, जिन्हे कि वह वाणी मे मुखर करने मे असफल है, वही कवि के सुरीले भाव हैं। एक अँग्रेज विद्वान का कथन बिल्कुल ठीक है कि कवि भावाभिव्यञ्जना के लिए शब्द ढूँढने नही जाता, वरन् उसके भाव उन शब्दों में ही रहते हैं, जो कविता बनकर फूट निकलते हैं। ऐसा क्यो होता है ? इसके उत्तर मे कवि की प्रतिभा और उसकी साधना या अभ्यास का ही नाम लेते हैं।

भाषा और भाव मे, कलापक्ष और भावपक्ष मे अभेद होने पर भी आलोचक उनका अलग-अलग विवेचन करते हैं। यह केवल सुविधा की बात है। वैसे तो साहित्य एक अखड सृष्टि है और उसे शीर्षक और उपशीर्षको के कटहरों मे बाँधकर सजाना अवैज्ञानिक है, किन्तु साहित्य मे सरल अध्ययन के लिए इसके अतिरिक्त और उपाय भी क्या हैं ? कौन यह मानने को प्रस्तुत न होगा कि साहित्य के चारो तत्त्वो—भाव, कल्पना, शैली और विचार—की सीमाएँ भौगोलिक सीमाओ सी निर्दिष्ट नही है।

'पल्लव' की भूमिका

'पल्लव' की भूमिका मे कवि ने स्वय ही काव्य के बहिरग पर अपने विचार अत्यन्त काव्यात्मक शैली मे प्रकट किए हैं। पन्त की अभिव्यञ्जना-पद्धति की सम्यक् आलोचना करने के लिए उनका सामान्य ज्ञान अनिवार्य है। नीचे उन्हे सक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है—

(क) भाषा का सामान्य विवेचन—भाषा के सामान्य विवेचन मे कवि ने

शब्द और अर्थ के अभेद की ओर तथा युग की चाल के अनुसार भाषा की प्रगति की ओर सकेत किया है। इसमे से पहली बात ऊपर पल्लवित की जा चुकी है। रही दूसरी बात, सो भाषा एक सामाजिक सस्था है। समाज के सास्कृतिक और राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ भाषा की शक्ति, वाक्य विन्यास, शब्दकोष आदि मे परिवर्तन हुआ ही करता है। इसका विस्तृत विवेचन भाषा-विज्ञान की पुस्तको मे मिलेगा।

इसके पश्चात् कवि ने ब्रजभाषा और खडी बोली के विरोध एव खडी-बोली की आपेक्षिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। पन्त के अनुसार ब्रजभाषा मे कविता करने मे दो दोष हैं। प्रथम यह कि ब्रजभाषा मे खडी बोली जैसी शक्ति नही है। वह निष्प्राण है और इसी कारण उसमे विभिन्न विषयों का कलात्मक स्फुरण असम्भव है। द्वितीय, यह एक बडी विडम्बना होगी यदि हम सोचें और बोलें एक भाषा मे तथा लिखें दूसरी भाषा मे।

(ख) **कविता की भाषा की योग्यता**—इसके अतिरिक्त कवि ने कविता की भाषा के काव्य गुणो के विषय मे भी अपना मत प्रकट किया है।

कविता की भाषा का प्राण राग है। राग का अर्थ है शब्दो का पारस्परिक आकर्षण या सामरस्य। कविता का प्रत्येक शब्द अपने साथी के लिए अजनबी न हो, वह अपनी सत्ता सबसे अलग न दिखाता हो, वह अन्य शब्दो के स्वर और सामर्थ्य मे घुल-मिल कर एक प्राण हो जाए। एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले अनेक शब्द होते हैं। किन्तु प्रस्तुत के वर्णन मे उनमे से किसका चयन करना होगा, यह अन्य शब्दो से उसके सामरस्य और भाव से उसके स्वरैक्य पर अवलम्बित होगा। कवि ने ऐसे अनेक उदाहरण दिए हैं, जिनमे पर्यायवाची शब्दो से भी वह भिन्न-भिन्न गुणो से युक्त अर्थ का बोध करता है। 'अनिल' मे उसे कोमल शीतलता का अनुभव होता है, और 'वायु' में निर्मलता और लचीलेपन का, 'प्रभञ्जन' शब्द करता हुआ, बालू-पत्रो को उडाता ले चलता है, 'श्वसन' मे सनसनाहट है, 'पवन' मे कवि को ऐसे लगता है जैसे हवा रुक गई हो, 'समीर' लहराता हुआ बहता है।

कविता के लिए चित्र भाषा और चित्र राग की अपेक्षा होती है। चित्र-भाषा से कवि का अभिप्राय उस भाषा से है जिसका प्रत्येक शब्द सस्वर हो।

उसका अर्थ उसमे से वैसे ही फूट पडता हो, जैसे सेव की लालिमा बाहर छिटक पडती है। किन्तु शब्द की अर्थोद्‌बोधन की इस शक्ति को परख के लिए कवि का हृदय चाहिए। सामान्य पाठक इसे न देख पाएगा। किन्तु यह शक्ति पाठक को प्रभाव की सघनता मे लय कर देगी। पाठक के लिए इसकी यही उपयोगिता है।

भाव और भाषा के सामजस्य को ही कवि चित्र-राग कहता है। वस्तुत. चित्र-भाषा और चित्र-राग मे कोई भेद नही। विवेचन मे भेद इसलिये पड़ जाता है कि चित्र-भाषा में कवि प्रत्येक शब्द और उसकी निजी शक्ति के सामरस्य की बात कहता है और चित्र-राग मे भाषा और भाव के समय स्वरैक्य की ओर दृष्टिपात करता है।

भाषा का ऐसा ही विवेचन सस्कृत के प्राचीन आचार्यो द्वारा प्रतिपादित गुण (माधुर्य्य, ओज और प्रसाद) तथा रीति (वैदर्भी, गौणी, पाचाली) के सामजस्य मे मिलता है।

कविता के लिये अलङ्कार वहा तक आवश्यक है जहाँ तक वह विषय को उदात्त रूप मे प्रकाशित करने के लिये सहायक हो। कविता-कामिना के लिये अलङ्कार भार-स्वरूप नही, हार-स्वरूप हो।

खडी-बोली की कविता के लिये कवि के अनुसार मात्रिक छन्द ही अधिक उपयुक्त हैं। काव्य-सगीत के माधुर्य को सजाने के लिये उक्त छन्द एक प्रधान साधन हैं। इसके अतिरिक्त स्वर ही काव्य-सगीत के 'मूल तन्तु' हैं। व्यजनो का सगीत मे कोई विशेष महत्त्व नही है। तुकान्त कविता का सगीत विशेष मोहक होता है। अनुकान्त कविता मे माधुर्य की मोहिनी नही, 'कर्म का वेग' मिलता है। मुक्त छन्द वही सफल है जो लय मे नियन्त्रित हो।

छायावाद

कवि की कलापक्ष सम्बन्धी मान्यताओ को सक्षेप मे स्पष्ट करने के पश्चात् कवि के छायावादी रूप पर विचार करेंगे।

छायावाद की परिभाषा और स्वरूप के विषय में बडा भारी मतभेद है। किन्तु उन सब मतो का साङ्गोपाङ्ग ब्योरा देना इस पुस्तक की सीमा से बाहर

की बात है। शुक्ल जी ने छायावाद को दो रूपो मे ग्रहण किया है। अपने सकुचित रूप मे वह एक शैली विशेष है। जिसकी विशेषताए लाक्षणिक वैचित्र्य, प्रतीक-विधान, विशेषण-विपर्यय, विरोध-चमत्कार, मानवीकरण, अन्योक्ति-विधान हैं। व्यापक अर्थ मे छायावाद का प्रयोग रहस्यवादी गीतो के लिये भी किया जाता है।

ऊपर गिनाई हुई छायावादी शैली की सभी विशेषताए पन्त मे मिलती हैं।

(१) लाक्षणिक वैचित्र्य

सुरभि पीडित मधुपो के बाल
तडप बन जाते हैं गु जार

(मौन-निमन्त्रण)

(भवरे ही गु जार बन जाते हैं = भंवरे गु जारने लगते है)

(२) प्रतीक विधान

"उषा का था उर मे आवास"

('आंसू' की बालिका)

(उषा = दिव्य माधुर्य)

"सरल भौंहो का शरदाकाश।
घेरे लेते घन, घिर गम्भीर"

(अनित्य जग)

(घन = चिन्ताए)

(३) विशेषण विपर्यय

"शान्त, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल।
अपलक, अनन्त, नीरव भूतल।"

(नौका विहार)

(शान्त ज्योत्सना = रात्रि के समय मनुष्य, पशु, पक्षी सभी शान्त हैं। नीरव-भूतल = धरती शान्त नही, धरती के रहने वाले शान्त हैं।)

(४) विरोध चमत्कार

"नीरवतार" उषाकाल की अनिर्वचनीय शान्ति और हर्ष
"गिरा हो जाती है सनयन,

नयन करते नीरव भाषण" (स्नेह)

(व्याख्या के लिये देखिये टीका)

(५) मानवीकरण ("चाँदनी कविता)

(६) अन्योक्ति ("पतझर" कविता)

× × ×

अलङ्कार

पन्त की कविताओ मे अनेक अलङ्कारो का अत्यन्त काव्योचित प्रयोग हुआ है। सबका गिनाना यहाँ लक्ष्य नही है। केवल सागरूपक अलङ्कार के प्रयोग के विषय मे कुछ कहना है।

प्राय सभी आधुनिक कवियों में यह देखा जाता है कि अलङ्कारों के प्रयोग में भी वह शास्त्रीय-नियमो का उल्लघन करते हैं। दूर तक चलने वाले अलङ्कारो में सागरूपक मुख्य है। किन्तु इसका आद्योपान्त सफल निर्वाह आधुनिक युग के कवियो में बहुत कम मिलता है। कभी उपमा से आरम्भ करके बीच में रूपक का रूप खडा कर देते हैं, और कभी आरम्भिक सागरूपक को अन्त में उपमा या उत्प्रेक्षा में बिगाड डालते हैं।

उदाहरण के लिए—

'रगीले-गीले फूलो—मे
अधखिले भावो से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलो मे
खेलती थी तरङ्ग-मी नित।"

पहली दो पक्तियो मे उपमा है, 'बाल्य-सरिता' में 'रूपक' और 'फूलों' में रूपकातिशयोक्ति।

इसी प्रकार—

"खँच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यो बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झुला झरनो का झलमल हार

प्रथम पक्ति का रूपक वाद म 'का' जोड देने मे खण्डित हो जाता है। यह तथ्य कवियो की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का द्योतक है।

अब साम्य मूलक अलकारो पर थोडा सा विचार करेंगे। साम्य तीन प्रकार का हो सकता है। रूप या आकार का साम्य सादृश्य कहलाता है। गुणो का साम्य साधर्म्य कहलाता है और तीसरा है शब्द-साम्य जैसा कि श्लेष मे मिलता है। साधर्म्य के आधार पर खडे किए गए अलकारो मे अनुभूति की तीव्रता मिलती है। किन्तु विशुद्ध सादृश्य को लेकर चलने वाले अलङ्कारो मे प्राय अनुभूति का अभाव रहता है। पन्त ने जहाँ साधर्म्य को आधार बनाया है, वहाँ कल्पना बहुत रसीली हो गई है। जहाँ कवि की दृष्टि अनुभूति की ओर नही रही और वह आकार साम्य पर चलने वाली कल्पना में उलझ गया है, वहाँ प्रभाव भी क्षीण हुआ है और दुरूहता भी आ गई है। उदाहरण के लिए चाँदनी को 'शब्द मुक्त शुचि आशय' या "एक अनन्त प्रतीक्षा" आदि कहना। यहाँ कवि केवल चाँदनी की नीरवता का वर्णन करने के लिये ये अप्रस्तुत लाता है जिनमे मूकता है। कि तु प्रस्तुत-अप्रस्तुत मे प्रभाव-साम्य नही है। फलस्वरूप ये कल्पनाएं नीरस और दुरूह हो गई है।

विकास

समय परिवर्तन के साथ-साथ चेतना की साधना के अनुरूप ही मनुष्य के दृष्टिकोण मे अन्तर होता जाता है। पन्त अपने युग की सभी विचार-धाराओ से प्रभावित हुए हैं। इस प्रभाव का विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ केवल यह देखना है कि विचार-जगत के विकास के साथ-साथ कवि के कलापक्ष मे क्या अन्तर आया है

"व णा" मे छायावादी शैली के कुछ नैसर्गिक प्रयोग पाए जाते है किन्तु वे बहुत कम है—'चपला-चुम्बित अभिवादन' आदि। उनका चरम विकास 'पल्लव' मे पाया जाता है। 'ग्रन्थि' मे एक कथा-धारा चलती है। अत उसमे कई छन्द ऐसे हैं जो अपने अन्वित रूप में अलकृत गद्य के नमूने बन जाएंगे।

उदाहरण के लिए निम्न पक्तियाँ देखिए—

इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पडे मेरे नयन, जो उदय से,

लाज से रक्तिम हुए थे—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।'

यदि "थे पडे मेरे नयन" का 'मेरे नयन पडे थे' करके अन्वय कर दिया जाए तो यह चारों पंक्तियाँ काव्यात्मक गद्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण बन जाएँगी। इसका पहला प्रधान कारण तो यही है कि 'ग्रन्थि' में एक कथा चलती है और दूसरी यह कि अभी कवि की साधना विकासगामी है।

विशेष रूप से 'पल्लव' की कविताओ मे (आँसू, उच्छ्वास, पर्वतप्रदेश मे पावस आदि मे) एक ही कविता में कवि ने विभिन्न मात्रा वाली पंक्तियाँ रखी हैं। यथा—

नवोढा बाल—लहर
अचानक उपकूलो के
प्रसूनो के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर।

मात्राओ के घटाने-बढाने का मुख्य प्रयोजन है वर्ण्य-वस्तु का चित्र उद्भासित करना। ऊपर के छन्द मे प्रथम तीन पंक्तियो को पढते समय जिह्वा को ठहराना पडता है—मानो लहर ठहरी हुई हो। अन्तिम पंक्ति उसी शीघ्रता से पढी जाती है जिस शीघ्रता से लहर सरकती है। इसमे सन्देह नही है कि ऐसे प्रयोग अत्यन्त कलात्मक हैं और पंत को इनमे विशेष सिद्धि प्राप्त है।

"पल्लव" तक कवि का विषय रहा प्रेम। उसका ध्यान अन्य विषयो पर बहुत कम गया। 'गुञ्जन' मे भी प्रधान विषय तो प्रेम ही रहा किन्तु "तप रे मधुर-मधुर मन" "प्रार्थना" आदि कविताओ मे कवि की दृष्टि जीवन की ओर गई तथा 'एक तारा' एवं 'नौका विहार' मे दर्शन की भी छाया है। विषय परिवर्तन के साथ-साथ शैली में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। भाषा में क्षिप्रता और माधुर्य के साथ-साथ शक्ति, गम्भीरता और संयम भरने की भी आवश्यकता हुई। छायावाद का गहरा रंग हल्का हो गया। 'युगान्त' मे और अधिक हल्का हुआ। 'युगवाणी' और "ग्राम्या" तक आते-आते प्राय समाप्त हो गया।

पन्त के काव्य-विकास मे छायावाद के ह्रास का कारण था कवि का

मानव-क्षेत्र में प्रवेश । "आधुनिक कवि" की भूमिका मे कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि छायावादी काव्य की शैली मे जीवन की विविधता को मुखर करने की शक्ति नही थी । छायावादी शैली से ही नही कवि अलकारो से भी पराड्मुख होने लगा । "नवदृष्टि' (युगवाणी) मे वह कहता है—

"खुल गए छन्द के बन्ध, प्राम के रजत पाश,
अब गीत, मुक्त, औ' युगवाणी वहती अयाम ।

और वाणी (ग्राम्या) मे—

तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार ।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलकार ॥"

कवि की व्यक्तिगत प्रेम की पीर छूट गई, छायावादी कोमल शैली छूट गई इतना ही नही भाव और अलकार भी छूट गए । कवि विचारशील बन गया, कविता मे विचारो को बाँधने की उत्सुकता हुई । अलकार के भार को हटाने की इच्छा हुई ।

कवि अपनी वाणी को न तो पूर्णरूप मे विचारो मे भर सका और न ही पूर्णरूप से अलकारो मे खाली कर सका । 'ग्राम चित्र' आदि कविताओ में भाव भी मिलते हैं । और तो क्या 'वाणी' की पाँचवी और छठी पक्तियों मे ही अलङ्कार का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है—' ग्द के पख मार कर सको सुदूर नभो नभ मे जन के विहार ।'

इतनी ही नही ग्राम्य मे ही 'ग्राम चित्र' के आरम्भ मे प्रकृति का मानवीकरण मिलता है । याद और गगा' मे छायावादी शैली के प्रयोग मिलते हैं । किन्तु यह सत्य है कि अधिकाश रचनाएँ जन-भाषा और जन-कल्पना के पास ही पास हैं ।

ग्राम्या के पश्चात् कवि का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण फिर बदलता है और शैली मे भी परिवर्तन होता है । ऐश्वर्यशाली प्रतीक योजना खड़ी की जाती है । मानव के हृदय जगत का सूक्ष्म चित्रण किया जाता है । 'उत्तरा' तक आते आते शैली बिल्कुल बदल गई है । यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि 'उत्तरा' की शैली 'पल्लव' की शैली की अपेक्षा अधिक सशक्त, सूक्ष्म और साकेतिक है । ऐसा विषयानुरूप ही है ।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति एक विशद चिरंतन काव्य है। पंत के लिए इस प्रकृति-काव्य का रूप भी सौन्दर्य है और प्राण भी। प्रकृति का स्थूल सौन्दर्य कवि हृदय की सुषमा मे मिल एक प्राण हो जाता है। और तब यह जानना कठिन हो जाता है कि हृदय ने प्रकृति से क्या लिया और क्या दिया।

प्रकृति के साथ पन्त का घनिष्ठ सम्बन्ध बचपन मे ही रहा। उसके सौन्दर्य ने सरल बालक—बाद के कवि—को मुग्ध किया, उसकी विशदता ने उसके हृदय पर गहरी छवि अङ्कित कर दी, उसके व्यापारो ने कवि को अपने में लीन करने के लिए उकसाया। पन्त की चेतना घन्टो तक प्रकृति की सुषमा-जाली मे उलझी रहती थी। उसके रूप ने चेतना पर एक अमिट प्रभाव छोड़ा जो कवि की रचनाओ में सौन्दर्य की रजत-राशि के रूप में बिखर गया।

प्रकृति के रूपो से भी अधिक कवि प्रभावित हुआ उसके व्यापारो से, जिन्होने उनके हृदय को प्रकृति की सजीवता का मूक सन्देश दिया। कवि प्रकृति को अपने से अलग विशिष्ट सत्ता मे साकार एक नारी के रूप मे देखने लगा। प्रकृति मे तादात्म्यानुभूति की तरल कामना भी कई पंक्तियों में प्रतिबिम्बित हुई। वहाँ कवि अपने को भी नारी के रूप मे देखता है। 'वीणा' मे यह प्रकृति बहुत स्पष्ट है जहाँ सर्वत्र कवि ने अपने को एक अबोध बालिका के रूप मे चित्रित किया है। कवि को यह मानने में कोई संकोच नही कि प्रकृति-प्रेम ने जहाँ कवि के हृदय मे सहृदयता की ज्योति बिखेरी, वहाँ उसे जन जीवन से पराङ्मुख भी कर दिया।

प्रकृति का चित्रण तीन रूपो मे किया जाता है—आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप मे और अलंकार रूप में।

(१) **आलम्बन रूप**—इधर कुछ विद्वानों ने इस मत का प्रतिपादन

किया है कि प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप से किया ही नही जा सकता। क्या यह सच है ? इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए हमे काव्य-क्षेत्र के दूसरे पहलू जीवन-क्षेत्र के अनुभव को परखना होगा। जीवन और काव्य एक चेतना के दो पहलू हैं। दोनो मे ही चेतना का उतार-चढाव प्रकाशित होता है। जीवन के नित्य अनुभव में हम किसी हँसते हुए फूल को देखकर लहलहा उठते हैं, झाड-झखाडों को देखकर बुद्धि मे भी अस्पष्ट उलझनें पड जाती हैं, मेघ-गर्जन मे भय या उत्साह का उद्रेक होता है। यहाँ क्या प्रकृति के विविध रूप ही हमारे भावो को जगाने वाले कारण नही हैं, यदि हैं तो काव्य क्षेत्र मे भी प्रकृति का आलम्बन रूप मे ग्रहण योग्य है, याग्य ही नहो स्पृहणीय भी है। जो तथ्य जीवन मे सत्य है, वह कल्पना मे भी सत्य है।

अब दूमरा प्रश्न यह उठता है कि क्या पन्त ने प्रकृति का आलम्बन रूप मे चित्रण किया है ? प्रस्तुत सग्रह का प्रथम कविता 'मोह' मे कवि स्पष्टत प्रकृति-प्रेम को नारी के मोह मे श्रेष्ठ बतलाता है और उसी मे लीन होने की कामना करता है। किन्तु अन्य रचनाओ में ऐसा नही है। "पवत प्रदेश मे पावस" मे पावस ऋतु का वर्णन आलम्बन स्वरूप कहा जा सकना है। "आँसू से भो" "द्विरद दन्तों से उठ ऊपर"—आदि छन्द भी प्रकृति के आलम्बनत्व को स्वीकार करते दिखाई देते हैं। किन्तु हम इन वर्णनो को शुद्ध आलम्बन स्वरूप चित्रण नही मान सकते। "पर्वत प्रदेश मे पावस" का अन्तिम छन्द और "आँसू" के कई छन्द प्रकृति की गौणता का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। इन दोनो कविताओ मे प्रकृति प्रेम मे वियोगी का प्रेम उसी प्रकार घुला-मिला हुआ है जिस प्रकार कण्ठ स्वरो में वीणा की मधुर झकार। इस प्रकार दोनो एक दूसरे के पूरक भी हैं। किन्तु साथ-ही-साथ कवि की मनोवृत्ति का भी पूर्ण परिचय देते हैं। कवि को प्रकृति से अगाध प्रेम है, किन्तु वह अपने वियोगी हृदय को कहाँ छिपा दे ? वह भी बीच-बीच में कूक उठता है। अत यह सिद्ध है कि कवि को प्रकृति से अनन्य प्रेम है, उसने उसकी विशदता का सूक्ष्म पर्यावलोचन किया है, किन्तु वह उसके मृदुल ऐश्वर्य मे हृदय के वियोग को पूर्णत भुला नही पाया।

"झझा मे नीम", "चाँदनी" आदि रचनाओं का विवेचन आगे किया जायेगा।

(२) उद्दीपन रूप—यह जीवन का एक शाश्वत सत्य है कि दुख मे सारा ससार दुखी और सुख मे सुखी दिखाई देता है। अपने भावो की यह विश्वजनीन अभिव्यक्ति की इच्छा काव्य-प्रेरणा का एक प्रधान तत्व है। जब मनुष्य दुखी होता है तो पुष्पो का हास उच्छ्वास में बदल जाता है, तारो की ज्योति म्लानता मे परिवर्तित हो जाती है, और वर्षा दुख के आंसुओ का रूप धारण कर लेती है। प्रश्न यह होता है कि मनुष्य क्यो अपने भाव की सार्व-भौम अभिव्यक्ति की कामना करता है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। और वह है चराचर की गूढ एकता। एक ही तार चराचर के हृदयो मे बँधा हुआ है, उन्हे एकता मे बांधे हुए हैं। एक हृदय की झकार समस्त ब्रह्माण्ड की वीणा मे लहरें उत्पन्न कर देती है। अभेद का पर्दा तिरोहित हो जाता है।

उद्दीपन के रूप में प्राकृति का चित्रण कई प्रकार से हो सकता है।

प्रकृति के मधुर मिलन व्यापार वियोगी की व्यथा को और भी उद्दीप्त कर देते हैं। यह मानव और प्रकृति का वैषम्य हुआ।

कवि कहता है—

"देखता हूं, जब उपवन,
पियाला मे फूलो के
प्रिये भर भर अपना यौवन,
पिलाता है मधुकर को

तो— अकेली आकुलता सी प्राण !
कहीं करती तब मृदु आघात • ।"

('आंसू' से)

(ख) २—वियोग-दाह के कारण प्रकृति के रम्य रूप भी उग्र एव पीडक दिखाई देते हैं यथा—

धधकती है जलदो से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल।
आज सोने का सन्ध्याकाल,
जल रहा जतुगृह सा विकराल।

यह है अपने भाव की अनन्य अभिव्यक्ति। यह आरोपित साधर्म्य है।

(ग) ३—प्रकृति के साथ तादात्म्य करते हुए अपने दुख की अभिव्यक्ति

यथा—'मेरा पावस ऋतु सा जीवन' आदि ("आँसू"—से) यह मानव हृदय और प्रकृति-व्यापार का साधर्म्य हुआ।

(३) अलकार रूप—प्रस्तुत की विशद एव गम्भीर अभिव्यक्ति के लिए कवि अप्रस्तुत विधान करते आये हैं। "मेरा पावस ऋतु सा जीवन" वाला चित्र प्रकृति का अलकार रूप मे सुन्दर प्रयोग है। किन्तु प्रकृति से अप्रस्तुत-चयन केवल प्रेम विषयक कविताओ मे ही नही अन्य विषय वाली कविताओ मे भी किया जाता है। प्रसाद का "मधुमय वसन्त यौवन वन के" वाला विशद-सूक्ष्म चित्र एक ऐसा ही चित्र है।

(४) पृष्ठभूमि के रूप मे—पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण 'एक तारा', 'नौका विहार' आदि कविताओ के पूर्व मिलता है। इस प्रकार का सजीव वर्णन कविता की शक्ति को ऊजस्वित करने मे सुतरा सहायक होता हैं। 'एक तारा' का आरम्भिक प्रकृति-चित्रण, कविता के प्रतिपाद्य-विषय की गभीरता को कला के आवरण मे प्रस्तुत करके, पाठक के हृदय को एक सहज गति दे देता है, जो दार्शनिक तथ्यो को आत्मसात कर लेती है।

'ग्राम चित्र' नामक एक ही कविता मे हमे दो प्रकार का प्रकृति-चित्रण मिलता है। यहाँ 'डोलती वायु म्लान' आदि द्वारा कवि गाँव की करुण दशा के चित्रण को अधिक सशक्त कर देता है। और बाद मे 'यह रवि शशि का लोक, जहाँ हँसते समूह में उडगण' आदि पक्तियों में विषय-चित्र प्रस्तुत कर पाठक को मर्माहत कर देता है।

(५) रहस्य सकेत—शुक्ल जी के अनुसार चिन्तन के क्षेत्र मे जो अद्वैत-वाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। किन्तु एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है—अद्वैतवाद का एक ही रूप हो सकता है, उसके लक्ष्य-मुक्ति में क्रम नही है। किन्तु रहस्यवाद के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। व्यक्त अखण्ड सत्ता का धूमिल आभास भी रहस्यवाद हैं, और आत्मा-परमात्मा का मिलन परिरभण भी रहस्यवाद। पन्त में हमें प्रथम स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। (देखिए मौना-निमन्त्रण)। प्रकृति के विभिन्न दृश्यो से कवि को एक अव्यक्त सकेत मिलता है। किन्तु वह उसे समझ नही पाता। शुक्ल जी की परिभाषा मे दार्शनिक दृष्टि से एक दोष भी है। अद्वैत भाव का विषय नही हो सकता।

छायावाद-रहस्यवाद के विरुद्ध कुछ आलोचको ने एकागी नारा उठाया। उनके अनुसार ऐसा काव्य पलायन-प्रवृत्ति का प्रकाशन है, कायरता और भीरुता का परिचायक। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें एक बार फिर जीवन-क्षेत्र मे उतरना पडेगा। क्या प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य को देख हमे उसमे किसी अव्यक्त सत्ता का हास-उल्लास दिखाई नही देता ? क्या हम उसी से सन्तुष्ट रहते हैं जो हमारी इन्द्रियो की पकड मे आता है ? यदि हम ईमानदारी से सोचें तो हमे एक नही अनेक ऐसे क्षण मिलेंगे जिनमे हमारा मन दृश्य से उचाट हो जाता है। और इस अनासक्ति का कारण होता है दृश्य से असन्तोष। हम केवल रोटी-कपडा ही नहीं चाहते। इसमे अधिक भी कुछ चाहते है। यह 'अधिक कुछ' ही ऊर्ध्वतल की सीमा है जिसका अन्तिम छोर भाव या बुद्धि की चरम साधना से एकरस है।

(६) **दार्शनिक सत्यो की उद्भावना**—जब मानव मन इस स्थूल दृश्य जगत से असन्तुष्ट होता है, जब वह अपने अन्तरग की ओर झाँकता है, तो उसे एक नई अनुभूति का आभास होता है, जो स्थूल नही सूक्ष्म है, जो जड़ नही आत्मिक है।

अपने देश मे अनेकानेक दार्शनिक मत रहे जो चितको की आत्मिक अनुभूति पर आश्रित हैं। कवियो ने किसी न किसी दार्शनिक मत को काव्य मे ग्रहण कर स्वीकृति दी है। दर्शन और काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। काव्य जीवन की भावात्मक व्याख्या है। दर्शन जीवन की विचारात्मक व्याख्या है। काव्य और दशन को परस्पर बाँधने वाला जीवन ही है। पन्त मे जो दर्शन मिलता है उसका उद्देश्य समाज-जीवन का उत्कर्ष है।

विविध दार्शनिक ग्रन्थो मे भी उपनिषद् का सूक्ष्म-गहन चिंतन अधिकाश मनीषियो को आकर्षित करता रहाहै। कवि पन्त भी उपनिषदो से प्रभावित रहा है। "एक तारा" और "नौका विहार" मे इसका स्पष्ट सकेत है। "एक तारा" की अन्तिम दो पक्तियाँ हैं—

"जगमग-जगमग नभ का आँगन लद गया कुन्द कलियो से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन।"

इनमे "एकोऽहं बहुस्याम" का स्पष्ट प्रभाव है। यह पंक्तियाँ सम्पूर्ण कवि को एक अन्योक्ति का रूप दे देती हैं।

इसी प्रकार 'नौका विहार' के अन्त मे, यह ससार क्रम भी नौका-विहार सदृश वर्णित है।

प्रकृति के दृश्यो से सनातन सत्य को इस प्रकार सकेतित करना कल्पना की व्युत्पन्नता एव चिन्तन की विशदता का परिचायक है। पाठक उन्हे पढकर चमत्कृत हो उठता है। यह एक अत्यन्त परिष्कृत एव भावात्मक पद्धति है।

(७) **मानवीकरण**—यह ऊपर कहा जा चुका है कि कवि ने प्रकृति को अपने से अलग सजीव सत्ता वाली एक नारी के रूप मे देखा है। इस दृष्टिकोण का कारण है प्रकृति के व्यापारो का मानवीय क्रिया-कलापो से साम्य। मानवीय रूपो और व्यापारो की पृष्ठभूमि पर प्रकृति के रूपो और व्यापारो का साक्षात्कार करना-कराना ही प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। उदाहरण के लिये 'चांदनी' या 'लहरो का गीत' आदि कविताए दी जा सकती हैं। कवि चांदनी को 'नभ के शतदल' पर बैठी हुई नायिका के रूप मे देखता है।

यह सत्य है कि आधुनिक काव्य मे मानवीकरण की यह प्रवृत्ति प्रधानत पश्चिम के प्रभाव से आई है किन्तु हमारे साहित्य-शास्त्रियो ने मानवीकरण से मिलते-जुलते एक अलकार का उल्लेख किया है जिसका नाम है समासोक्ति। अब हमे देखना यह है कि समासोक्ति और मानवीकरण मे क्या भेद है और क्या समानता है। साहित्यदर्पणकार ने समासोक्ति का यह परिभाषा दी है—

समासोक्ति समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः।
व्यवहारसमारोप प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन ॥

(जहाँ प्रस्तुत मे समान व्यापार और लिंग वाले विशेषणो द्वारा अप्रस्तुत वस्तु का आरोप किया जाता है, वहाँ समासोक्ति अलङ्कार होता है।) चांदनी कविता मे भी हमे प्रस्तुत चांदनी मे अप्रस्तुत नायिका का आरोप दिखाई देता है। इस दृष्टि से देखने पर समासोक्ति और मानवीकरण मे कोई भेद नही दिखाई देता।

पन्त मे ही नही अन्य आधुनिक कवियो मे भी ऐसे वर्णन मिलते हैं जहाँ मानवीकृत प्रकृति-वर्णन मे प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत—मानवीय रूप एव व्यापार ही अधिक मुखर हो उठे हैं। प्रस्तुत उनमे दब जाता है। ऐसे स्थलो मे समासोक्ति का उपर्युक्त लक्षण पूर्णत घटित नही होता। किन्तु यह आधुनिक कवियो की स्वच्छन्द प्रवृत्त का ही परिणाम है जिसक. ओर पीछे (सागरूपक के विवेचन मे भी) सकेत किया गया है।

उदाहरण के लिए 'चांदनी' कविता के प्रथम दो छन्द लोजिए।

नीले नभ के शतदल पर,
वह वैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष एकाकिनि।
वह स्वप्न-जडित नत चितवन
छू लेनी अग-जग का मन,
श्यामल, कोमल चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन।"

इस वर्णन मे प्रस्तुत पक्ष—चांदनी का वर्णन—गौण पड गया है और अप्रस्तुत पक्ष—नायिका के स्वरूप ने—उसे दवा लिया है। प्रथम छन्द के पढते समय पाठक के नेत्रो के सामने चांदनी का चित्र नही, नायिका का ही चित्र आता है। उस चित्र की कल्पना किए विना वह चांदनी तक पहुँच ही नही सकता। और दूसरे छन्द मे तो प्रस्तुत और भी अधिक धूमिल हो गया है। 'चितवन' का कोई स्वरूप हमे चांदनी मे नहीं मिलता। केवल उसके प्रसार भार को ही चितवन मान लेना पडता है। स्पष्टत. यहाँ कवि की कल्पना नायिका मे उलझी हुई है। ऐने स्थलो पर चित्र की धूमिलता के साथ-साथ प्रभाव-हीनता एव दुरूहता आ जाती है। "लहरो के गीत" का पाठक पहली वार तो भौचक्का रह जाता है क्योंकि वहाँ कवि लहरो का नही मुग्धा नायिका के रूप-व्यापार पाठक के सामने रख रहा है। यदि कवि को मानवीय व्यापार का वर्णन करना ही अभीष्ट है तो उमे इस प्रकार प्रकृति की खोल मे न रखना ही उचित है।

यह तो हुई मानवीकरण की बात । इसके अतिरिक्त प्रकृति को रूप मे वर्णन करने के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का भी सहा जाता है। 'बादल' कविता मे 'फिर परियो के बच्चो से हम' मे उप 'दुहरा विद्युद्दाम चढाकर मे मागरूपक द्वारा बादलो को 'वासव दिखलाया है ।

प्रकृति के मानवीकरण से एक महत्वपूर्ण तथ्य का प्रकाशन होता है मानव-सौन्दर्य और प्रकृति के सौन्दय के घनिष्ठ सम्बन्ध का रहस्य । ठी आलम्बन भिन्न-भिन्न हैं किन्तु दोना ही—प्रकृति और नर-नारी—एक ही सौन्दर्य आदि को जगाते हैं । जिस प्रकार एक मानव मानव के समस्त आलम्बन हो सकता है उसी प्रकार प्रकृति भी । यदि यह बात असत्य हो प्रकृति और मानवीय प्रकृति मे भेद या विरोध होता तो दोनो का सश्लिष्ट कभी भी एक रस-प्रभाव उत्पन्न नही कर सकता है। यह निर्विवाद मानव प्रकृति के बिना अधूरा है, और प्रकृति मानव के बिना अधूरी सत्य है कि दोनो ही एक दूसरे से विच्छिन्न रूप मे भी मानव भावो के आ हो सकते हैं और होते भी है, किन्तु दोनो की उचित सम्बद्धता मे तीव्र स्वादकता है ।

एक बात और । प्रकृति का मानवीकरण साहित्य क्षेत्र की ही विशेष जीवन में हम कभी भी प्रकृति को इस रूप मे नही देखते और यदि देखते तो बहुत कम । साहित्य प्रकृति को मानव के समतुल्य प्रतिष्ठापित कर हृदय को व्यापकता एव दिव्यता प्रदान करता है ।

इसके अतिरिक्त प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कुछ अन्य भी बातें है उल्लेख नीचे किया गया है ।

प्रकृति की चित्रपटी मे ही दर्शन के गूढ रहस्यो को झलकाने की बात कही जा चुकी है । इसके अतिरिक्त जीवन के अन्य सिद्धान्तो के प्रतिपादन कवि प्रकृति से सहायता लेता है । 'सुख-दु.ख' कविता मे कवि बादल औ के खेल का वर्णन करता है। 'अनित्य जग' में कवि ससार की अनित्यता के लिए ही कहता है—

"आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर मे भरता सूनी सांस !"

इस दृश्य से कवि द्वारा प्रदर्शित ससार की परिवर्तनशीलता की करुण अनुभूति हृदय मे गम्भीर रूप ग्रहण कर उदित होती है। इसी प्रकार "नित्य जग" मे भी "अतल से एक अकूल उमग" वाले छन्द मे प्रकृति का दर्शन से मधुर मिश्रण किया है। "एक ही तो असीम उल्लास" मे कवि वेदान्त के प्रतिविम्ववाद का काव्यात्मक रूप मे प्रतिपादन करता है।

(८) प्रस्तुत-अप्रस्तुत—पन्त मे कई स्थानो पर हमे प्रस्तुन-अप्रस्तुत का सामजस्य भी मानव भावना का व्यापक प्रभाव भी, जिमे जायसी की एक प्रधान विशेपता माना जाता है, मिलता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सामजस्य के स्थल हैं 'ग्रन्थि से—" की 'इन्दु पर, इस इन्दुमुख पर—' वाली पक्तियाँ। उधर चन्द्रमा उदित है, उधर कवि के सामने वाला का मधुर मुख। उधर बाल रात्रि (सन्ध्या) है, इधर अलक। "एक तारा" मे 'गगा के चल-जल मे'' 'किस मग !' तक भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत का मधुर सामजस्य दिखाई पडता है।

(६) व्यापक प्रभाव—मानव भाव का प्रकृति मे व्यापक प्रसार इन स्थलो मे देखा जा सकता है।

"इन्दु की छवि मे, तिमिर के गर्भ मे ·····" (ग्रथि) कवि के हृदय की जिज्ञासा सारी प्रकृति मे विद्यमान है।

देखिए समार की अनित्यता के कारण सारा विश्व किस प्रकार आतङ्कित है—

"अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर नि श्वास
डालता पातो पर चुपचाप
ओस के आंसू नीलाकाश
सिसक उठना नमुद्र का मन,
मिहर उठते उडगन !"

इसी प्रकार "एक तारा" मे 'आकाक्षा के उच्छ्वसित वेग' से सागर, रवि, शशि, उडगन सभी व्याकुल और स्पन्दित हैं।

"आँसू की बालिका" मे एक बहुत ही सुन्दर छन्द है जिसमे निराश व्यक्ति को प्रकृति से सहानुभूति और करुणा का आश्वासन मिलता है—

तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनो में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय! उसकी व्यथा
अनिल पोंछेगो, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा।

प्रकृति और मानव के तादात्म्य के ऐसे करुण मर्मस्पर्शी चित्र कम ही मिलेंगे।

(१०) **मानवीकरण**—"गगा" कविता मे हमे प्रकृति का एक और ही ढग का चमत्कारपूर्ण प्रयोग दिखाई देता है। इसमे कवि भौगोलिक परिचित गगा से भिन्न एक लोक चेतना की गगा की मजुल कल्पना करता है। यह गगा का प्रतीक प्रयोग भी नही समासोक्ति या अन्योक्ति भी नही है। इसे ही मैं प्रकृति का मानवीकरण कहता हूँ। यह अन्य सभी पद्धतियो से अधिक परिमार्जित एव प्रभावपूर्ण है। एक परिचित मूर्त्त दृश्य के समानान्तर एक सूक्ष्म एव जटिल दृश्य को इस कुशलता से रखना उद्‌वुद्ध प्रतिभा का ही काम है। गगा के प्रति जो सात्विक, मधुर भावनाएँ हृदय मे विद्यमान हैं, "वह जन-मन से नि सृत गगा" को देखकर और भी दिव्य एव सशक्त रूप धारण कर लेती हैं।

प्रकृति के प्रति बदलता हुआ दृष्टिकोण

चेतना से बढ़कर सजग एव व्यग्र कोई अन्य पदार्थ नही है। वह प्रतिक्षण प्रभावित होती रहती है, नए भाव-रूपों को जन्म देती रहती है। यह परिवर्तन होता अवश्य है। यह बात दूसरी है कि वह विकास का पथ पकडे, या अवनति के गर्त मे फिसल पडे।

प्रकृति का मूर्त्त रूप सुषमा से भरा-पूरा है। वह चेतना को प्रभावित करता है। मानव-समाज भी मानव के अन्तर्जगत पर स्पष्ट प्रभाव अङ्कित कर

देता है। यह प्रभाव प्रकृति के मूर्त रूप को विविध भावनाओ मे रग डालता है। जैसे-जैसे यह प्रभाव बदलता जाएगा, प्रकृति का रग भी परिवर्तित होता जाएगा।

वीणा मे गीतो के विषय तीन है—कवि की मा का पूज्य स्मृति, प्रकृति का रम्य प्रागण, और विराट शक्ति के प्रति विनीत निवेदन। किन्तु मूलत इन तीनो मे बहुत साम्य है। प्रकृति को कवि माँ की कृति बताता है—

यह चित्र माँ! जो तूने है
चित्रित किया नयन सम्मुख" ' ' ।"

माँ के प्रति उसकी भावना भक्ति से रगी है। ईश्वर सम्बन्धी प्रार्थनाओ मे और माँ के प्रति प्रस्फुटित उद्‌गारो में कही-कही कोई भेद प्रतीत नही होता।

आरम्भ मे ही कवि ने कुछ आदर्श बना लिए थे। तभी तो वह प्रकृति से शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। प्रकृति के प्रति उसके मन में कोमल जिज्ञासा का भाव भी है।

'ग्रन्थि' मे कवि के प्रणय की असफलता सिसकती दिखाई देती है। कवि के सूक्ष्म-विस्तृत प्रकृति-निरीक्षण का उपयोग इस कृति मे प्रचुर-अमद अप्रस्तुत विधान मे ही लक्षित होता है। 'ग्रन्थि' की सार्द्र करुण धारा, सस्कृत-बहुला पदावली, उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ आदि की लम्बी लड़ियाँ सहसा प्रिय-प्रवास को याद दिला देती हैं।

'पल्लव' की प्रकृति का शैलीगत प्रयोग बहुत ही विशद एवं प्राजल बन पडा है। इसमें लाक्षणिक मूर्त्त विधानो का प्रचुरता है। जहाँ एक ओर कवि बालजाल को ठुकराकर प्रकृति प्रेम मे बँधे रहने की भावना प्रकट करता है, वहाँ उसे अपनी प्रिया 'एक कलिका में ही सपूर्ण वसन्त' सी दिखाई देती है। प्रकृति-प्रेम और वियोग वेदना की मिश्रित लहरियो के सुन्दर हार 'आँसू', 'उच्छ्‌वास' आदि मे मिलते हैं। अभी तक कवि की दृष्टि प्रकृति के कोमल और रम्य रूप की ओर गई थी। सहसा उसके जीवन मे कोई भयकर आघात होता है। बौद्धिक-सघर्ष चरम-सीमा को प्राप्त कर 'परिवर्तन' मे बरस पडता है।

प्रकृति के उग्र रूप की ओर उसकी दृष्टि जाती है। यह उग्र रूप उद्दीपन के उग्र रूप से भिन्न है। यह भयकरता भावगत नही, यथार्थ है। सभी को इसका अनुभव होता है। कवि को जग की अनित्यता का ज्ञान होता है, फिर निष्ठुर परिवर्तन का तूफान उठ खडा होता है और अन्त में नित्य जग की करुण शान्ति का स्वर सुनाई पडता है।

कवि की चेतना पर परिवर्तन ने जो आघात किया उसने उसे सवेदनशील बना दिया। उसका चिन्तन 'गुञ्जन' मे अधिक सतुलित रूप प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। 'नित्य जग' के समन्वय मे क्षणिक तुष्टि थी और वह भी सम्भवत व्यक्तिगत। पल्लव के बाद कवि का सम्पूर्ण प्रयत्न समन्वय-जन्य तुष्टि को स्थायी एव लोक-ग्राह्य बनाने को उत्सुक हुआ। उसका विषण्य हृदय दर्शन की ओर लपका जिसकी छाप 'एक तारा' एव 'नौका विहार' मे दिखाई पडी वहाँ प्रकृति भी कवि के चिन्तन को परिपुष्ट करने मे सलग्न दिखाई देती है। साथ ही साथ चाँदनी' जैसी कविताए भी मिलती है जो कवि की प्राचीन प्रवृत्ति की अशिष्ट मणियाँ है "मुसकरा दी थी क्या तुम प्राण" कविता में प्रिया के उल्लास का व्यापक प्रभाव प्रकृति पर पडता दिखाई देता है।

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या मे कवि का चिन्तन और भी अधिक यथार्थ हो जाता है। समन्वय की भावना को मार्क्सवाद का स्थूल निर्दिष्ट आधार प्राप्त हो जाता है। प्रकृति गौण हो जाती है। मानव प्रधान हो जाता है। प्रकृति की यह गौणता आपेक्षिक दृष्टि से ही है। युगवाणी मे 'झझा मे नीम', 'जीव-प्रसू' आदि मे प्रकृति का आलम्बन रूप मिलता है। ग्राम्या मे गाँव की प्रकृति का वर्णन है (ग्राम चित्र, ग्राम श्री)। वह सुखद भी है और कुरूप भी। कवि प्रकृति से प्रेम करता है किन्तु भौतिकता के आवरण मे वह बहुत कुछ छिप गया है। उत्तरा तक आते-आते प्रकृति के नए रूप में दर्शन होते है। प्रकृति के विभिन्न दृश्य प्रतीकवत् प्रयोग में जाते है। अन्योक्ति का रूप 'पतझर' मे मिलता है। किन्तु अन्योक्ति की अपेक्षा प्रतीक रूप ग्रहण करना कवि को अधिक अभीप्ट है। प्रकृति का प्रत क रूप मे वर्णन अपेक्षत सरल है। उत्तरा में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी मिलता है, मानवीकरण भी दिखाई देता है। एक स्थान

पर प्रकृति मे खो जाने की भावना—'वीणा' की रचनाओ मे जिसकी प्रचुरता है—प्राप्त होती है—

"तुम मुझे डुबा लो अपने में
　　　　या मुझमे जाओ स्वय डूब,
तुम फूटो मेरा मोह चीर
　　　　ज्यो कटती भू को चीर दूब।"

'शरद ज्योत्सना'

यहाँ शरद को नव चेतना का प्रतीक माना है। किन्तु प्रकृति प्रेम भी ध्वनित होता है।

रस सिद्धान्त की उपगोगिता

कवि पन्त के विषय में यह कहा जाता है कि उसने अपने 'गु जन' के वाद के काव्य मे रम-सिद्धान्त की उपेक्षा की है। किन्तु केवल इतना कह देना पर्याप्त नही है और इसीलिए यह कथन असङ्गत सिद्ध हो जाता है। कवि पन्त पर ही यह आक्षेप क्यो ? आधुनिक सम्पूर्ण काव्य का परीक्षण करने पर क्या हम इस निष्कर्ष पर नही पहुँचते ? पन्त के काव्य में रसानुभूति खोजने से पहले हमें रस सिद्धान्त की सामान्य बातो को समझ लेना होगा।

यह सभी जानते हैं कि भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र मे रस का विवेचन कर उसकी प्रतिष्ठा की। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। नाटक मे कथा-वस्तु का एक विशिष्ट सगठन होता है। रस की दृष्टि से देखते हुए उस सगठन विशेष की अपेक्षा कथावस्तु का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि साहित्य की जिन शैलियो मे घटनाएँ और व्यापार सम्बद्ध होकर कथा वस्तु के रूप मे रहते हैं, उनमे रसानुभूति का प्रमार आवश्यक हो जाता है। उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक युग की उपज है। उनमे कथावस्तु रहती है। इसलिए उनमे प्रसगानुकूल मधुर या कठोर भावो को अनुभूति पाठक को होती ही है। प्रव ध प्राचीन काल मे रचे ही जाते थे, उनमे भी रस की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित रहती है जो कथा के नीरस मरु-अशो को भी स्निग्ध करती हुई चलती है। निवन्ध, गोतिकाव्य, रिपोर्ताज आदि साहित्य-शैलियो का उपयुक्त साहित्य-रूपो से एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि इनमे मम्बद्ध कथा का अभाव है। इमलिये इनमे रस को छानवान करते समय हमें इन्हे एक भिन्न दृष्टिकोण से देखना होगा।

क्या गीत रसोद्रेक करने मे समर्थ हैं ?

अव हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि क्या गीत रसोद्र क करने मे समर्थ

हैं ? इस प्रश्न को सुलझाते समय हमे यह बात सदैव ध्यान मे रखनी पडेगी कि गीतो मे कथा का अभाव रहता है।

यह सत्य है कि पन्त के सभी गीतो मे हमे रस छलकता दिखाई नही देता। प्राचीन काल मे भी गीतो की रचना की जाती थी। उदाहरण के लिए हम विद्यापति, सूर और तुलसी को ले सकते हैं। उनके गीतो को पढ़ते समय हमारा हृदय रस से सिक्त हो उठता है। फिर भी हमें कुछ ऐसे पद अवश्य मिलते है जिनमे रसानुभूति का अभाव मिलता है। उदाहरण के लिए हम तुलसी का प्रसिद्ध पद 'केशव कहि न जाय का कहिए' ले सकते हैं। इसमे रस प्रवाह नही है। फिर भी यह तुलसी के सर्वश्रेष्ठ पदो मे से माना जाता है। कारण इसमें कला की कुशलता के साथ-साथ विचारो की सघनता भी है। मार्मिक अभिव्यक्ति ने दार्शनिक विचारो को भी साहित्य का माधुर्य प्रदान कर दिया है। अत. यह सिद्ध है कि गीतों की श्रेष्ठता का आधार केवल उनकी रसोद्रेक विषयक शक्ति ही-नही है। विचारो की और अभिव्यक्ति की मौलिकता एव उत्कृष्टता भी गीत को श्रेष्ठ बना सकती है।

आधुनिक युग के साहित्य और प्राचीन युग के साहित्य की प्रवृत्तियो मे उतना ही अन्तर है जितना इन दोनो युगो की प्रवृत्तियो मे है। युग का विकास होता है, मानव चेतना का उन्नयन होता है, नवीन मूल्यो और मानों का आविर्भाव होता है और प्राचीन मूल्यो और मानो का नाश या परिवर्तन होता है। कल के साहित्यकार की दृष्टि भाव की ओर अधिक रहती थी, आज का कलाकार बौद्धिक चेतना के प्रति भी सजग है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन साहित्यकारो मे बौद्धिक जागरण का अभाव था। यह बात नही है। किन्तु उनका बौद्धिक चिंतन गीतो में अभिव्यक्त न होकर महाकाव्य के रूप मे जनता के सामने आता था। तुलसी का लोकनायकत्व का आधार उनकी विनयपत्रिका आदि नही वरन् उनका रामचरितमानस है। सूर लोकनायक क्यो न हो सके ? क्या उनमे अनुभूति की वह तीव्रता नही थी जो तुलसी मे है ? अधिकाश विद्वान मानते हैं कि सूर की अनुभूति तुलसी से अधिक गम्भीर और गहरी थी। किन्तु सूरदास ने समाज की ओर से अपनी आँखें बन्द कर ली। वह केवल कवि थे। तुलसी कवि होने के साथ-साथ समाज के सुधारक भी थे। उनका साहित्यिक

महत्व भी है और सामाजिक भी। सामाजिक का पूर्ण अभाव किसी भी कवि मे नही होता। सूरदास ने निर्गुण हठयोग का खण्डन कर अपनी सामाजिक-सजगता का परिचय दिया है। किन्तु यह गौण है। तुलसी मे यह प्रधान हो गई है। एक बात और भी समझ लेनी चाहिए। सामाजिक सजगता का अभाव किसी कवि का मूल्य कम नही कर देता। क्योकि यह कलाकार की असमर्थता का नही रुचि की विशेषता का परिचायक है। रामचरितमानस मे अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ रस का वेग क्षीण है। वहाँ तुलसी की सामाजिक या दार्शनिक धर्म-परायणता वेग से मुखरित हो उठी है। किन्तु उन स्थानो का भी अपना महत्व है।

जिस प्रकार तुलसी मे हमे कवित्व और सामाजिकता का सामजस्य मिलता है, उसी प्रकार पन्त मे भी। सामजस्य के रूप का विवेचन आगे के अध्याय मे किया जायगा। यहाँ केवल इतना जान लेना है कि कवि मे जहाँ रस-धारा क्षीण हुई है, वहाँ उसकी सामाजिकता प्रबल हो उठी है। किन्तु पन्त ने अपने युग-चिन्तन की अभिव्यक्ति भी गीतो मे ही की। उन्होने तुलसी सा मानस नही लिखना चाहा।

पन्त ने इस प्रकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। छायावादी शैली और व्यक्तिवादा भावो को जकडे हुए गीतों को चिंतन के अनन्त क्षेत्र में घूमने की स्वच्छन्दता दी और आधुनिक युग का प्रायः समस्त चिन्तन धाराओ को अपने मे बांध लिया। गाता मे प्रतिपाद्य विषय की ऐसी विभिन्नता कम मिलेगी।

गीत और निबन्ध

जहाँ तक वर्ण्य-विषय की बहुरगता का प्रश्न है, पन्त के गीतो की तुलना आधुनिक साहित्य मे प्रचलित निबन्धो से की जा सकती है। ऊपर इस बात की ओर सकेत किया जा चुका है कि निबन्ध मे भी रस का अभाव रहता है। यहाँ भावात्मक निबन्ध अपवाद स्वरूप हैं। निबन्ध में छोटे से छोटे से लेकर बडे से बडे विषय का प्रतिपादन किया जाता है। पन्त के गीतो मे भी ऐसा ही मिलता है। पन्त के अतिरिक्त अन्य आधुनिक कवियो ने भी विविध-विषयो को गीतो मे ही बांधा है। प्रश्न हो सकता है विचारात्मक विषय को गीतो मे

प्रस्फुटित करने की अपेक्षा यदि कवि उन्हे निवन्धो में खोलते तो अच्छा होता। यह ठीक है। कारण निवन्ध मे विचारो को पल्लवित करने के लिए अवकाश रहता है, गीत में नही। किन्तु गीत की शैली वर्ण्यवस्तु के महत्व को वढा भी सकती है। और फिर विषय की स्पष्ट अभिव्यक्ति का कारण प्रतिभा है न कि शैली। इन सब वातो को देखने के लिए पन्त की 'महात्मा जी के प्रति' कविता ली जा सकती है। यह विचारात्मक कविता है। किन्तु क्या निवन्ध में यह विचार इससे अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त किए जा सकते है? मुझे इसमें सन्देह है। हाँ, वाल-वुद्धि के लिए अपेक्षित सरलता कविता में नही है, और यह तो शायद निवन्ध में भी नही होती।

अव प्रश्न हो सकता है, निवन्ध और इन कविताओ में क्या भेद है? स्पष्ट है कि यह भेद विषय पर आधारित नहीं है वरन् शैली पर आधारित होता है। निवन्धकार और कवि की शब्द-साधना में भेद होता है।

बुद्धिगत साधारणीकरण

यहाँ एक और प्रश्न उठता है। हम ऊपर उन गीतो का उल्लेख कर चुके हैं, जिनमें रसानुभूति का नितान्त अभाव है। तो 'वाक्य रसात्मक काव्य' साहित्य का प्रसिद्ध एव मान्य परिभाषा—अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हो गई और रस सिद्धान्त का एकछत्र साम्राज्य समाप्त हो गया। किन्तु रस सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिक एव समाजिक उपयोगिता के कारण उसका त्याग अवाञ्छनीय है। आवश्यकता इस वात की है, हम आधुनिक युग की परिस्थितियो के अनुरूप उसकी नई परिभाषा करें। रस शब्द मे नई शक्ति भर दें। यह आवश्यक भी है और स्वाभाविक भी। प्राचीन सिद्धान्तो को नवीन परिस्थितियो की आग मे जला कर उन्हें नये रूप में ढालने की आवश्यकता प्रत्येक युग के व्यक्ति को रही है।

डाक्टर रागेय राघव ने ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर इस मत की स्थापना की है कि प्राचीन काल में मानव-मानव की समता का जो नाद उठा उसकी अभिव्यक्ति वौद्धिक जगत में आत्मा की अखण्ड एकता के रूप में और भाव-जगत (साहित्य जगत) मे रस और साधारणीकरण की समता के रूप में हुई। यह तो हुई चेतन जगत की एकता की वात। आज विज्ञान के युग ने "वसुधैव कुटुम्वकम्"—मानव-मानव के एकत्व की भावना को साक्षात् प्रतिफलित कर दिया है। आज भूत जगत की एकता भी स्थापित हो गई है।

वादो की सूक्ष्मता दूरूहता को जन्म देती है। चेतना सम्बन्धी चिन्ताओ की अगोचरता कही-कही गुह्यता भी बन सकती है। इस दोष को बचाने के लिए कवि पन्त ने प्रतीको का प्रयोग किया है। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्णधूलि' जैसे मूर्त्त प्रतीक ही नही बसन्त, शरद आदि चिरपरिचित प्रकृति के रूपो और परिवर्तनो को भी प्रतीकवत् ग्रहण किया गया है।

अब प्रश्न आता है आलम्बन रूप में ग्रहण किए गए इन सिद्धान्तो के साधारणीकरण का। साहित्य चिन्तन में अभी तक भागवत साधारणीकरण की ही बात की जाती है। किन्तु क्या यह आवश्यक है कि साधारणीकरण (समत्व) भावो का ही हो सकता है ? (साधारणीकरण को समत्व कहने पर किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए क्योकि ऊपर हम समत्व को साहित्य का प्राण सिद्ध कर चुके हैं।) यह मानना अनुभूत सत्य के विपरीत होगा कि सभी विचारगत समत्व की अनुभूति जोवन में करते हैं। इसी समत्व के आधार पर ही तो बडे-बडे राजनतिक-सामाजिक दल बनाए जाते हैं जो महान् कार्य करते हैं। बौद्धिक समन्वय सम्भव भी है और इसका अबाध महत्व भी है। साहित्य में भी इसकी उपयोगिता से इन्कार नही किया जा सकता। अत साधारणीकरण बुद्धिगत भी हो सकता है।

यहाँ यह शका उठ सकती है कि यदि साहित्य में बुद्धिगत साधारणीकरण को मान लिया गया तो राजनैतिक दलो और दार्शनिक मतवादो में भी तो यह सम्भव है। फिर साहित्य में और राजनीति या दर्शन में क्या भेद रह जाता है ?

समत्व साहित्य का प्राण है। समत्व और एकागिता में कटु विरोध है। अत साहित्य की दूसरी प्रधान विशेषता हुई उसकी उदारता। और यही विशेषता उसे दर्शन या राजनीति के दलो की विचारधाराओं से अलग करती है। सभी राजनैतिक दल या दार्शनिक सम्प्रदाय एकागी होते हैं। उनकी अपनी सभी मान्यताएँ सत्य हैं और जो इसके बाहर है वह सभी झूठ और त्याज्य। आजकल ऐसी एकागिता साहित्य में भरी जा रही है। कुछ मार्क्सवादी साहित्यकार और आलोचक एकागी हैं, उनकी कृतियो में स्वार्थ-हीनता नही है, इसीलिए वह राजनीति से अभिन्न है और कुछ ऐसे भी साहित्यकार और आलोचक हैं

जिन्होंने मार्क्सवाद के उपयोगी तत्वो को अपनाया है। पन्त ने भी ऐसा ही किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुद्धिगत साधारणीकरण को मान लेने से साहित्य के सच्चे रूप और प्राण को अधिक शक्ति और पुष्ट आधार मिलता है गम्भीर दृष्टि से आज तक के साहित्य का अवलोकन करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। बौद्धिक साधारणीकरण को साहित्यकार स्वीकार कर चुके हैं। आलोचक को इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर साहित्य के एक स्थायी मानदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित करना है। साहित्य में भाव की अपेक्षा बौद्धिकता प्रधान हो जाती है। जब साहित्य मे भाव का साम्राज्य था तब भागवत साधारणीकरण मान्य हुआ। आज भी रसीले साहित्य के लिए इस कसौटी का प्रयोग होता है। आज साहित्य में बौद्धिकता प्रधान है, तब बुद्धिगत साधारणीकरण के प्रतिपादन और स्वीकृति की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस सत्य को न समझने वाले प्राय कहा करते हैं कि कविता का युग समाप्त हो रहा है। यह भ्रान्त धारणा है जो अधपचे चिन्तन का परिणाम है। कविता का युग नही समाप्त हुआ और न ही होगा। कविता नई प्राणशक्ति मे उल्लसित हो रही है। काव्य-दर्शन में परिवर्तन हो रहा है।

काव्य के अन्तरङ्ग का यह ह्रास और विकास सदैव से चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल में कविता का विषय वीर भावना थी। भक्तिकाल में बदलकर वह भक्ति हुई, रीतिकाल में शृगार और आधुनिक काल मे जो कुछ भी सुन्दर और ग्राह्य था वह सभी काव्य के अन्तरङ्ग में समाता जा रहा है। यह काव्य के विकास का परिचायक है। उसकी सामर्थ्य का बढ़ाना लोक के कल्याण के लिए ही है। कोई समय था जब केलि-क्रीडा के नग्न चित्र साहित्य में प्रस्तुत किये जाते थे। उन्हे गन्दगी कहा गया, पाप कहा गया। इधर छायावादी लेखको ने वही तमाशे आरम्भ किये। उनका कटु विरोध हुआ, और हो रहा है। युग की धारा बदलनी है, जीवन के क्षेत्र के अपेक्षित प्रागण सिंचित हो काव्य-प्रागण में लहलहा उठते हैं। इस विकास क्रम को समझना चाहिए।

सूक्ष्म चिन्ताओ का आलम्बन रूप में ग्रहण करने और बुद्धिगत साधारणीकरण को मानने में एक भ्रान्ति भी बाधा बन सकती है। वह है बुद्धि को

अपेक्षा हृदय को श्रेष्ठ समझना। इस भ्रान्त धारणा के पोषक प्रसाद की कामायनी का आधार लेगे, किन्तु उन्हे यह समझना चाहिये कि जहाँ-जहाँ भी सूक्ष्म-चेताओ ने बुद्धि को निकृष्ट बताया है, वहाँ वह बुद्धि का अर्थ वह नही लगाते जो उपर्युक्त धारणा के पोषक लगाएंगे। जो बुद्धि शुद्ध श्रद्धा को कुन्ठित करदे, जो तर्क प्रशस्त विश्वास को खण्डित कर दे वह अवश्य त्याज्य है। किन्तु बुद्धि और हृदय के सामरस्य की बात ऊपर भी कही गई है। दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। पुरुष बुद्धि का प्रतीक है, नारी हृदय की प्रतीक है। जिस प्रकार नारी और पुरुष के मधुर-मिलन से जीवन लहलहा उठता है उसी प्रकार बुद्धि और हृदय के सामरस्य से जीवन प्रबुद्ध हो उठता है। आज के युग में इसी प्रबोधन की आवश्यकता है। और वह तभी अवतरित होगा जब बुद्धि और हृदय का सघर्ष मिट जायगा, जब दोनो का ग्रन्थि-बन्धन हो जायेगा। इसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में भी जब भावगत साधारणीकरण और बुद्धिगत साधारणीकरण दोनो एक दूसरे के पूरक मानो के रूप में ग्रहण कर लिए जायेंगे, तभी साहित्य के विशद, पूर्ण एव प्राजल स्वरूप का विकास होगा। पन्त के स्वर्ण-काव्य और उत्तरा आदि परवर्ती रचनाओ का सही मूल्याकन तभी होगा, जब इन दोनो सिद्धान्तो पर उसे कसा जाएगा।

रसानुभूति और बौद्धिक सहानुभूति

अब हमें यह देखना है कि पन्त के व्यक्तित्व के विकास का कवि के राग तत्त्व पर क्या प्रभाव पडा है। साहित्य का प्राण जीवन है। यदि जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाए तो स्वाभाविक है कि साहित्य का स्वरूप भी बदल जाएगा।

"वीणा"—वीणा में कवि का सर्वप्रथम प्रयास लक्षित होता है। उसमें न तो जीवन की विभिन्नता के दर्शन की आशा की जा सकती है और न ही किसी विशिष्ट बौद्धिक जागरण की। इन रचनाओ में कवि का प्रकृति प्रेम अत्यत सरलता से व्यक्त हुआ है। बचपन की स्वाभाविकता में ही कवि के हृदय में कुछ आदर्शों के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। उसकी पूर्ति के लिए वह प्रार्थना करता है। विनम्र स्वरो में और प्रकृति के चित्रण में रस की गहराई नही है

किन्तु भाव की मोहकता अवश्य है। इस सग्रह मे जिन गीतो में सबसे अधिक प्रभावात्मकता दिखाई देती है, वह है इनके रहस्यात्मक स्पर्श से अनुप्राणित गीत। कवि ने अपने को बालिका के रूप मे चित्रित किया है। इस समय कवि का जीवन एकाकी एव असङ्ग था। स्वभावत उसे किसी साथी की कामना सताने लगी। वह बालिका के मञ्जुल स्वरो मे अज्ञात प्रीतम को पुकारने लगा। इन स्वरो का कोमल माधुर्य्य अनन्य है। पवित्र प्रेम की यह किरण ग्रन्थि मे प्रणय के वेग से प्रखर हो उठी है। माँ को सम्बोधित कर लिखे हुए गीत भी पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव छोडते हैं। वीणा मे रसानुभूति की गम्भीरता नही वरन् मनोहर स्थायित्व का कारण है मानव-जीवन की सहज भावनाओ की सरल अभिव्यक्ति। गम्भीरता के अभाव का कारण भी यही बचपन की सरलता है। वीणा की इन चार पक्तियो मे कवि ने अपने मानसिक दृश्य का सच्चा चित्र खीचा है—

स्वप्न देखती थी मैं मादक,
किन्तु अचिर, अस्फुट सुखमय,
लता कुञ्ज में सोई हूँ मैं,
सुरभित सुमनो पर निर्भर।

"ग्रन्थि" और "पल्लव"—वीणा की मृदुल झङ्कार ग्रन्थि मे सशक्त राग बनकर प्रकट हुई। गन्थि मे रसानुभूति पूरी-पूरी मात्रा मे मिलती है। मिलन का माधुर्य्य भी है, प्रेम का सौन्दर्य भी है और वियोग का गाम्भीर्य भी है। प्रेम की असफलता ने हृदय की गम्भीरता को जगाया जिसे हृदय ने वाणी मे सँजो दिया। 'पल्लव' मे ग्रन्थि का वियोग-गाम्भीर्य कला के वैभव एवं प्रकृति के ऐश्वर्य की गोद पाकर और भी निखर उठा। वियोग की आग और भी चमक उठी। अनुभूति तीव्रतम हो उठी। विराट जीवन के अबाध-परिवर्तन के प्रति उद्बुद्ध कवि की सजगता "परिवर्तन" मे सघन हो उठी। "निष्ठुर परिवर्तन" मे कला का चरमोत्कर्ष है। वैसे सारी कविता मे अनुभूति की तीव्रता है।

"गुञ्जन"—'गुञ्जन मे कवि अपने व्यक्तित्व से बाहर झाँकता है। 'परिवर्तन' की बहिर्मुखी-प्रवृत्ति मे तूफान सा भयकर वेग था। उसे सतुलित करने की

आवश्यकता थी। 'गुञ्जन' मे यह आवश्यकता पूर्ण हुई। उसमे 'पल्लव' की सी रस-सघनता तो नहीं है, किन्तु विषय की व्यापकता अवश्य है। पल्लव मे हृदय ने बुद्धि को दबा लिया था। 'गुञ्जन' मे बुद्धि उभरने लगी थी किन्तु हृदय को दबाने के लिए नही वरन् अपना सहज गौरव प्राप्त करने के लिए। हृदय का अबाधित सचरण भी कुछ कविताओ मे मिलता है। वह स्वाभाविकता है। कई रचनाओ में बुद्धि ने हृदय की शक्तियो को व्यापकता प्रदान की है। 'तप रे मधुर-मधुर मन' मे हृदय की विश्व करुणा का आधार बुद्धि ही है। कही भी बुद्धि ने हृदय को आक्रान्त कर अपने आपको भ्रष्ट करने का प्रयत्न नही किया है। 'गुञ्जन' मे अनुभूति उद्बोधन की किरणो से मण्डित है। 'पल्लव' पाठक के स्वार्थी व्यक्तित्व को गला देता है, किन्तु इसका परमार्थ-व्यक्तित्व मे परिणत गुञ्जन मे ही आकर होता है। बौद्धिक चिन्ताएँ साहित्य के हृदय को कैसे शक्ति प्रदान करती है, यह 'गुञ्जन' मे ("एक तारा", "नौका विहार" आदि मे) देखा जा सकता है। 'गुञ्जन' मे अनुभूति की गम्भीरता उदात्त हो उठी है। 'गुञ्जन' को सक्रान्ति काल का काव्य कहना अनुचित न होगा।

'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या'

'गुञ्जन' मे कवि हृदय ने व्यक्ति से बाहर झाँका है, ससार के कल्याण की कामना भी की है, किन्तु वह वस्तु-स्थिति के अध्ययन की ओर प्रवृत्त नही हुआ। यह हृदय का काम भी नही है। यथार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि कवि हृदय पर नही बुद्धि पर अधिक विश्वास करे। उसने ऐसा ही किया। उसकी समीक्षात्मक चेतना ससार में उन्मुख सचरण करने लगी। हृदय पीछे छूटने लगा। यथार्थ के सत्य ज्ञान के लिये यह अपेक्षित भी था। 'युगान्त' से 'युगवाणी' और 'युगवाणी' से 'ग्राम्या' में हृदय निरन्तर दबता गया, छिपता गया। 'युगान्त' मे कवि के हृदय-युग का प्राय अन्त हो गया, 'युगवाणी' मे युग को बुद्धि की वाणी प्राप्त हुई, जो 'ग्राम्या' मे ग्रामीणों तक सीमित हो गई। ग्राम्या की भूमिका मे ही कवि ने गाँव के यथार्थ के प्रति अपनी बौद्धिक सहानुभूति की बात की है। यहाँ बौद्धिक सहानुभूति का रूप समझना होगा।

प्रश्न होता है कि बौद्धिक सहानुभूति और हार्दिक-सहानुभूति मे क्या भेद है ? इसमे पहली बात तो यह समझने की है कि जिसके साथ हमारे हृदय का पूरा-पूरा लगाव है, उसके दुख मे हमे उससे हार्दिक सहानुभूति होगी। जिसके साथ हमारा सम्बन्ध हृदय तक नही पहुँचा, केवल बुद्धि तक—व्यवहार-ज्ञान तक ही रहा है, उसके दुख मे हमें उससे बौद्धिक सहानुभूति ही होगी। तो क्या पन्त के हृदय का ग्राम्य जीवन से भीतरी लगाव नही है। नही, बिल्कुल नही। क्योकि यदि ऐसा होता तो 'प्रतिक्रियात्मक साहित्य' का ही जन्म होता और फिर ग्राम्य-जीवन की वर्तमान सिद्धान्तहीन, अतिनैतिक, अन्ध-विश्वासी अवस्था के साथ किसके हृदय का लगाव हो सकता है ? कवि ने ग्रामीण-जीवन को जीवन के रूप में नही, जर्जरित निष्प्राण आदर्शो के खण्डहर के रूप में देखा है। उसमे हृदय का लगाव कैसा ?

बौद्धिक सहानुभूति की उपर्युक्त मीमासा में कोई यह दोष निकाल सकता है कि वह केवल दिखाने की चीज है, केवल एक विडम्बना-मात्र है। इस दोष का सही निराकरण करने के लिए हमें केवल बौद्धिक सहानुभूति, जो एक सूक्ष्म मनोदशामात्र है, में नही उलझे रह जाना चाहिए। हमे बौद्धिक सहानुभूति करने वाले व्यक्ति तक बढना पड़ेगा। बौद्धिक सहानुभूति व्यक्ति के स्वभाव का परिचय नही देती, वरन् व्यक्ति का स्वभाव ही बौद्धिक सहानुभूति के स्वरूप को निर्दिष्ट करता है। किसी ओछे व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित बौद्धिक सहानुभूति एक पाखण्ड-मात्र होगी। कवि पन्त द्वारा प्रदर्शित बौद्धिक सहानुभूति का एक विशेष मूल्य है क्योकि यही आगे चलकर लोक की मङ्गल साधना मे प्रतिफलित होती है। ग्रामीणों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करने वाले पन्त के विरुद्ध तो बहुत से आलोचक उठ खड़े हुए, किन्तु आज ऐसे भी बहुत से महानुभाव हैं जिन्हे जनता के प्रति केवल शाब्दिक सहानुभूति है। उनका क्या किया जाय ?

एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह समाने आता है कि क्या बौद्धिक-सहानुभूति मे हृदय बिल्कुल दबा रहता है ? शब्दो पर ध्यान देने वाले तो कहेंगे कि जब सहानुभूति है ही बौद्धिक तो फिर उसमे हार्दिकता का सवाल ही क्या है। किन्तु

यह अमान्य है क्योंकि केवल शब्द के आधार पर निर्णय देना ना समझी का काम है। मनोवैज्ञानिक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि इसमें रागात्मकता भी रहती ही है, मानव के भीतर बुद्धि और हृदय के दो कटघरे नही हैं। दोनो चेतना की दो सारणियाँ हैं, अत मूलत एक ही हैं। किसी की बुरी दशा देखकर हृदय पर प्रभाव पड़ता ही है। यह प्रभाव ही सहानुभूति है। किन्तु जब मानव इसी मे न डूबकर, उस बुरी दशा के कारणो का विश्लेषण करने मे तत्पर होता है तो तभी इस हृदय की सहानुभूति मे बौद्धिकता मिल जाती है और बौद्धिक सहानुभूति का उदय होता है। यहाँ बुद्धि दो काम करती है। एक तो उस बुरो-दशा के कारणों पर विचार करती है, और दूसरा उसके नाश के उपाय सोचती है और नवीन कल्याणमय दशा का निरूपण करती है। बुद्धि के ये दोनो व्यापार पन्त साहित्य में देखे जा सकते हैं। पाठक को 'ग्रामचित्र' आदि रचनाओ मे भावानुभूति होती है। यह ठीक है कि वह सघन नही है और ऐसो कविताए भी कम हैं।

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा' आदि परवर्ती काव्य—

जिस प्रकार 'युगात', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे बुद्धि के प्रथम व्यापार का प्रसार है, उसी प्रकार 'स्वर्ण किरण' आदि परवर्ती काव्य में उसके दूसरे व्यापार का। वैसे तो 'युगान्त' आदि मे ही कवि भविष्य निर्माण के उपकरणो का सग्रह करता दिखाई देता है किन्तु उनका पूर्ण प्रकाश परवर्ती काव्य में ही बिखरा दिखाई देता है। इस काव्य का सही मूल्यांकन केवल भावगत-साधारणीकरण ही नही कर सकता। इसके लिए बुद्धिगत साधारणीकरण का प्रयोग करना पड़ेगा। जबकि कवि द्वारा प्रस्तुत आलम्बन का आधार सूक्ष्म बौद्धिक-चिन्ताए हैं तो फिर उसे भाव पर परखना असङ्गत है। शास्त्रीय-सिद्धान्तो की कसौटी सुनार की कसौटो नही है जो सब प्रकार के सोने के मूल्य से अवगत करा दे। साहित्य कसोटो के लिए नही है, कसौटी साहित्य के लिए है।

प्रणय और प्रेम

मानव को प्रणय दान देने का अधिकार है, प्राप्त करने का नही। वह किसी प्रणय या प्रेम के आदान के लिए विवश नही कर सकता। पुष्प पवन को सुरभि बांट सकता है, उससे प्राप्त नही कर सकता। मानव जीवन मे यह आदर्श निसर्गत: प्रतिष्ठित है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या ऐतिहासिक यथार्थवाद इसकी व्याख्या नही कर सकता। यदि वह इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न करता भी है, तो प्रणय वासना के मृत रूप मे परिवर्तित हो जाता है। जैसे ही वैज्ञानिक जीवन तत्व (Protoplasm) के रहस्य की जानकारी के लिए प्रयोग आरम्भ करता है, वह मर जाता है।

'वीणा' में कवि प्रणय के वास्तविक रूप से अनभिज्ञ है। रहस्यात्मक गीतों में धूमिल प्रणय के हल्के उद्‌गार दिखाई देते हैं। इस सग्रह मे प्रेम (मानव-प्रेम) का स्वरूप अधिक निर्दिष्ट है। इसका स्फुरण कवि के आदर्शो के रूप में सञ्चित है। प्रार्थना है—

कुमुद कला वन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ।
जग का तिमिर त्रास हरदूँ—
नीरव रजनी में निर्भय! (पृ० ४)

बिल्कुल इससे मिलते-जुलते उद्‌गार 'युगान्त' के 'कलरव' में और 'ग्राम्या' की 'वीणा' में प्रस्फुटित हुए हैं।

"गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छवि।
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात, आवें रवि।" (कलरव)

"ज्योतित कर जन मन के जीवन का अन्धकार,
तुम खोल सको मानव उर का नि शब्द द्वार,
वाणी मेरो, चाहिए तुम्हें क्या अलकार !" (वीणा)

आगे चलकर भा कवि लोक मङ्गल के विधान की कामना करता है। यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि वीणा से लेकर 'उत्तरा', 'युगपथ' और आगे तक भा कवि की विचार-धारा मे एक साम्य है और वह है मानव प्रेम का।

ग्रथि और पल्लव मे प्रेम के स्वर को प्रणय के नाद ने डुबो दिया। यह कवि की असफलता नहीं है। यह मानव जीवन की एक स्वाभाविक घटना है। वाला का तिरस्कार कर प्रकृति प्रेम मे लीन रहने की कामना करने वाला व्यक्ति प्रेम की लहरों मे वेसुध हो गया। प्रकृति पीछे पड गई। नारी-सुषमा प्रधान हो गई। स्वभावत हो प्रणय का नशा चढने पर प्रकृति और ससार विलीन हो जाते हैं। प्रणय की असफलता ने जलते मे घी का काम किया। कोमल हृदय रो उठा। प्रणय की असफलता के लिए भी कहा जा सकता है विरह है अथवा यह वरदान ! एक ओर जहाँ इस निराशा ने कवि को ससार से विमुख कर दिया, वहाँ उसकी खोई हुई शक्तियो को झकझोर दिया। कला भी निखर उठी और भाव भी। रूप भी लहरा उठा और हृदय भी। बौद्धिक चेतना अभी सोई हुई थी। कवि के लिए दूसरा आघात था विश्व का क्षणभगुरता का अट्टहास। इसने कवि की ब द्धिक चेतना को भी जगा दिया। फलत गुञ्जन मे हृदय की झकार भी मिलती है, और बौद्धिक चेतना को प्रार्थना भी। गुञ्जन मे एक ओर तो कवि ज्योतिमय जीवन मे 'जग के उवर आँगन' मे वरसने की प्रार्थना करता है, मन को 'विश्ववेदना' मे प्रतिपल तपने की प्रेरणा देता है, तो दूसरी ओर कामिनो से यह विनम्र अनुरोध भी करता है कि 'आज रहने दो यह गृह काज।' किन्तु यह सत्य है कि यहाँ ग्रथि-पल्लव जैसा प्रणय का उच्छ्वसित वेग नही है। हाँ, प्रार्थना का स्वर तो वही है जो वीणा मे है किन्तु अधिक सुरीला और निखरा हुआ।

वीणा मे लेकर गुञ्जन तक कवि प्रणय और प्रेम की भावनाओ मे ही लीन रहा। उसने इन दोनो के आलम्बनो—नारी और मानव की यथार्थ दशा का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया। अभी तक उसकी वहिर्दृष्टि मे तीव्रता नही आई थी। उसका अन्तमन अवश्य विकसित हो चुका था। किन्तु यह ध्यान

मे रखना चाहिए कि वाह्य निरीक्षण की गहराई या व्यापकता के अभाव के कारण कवि की रचानओ के मूल्य मे कोई कमी नही हुई, क्योंकि अनुभूति का अपना निजी मूल्य होता है। भक्त की अनुभूति ही उसे इतना दिव्य बना देती है कि उसे पत्थर मे भी भगवान के दर्शन होने लगते है।

युगान्त से लेकर ग्राम्या तक कवि ने सजग होकर वहिरग जीवन की अवस्था का अध्ययन किया। प्रणय की आलम्वन नारी की दशा भी देखी और प्रेम के आलम्वन का रूप भी समझा। गत युगो में पुरुष ने नारी को जड उपयोगी पदार्थ के समान ही पाल रखा था। वह पुरुष की तुष्टि का साधन मात्र बन कर रह गई थी। पुरुष के सभी विधानो ने नारी परतन्त्रता की महिमा का गान किया। राजनीति ने नारी को दबाया, धर्म ने उसे कुचला, समाज ने उसे मिटा देने का प्रयत्न किया। मानव यह भूल गया कि नारी का भी समाज में कुछ स्थान होता है। नारी की इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व मनुष्य पर है। इसीलिये कवि पुकार उठता है कि अब नारी को मुक्त करो और अब उसे भी अपनी सत्ता और शक्ति को समाज के कल्याण में लगाने दो।

इसी प्रकार मानव भी अपनी दुर्वलताओ के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। अन्धविश्वासो ने उसे जकड लिया है। वासना ने उसे वीर्य-हीन कर दिया है। ईर्ष्या-द्वेष से उसका हृदय मलिन हो गया है। वाद-विवाद से उसकी बुद्धि कुंठित हो गई है। आलस्य ने उसमे जडता भर दी है। वहिरग और अन्तरग जीवन के अभावो की चक्की मे वह पिसता जा रहा है। मानव की सफलताएँ ही उसके लिए घातक बन रही है। इतना नही, प्रकृति की भयकरता भी क्षण-क्षण मानवता को ग्रसती जा रही है। मानव कल्याण हो तो कैसे ? पन्त प्राचीन, अर्वाचीन, देशी-विदेशी सभी विचार-धाराओ के आश्रय मे जाता है किंतु मानव-मुक्ति का द्वार कहाँ प्राप्त हो ? कभी वह अद्वैतवाद-मार्क्सवाद से समन्वय की बात कहता है, कभी गाधीवाद-मार्क्सवाद के समन्वय की बात कहता है, और कभी अध्यात्मवाद-भूतवाद के समन्वय की बात कहता है। अन्त मे अरविंद के दर्शन में उसे मानव मुक्ति के दर्शन होते हैं। उस मुक्ति के क्रम और भावी मुक्त-समाज का विशद चित्रण ही कवि का उद्देश्य बन गया जो स्वर्ण किरण और बाद की रचनाओं मे मुखरित हुआ।

चिन्तन

साहित्य और दर्शन

साहित्य और दर्शन दोनो का उद्देश्य एक है—जीवन की व्याख्या करना। दोनो के रूप मे जो भेद दिखाई देता है, उसका कारण है दृष्टिकोण की विभिन्नता। साहित्य जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण रखता है यद्यपि यह सत्य है कि उसमे बौद्धिकता का भी समावेश रहता है। दर्शन जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण रखता है। वर्गसा और श्री अरविन्द आदि कुछ ऐसे भी दार्शनिक हैं जो बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्व देते हैं। इसके साथ ही साथ यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि साहित्य का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार होता है। जबकि दर्शन एक बँधी हुई परिपाटी पर चलता है। ससार की किसी भी भाषा का साहित्य मनुष्य के लिए आकर्षण का विषय हो सकता है और होता है। किन्तु दर्शन के भीतर मत है जिनका एक दूसरे से विरोध है। इसलिए दर्शन के किसी भी एक विशिष्ट मत का वह विश्वजनोन स्वीकृति प्राप्त नही हो सकती। जो साहित्य की निसर्ग सिद्ध विशेषता है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव मे विकास हाता रहता है। शारीरिक विकास की अपेक्षा मानसिक विकास कही अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव मे किसी भी व्यक्ति का मानसिक जीवन ही उसका सच्चा जीवन है। वाह्याचार उसी की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रस्तुत लेख मे हमे कवि पन्त के मानसिक विकास का सक्षिप्त परिचय देना है। 'पल्लव' तक का काव्य कवि के हृदय का काव्य है। उसके पश्चात् बौद्धिक जागरण का काल आता है। 'गुञ्जन' सक्रान्ति काल को—हृदय से बुद्धि की ओर प्रगति के अवसर की—रचना है 'युगान्त' से लेकर 'ग्राम्या' तक के काल को मैं कवि का अध्ययन काल मानता हूं, जिसका पूर्ण परिपाक परवर्ती काव्य मे हुआ। 'गुञ्जन' के काल के पश्चात् कवि पर अनेक

सिद्धान्तो और वादो का प्रभाव पडा है। विद्वानो को कवि के इस मानसिक विकास मे अन्तर्विरोध दिखाई देता है। कवि उसे विकास के प्रकाश मे दिखाने की चेष्टा करता है। विकास की पूर्ण-गतिविधि का विश्लेषण आगे किया जायगा। किन्तु एक बात कवि मे प्रत्येक काल मे दिखाई देती है। वह है उसका दर्शन के प्रति मोह—विशेष रूप से प्राचीन भारतीय दर्शन के प्रति। इनके अतिरिक्त कवि ने आधुनिक दर्शन का भी अध्ययन किया है। दर्शन के इतने विविध रूपो का सम्मिलन कम कवियो मे दिखाई देता है। इसीलिये आरम्भ मे ही दर्शन के सामान्य रूपो का सक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

दर्शन के दो रूप

ससार मे हम जो कुछ भी देखते हैं, उसे दो प्रधान तत्त्वो मे बाँट सकते है। एक पदार्थ (Matter) और दूसरा चेतना (Consciousness)। अब दो प्रश्न उठते है। प्रथम, क्या ये दोनो सत्य है? द्वितीय, क्या इनमे से कोई एक प्रधान है और दूसरा गौण? कपिल, देकार्त आदि अनेक दार्शनिक दोनो को समान रूप से सत्य मानते है। दूसरे प्रश्न के दो उत्तर हो सकते हैं। एक तो यह कि चेतना प्रधान है और पदार्थ गौण, या मिथ्या है। (हीगेल पदार्थ को गौण और शकर उसे मिथ्या मानता है।) दूसरा यह कि पदार्थ ही प्रधान है और चेतना उसकी उपज है। (मार्क्स यही मानता है।) इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन मे दो प्रधान गुट हो सकते है। एक तो वह जो चेतना के महत्व पर बल देता है और दूसरा वह जो पदार्थ को चेतना से ऊपर ठहराता है। प्रथम अध्यात्मवादी गुट है और दूसरा भौतिकवादी। इसी बात को फ्रेडरिक ऐंजल्स (Frederick Engeles) ने इस प्रकार कहा है—"The great basic question of all philosophy, especially of more recent philosophy, is that concerning the relation of thinking and being ...... spirit to nature .... which is primary, spirit or nature ......The answers whixh the philosophers gave to this question split them into two great camps" (i. e Idealism and Materialism)। इन दो अवस्थाओ के अतिरिक्त एक तीसरी अवस्था भी हो सकती है जिसमे कि चेतना

और पदार्थ दोनो को ही अज्ञात मान लिया जाता है। यह शून्यवाद है। इससे परिचित नही था।

यह तो हुआ दर्शन का एक मूल प्रश्न कि सत्य क्या है ? अब दूसर सम्मुख आता है कि सत्य कैसा है ? दार्शनिको का एक सम्प्रदाय इस उत्तर मे कहता है कि सत्य विकासशील है। दूसरा दल यह कहता है वि अचल एव स्थाणु है। दूसरे दल के सभी दार्शनिक अध्यात्मवादी हैं। स विकासशील मानने वाले दार्शनिको मे भी दो दल हैं। पहला तो उन दा का है जो पदार्थ को प्रधान मानते हैं। इसका सिद्धान्त भौतिक विकासव दूसरा उन विचारको का है जो चेतना को प्रधान मानते हैं। इसका आध्यात्मिक या चेतन विकासवाद है। डार्विन और मार्क्स भौतिक विक हैं। हीगेल और श्री अरविन्द आध्यात्मिक विकासवादी हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न दार्शनिको मे समन्वय की प्रवृत्ति भी र हीगेल और श्री अरविन्द ने पदाथ और चेतना के कटु विरोध को दूर क समन्वय का प्रयत्न किया। श्री अरविन्द ने विकास और अचलता के का भी प्रयत्न किया है।

कवि को प्रभावित करने वाले स्रोत

दर्शन की सामान्य विवेचना के पश्चात् कवि को प्रभावित कर स्रोतो का सक्षिप्त विवेचन आवश्यक है। यह ऊपर कहा जा चुका है वि पन्त देशी-विदेशी अनेक सिद्धान्तो से प्रभावित हैं। यहाँ केवल उन्ही और स्रोतो के विषय मे कहा जायगा जिनका कवि की कृतियों पर सघन पड़ा है। वे हैं—उपनिषद्, दर्शन, अद्वैतवाद, स्वामी विवेकानन्द, मा गाँधीवाद और श्री अरविन्द का दर्शन। इसके अतिरिक्त हीगेल के द भी कवि प्रभावित हुआ है। किन्तु उसके स्वतन्त्र विवेचन की आव नही है क्योकि उसका प्रभाव श्री अरविन्द के प्रभाव मे ही अन्त जाता है।

उपनिषद् सूर्य के समान है जिन्होंने न जाने कितने चन्द्रमा जैसे न ज्योतित किया है। भारतवर्ष में जितने भी चिन्तक हुए, वे सभी किसी

रूप मे उपनिषदो से प्रभावित हुए। विरोधी दार्शनिक मत भी उपनिषदों को ही अपना आधार बनाने मे समर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि न तो वे किसी एक व्यक्ति की रचना हैं, न ही एक युग में उनका निर्माण हुआ, और न ही उनका उद्देश्य किसी सम्बद्ध दर्शन-मत की स्थापना करना रहा है। एस० राधाकृष्णन ने लिखा है—"The aim of the Upanisads is not so much to reach philosophical truth as to bring peace and freedom to the anxious human spirit" उपनिषदो का उद्देश्य व्यग्र आत्मा को शान्ति और स्वाधीनता प्रदान करना है। यही कारण है कि आज तक उनका महत्व अक्षुण्ण है।

उपनिषदो का उद्देश्य क्या है। सत्य का साक्षात्कार—सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म। साधन क्या है? सत्य—"सत्यमेव जयते नानृत, सत्येन पन्था विततो देवयान। येनाक्रमन्त्यपयो ह्याप्त कामा यत्र तत्सत्यस्त परम निधानम्"। सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं—सत्य मे ही देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्तकाम ऋषि लोग उसको प्राप्त होते हैं। जहाँ उस सत्य का परम निधान है—(मुण्डकोपनिषद् ३-१-६) साधक उसे कैसे प्राप्त कर सकता है? सत्य रूप होकर—यस्तु विज्ञान वान्भवति समनस्क सदा शुचि (कठोपनिषद् १-३-८) सारे उपनिषदो का सार यही है कि साधक सत्य स्वरूप होकर, सत्य के मार्ग पर आरूढ होकर सत्य तक पहुँचता है।

केनोपनिषद् का आरम्भ ही इस जिज्ञासा से होता है। "केनेषित पतति प्रेषित मन" आदि। श्वेताश्वेतरोपनिषद् का आरम्भ भी "किं कारण ब्रह्म कुत. स्म जाता" (ससार का कारण ब्रह्म कैसा है? हम कहाँ से उत्पन्न हुए?) आदि जिज्ञासा से हुआ है। इन सभी प्रश्नो का उत्तर एक ही है और वह है ब्रह्म।

सशयात्मा यह सुनकर चौंक उठेंगे। किन्तु उन्हे यह समझना चाहिए कि तर्क से भी बढकर एक प्रमाण है और वह है अनुभव। उपनिषद् मे बुद्धि की शकाओ का समाधान अनुभव द्वारा किया गया।

ब्रह्म कैसा है? इसका एक उत्तर यही है कि वह अवाङ्मनस-गोचर है। यह बात उपनिषदो मे स्थान-स्थान पर कही गई है। केनोपनिषद् के यक्षोपाख्यान

मे, "तथा न तत्र चक्षुगच्छंतिन" (१-३-) यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्" १।४ आदि मन्त्रो मे यह बात स्पष्ट की गई है। तो वह कैसे प्राप्त होता है? "यमेवैष विवृणुते तेन लभ्य" (कठोपनिषद् १-२-२३) जिसे वह स्वय वरण करता है, वही उसे जान सकता है। गुरु से ज्ञान प्राप्ति का भी आदेश दिया गया है। "ताद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्" मुण्डकोपनिषद् १-२-१२।

इसके वाद प्रश्न यह होता है, ब्रह्म और जगत तथा ब्रह्म और आत्मा मे क्या सम्वन्ध है? कही जगत को ब्रह्म कहा गया है (पुरुष एवेद विश्व, कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्—मुण्डकोपनिषद् (२-१-१०), कही जगत को ब्रह्म का निवास कहा गया है—(ईशावास्यकिमद सर्व— ईशो० १) और कही जगत को ब्रह्म का "हिरण्यमय पात्र" (ईश० १५) कहा गया है। माण्डूक्योपनिषद् मे आत्मा को ब्रह्म कहा गया है—(सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्। (माण्डूक्य०-२) और कभी ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार मानी गई हैं जिस प्रकार अग्नि से चिंगारियाँ निकलती हैं जो फिर उसी मे विलीन हो जाती है। (मुण्डको० २-१-१)

आज विज्ञान के युग मे इस सारे विवेचन को मानने मे अनेक बाधाएँ हैं। किन्तु यदि इस सत्य को स्वीकार कर लिया जाए कि अनुभव तर्क से कहीं अधिक विश्वसनीय है, तो यह सारे विघ्न दूर हो जाएँगे। कवि पन्त आरम्भ से ही आस्तिक रहा है। इसके लिए उपनिषदो मे स्वाभाविक आकर्षण है।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जीव को साधना करनी पडती है। आज का बुद्धिजीवी प्राणी भी इस साधना के महत्व को अस्वीकार नही कर सकता। उपनिषद् का ऋषि उद्‌बोधन का आह्वान करता है—

उत्तिष्ठत जाग्रत वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ कठो० १-३-१४

इस मन्त्र की शक्ति से कौन इन्कार कर सकता है? आलस्य, अविवेक आदि दुर्गुणो की निन्दा की गई है। ये ही सफलता के शत्रु हैं। मनुष्य और मनुष्य की एकता की दृढ प्रतिष्ठा उपनिषदों में मिलती हैं। यह समत्व आज के मानव का सबसे बडा स्वप्न है। उसी ने पन्त को विशेष प्रभावित किया है।

(२) अद्वैतवाद—वेदांत सूत्र, गीता और उपनिषद्-प्रस्थानत्रयी का आधार लेकर शंकराचार्य ने अद्वैतमत की प्रतिष्ठा की। अद्वैतवाद के सूक्ष्म विवेचन और सम्बद्ध विश्लेषण का ही चमत्कार है कि उपर्युक्त तीनो ग्रन्थ पीछे पड गए और अद्वैतवाद प्रधान हो गया। यद्यपि अन्य आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के आधार पर अद्वैत के खण्डन का प्रयत्न किया किन्तु इसकी महत्ता कम नही हुई। आज भारत के अधिकांश विचारक अद्वैतवाद की भूमिका पर ही इन तीनो ग्रन्था का अध्ययन करते हैं।

अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म एकमात्र सत्य है। आत्मा भी ब्रह्म है और जगत भी। किन्तु जीव अपने को यह नहीं समझता। वह दुखी रहता है, मृत्यु से डरता है, परिवर्तनशील है, नाशवान है, फिर वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्म कैसे हो सकता है? इन सभी मुसीबतो का कारण है अविद्या या मायाकृत अध्यास। जीव अपने को बधा हुआ, और मर्त्य समझने लगता है। जबकि वास्तव मे वह ब्रह्म ही है। इस बात को समझने के लिए हार के खो जाने का दृष्टान्त दिया जाता है। किसी स्त्री ने हार पहन रखा था। किन्तु वह भूल गई और समझी कि वह कही खो गया है। वह उसे ढूंढने लगी। किन्तु वह मिलता कैसे? वह बहुत दुःखी होकर रोने लगी। किसी ने उसे बताया कि हार तो गले में ही है। वह प्रसन्न हो गई। अब देखिए कि क्या उस स्त्री का हार कही उससे दूर था? क्या उसे प्राप्त करने के लिए उसे कोई कर्म करना पडा? नही। हार तो पहले से ही था। केवल वह भ्रम मे थी कि हार उसके पास नही है। जैसे ही उस उसकी सखी ने बताया, उसे ज्ञात हुआ कि हार तो उसके पास ही है। इसी प्रकार जैसे ही गुरु अधिकारी शिष्य से कहता है "तत्त्वमसि" (वह तुम हो) उसे ज्ञान हो जाता है। ब्रह्म की प्राप्ति नही होती वह तो जीव है ही। केवल वह अपने यथार्थ ज्ञान को खो बैठता है। अर्थात् माया में डूब जाता है। इस कथा से यह भी सिद्ध हो जाता है कि कर्म से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। ढूंढने से हार प्राप्त नही होता। केवल ज्ञान ही सत्य को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए संसार का त्यागना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह होता है कि ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कैसे होती है? शंकरा-

चार्य ससार को मिथ्या मानते हैं। सत्य ब्रह्म से मिथ्या जगत् की उत्पत्ति कैसे ? इसे समझने के लिए रस्सी और साँप का दृष्टात दिया जाता है। अन्धेरे में एक रस्सी पड़ी हुई थी। एक मनुष्य ने उसे सर्प समझा। वह चिल्लाने लगा, डर कर भागने लगा। इतने मे एक व्यक्ति प्रकाश लेकर वहाँ आया। देखा तो वह रस्सी थी। मनुष्य का डर और दुख भाग गया। क्या रस्सी सचमुच साँप बन गई थी ? इसी प्रकार ब्रह्म में परिवर्तन नही होता। क्या रस्सी मे साँप देखने से रस्सी मे कोई विकार आया है ? इसी प्रकार दृश्य जगत ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को विकृत नही करता।

अब प्रश्न होता है कि माया क्या है ? माया की कोई सत्ता नही वह केवल भाव रूप है, व्यक्तिकृत है। वह है क्योकि जब तक हम ससार मे रहते है, हमारे लिए परेशानियाँ पैदा होती रहती है। किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से वह नही है। क्योकि वह ही एकमात्र सत्य है। इसीलिए उसे अनिवचनीय कहा जाता है। अनिर्वचनीय का यह अर्थ नहो लगाना चाहिये कि माया ऐसा पदार्थ है कि जिसका वर्णन नही हो सकता। माया की अनिर्वचनीयता विचारको की असमर्थता नही है, वरन् यह माया का स्वरूप है। जो वस्तु है भी (सासारिक या व्यावहारित दृष्टि से) और जो नही भी है। (परमार्थिक दृष्टि से) उसका विशेषण अनिर्वचनीय के अतिरिक्त अन्य कौनसा शब्द हो सकता है ?

दही दूध का विकार है। दूध यथार्थ मे दही का रूप धारण कर लेता है किन्तु साँप रस्सी का विवर्त्त है, विकार नही, क्योकि रस्सी मे कोई वास्तविक परिवर्तन नही होता। इसी प्रकार ससार ब्रह्म का विवर्त है। इसीलिए अद्वैतवाद को विवर्तवाद कहा जाता है। माया का आधार लेकर कई उसे मायावाद भी कहते हैं। माया और विवत तो दृश्य जगत की व्याख्या के लिए हैं। वैसे तो विवर्त भी अयथार्थ है। और माया भी भाव रूप है। माया और विवर्त शङ्कर के दर्शन के सत्य आधार नही हैं, उसका आधार है ब्रह्म और आत्मा का अनन्यत्व। इसीलिए अद्वैतवाद नाम ही उचित है।

ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है, निश्चेष्ट स्वयप्रकाश है। जीव अन्धकार मे डूबा है फिर जीव को ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो ? ईश्वर वह है जो माया से खेलता है और इसके साथ ही उसे अपने पूर्ण ब्रह्म होने का भी ज्ञान है। ज्ञान और माया दोनो एक

साथ ही ईश्वर में विद्यमान है। ईश्वर ही जीव पर अनुग्रह कर उसे सत्य का ज्ञान कराता है।

ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। ससार व्यावहारिक सत्य है और रस्सी में साँप के दर्शन प्रतिभासित सत्य है। पारमार्थिक दृष्टिकोण से ससार और रस्सी में का साँप दोनों ही समान रूप से मिथ्या है। यह नही समझना चाहिए कि ससार रस्सी के साँप से अधिक सत्य है। दोनो का भेद अज्ञान के क्षेत्र के भीतर है। प्रतिभासित सत्य तो थोड़े समय में ही नष्ट हो जाता है, व्यावहारिक सत्य समार के नाश में देर लगता है।

जिस प्रकार मनुष्य के लिए रस्सी प्रतिभासित सत्य है, उसी प्रकार जगत ईश्वर के लिए प्रतिभासित सत्य है। तो क्या ईश्वर भी इसमें विकम्पित या भयभीत होता है। नही ! इन्द्रजाली पर इन्द्रजाल का कोई प्रभाव नही होता क्योंकि वह जानता है कि यह सब मिथ्या है।

प्रातिभासित और व्यावहारिक सत्य के भेद का आधार मानकर कई विद्वानो का यह कथन है कि शकर ससार को भी सत्य की एक कोटि में मानता है। किन्तु यह गलत है।

आत्मा और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान ही मुक्ति है। यह अभेद ज्ञान तभी होगा जब यह जीव सभी भेदों को मिथ्या समझ लेगा।

मुक्ति का साधन है ज्ञान। ज्ञान और कर्म का प्रकाश और अन्धकार का सा विरोध है। कर्म का सम्बन्ध योग क्षेम से रहता है, जो अविद्या के भीतर है। ज्ञान-कर्म समुच्चय भी गलत है। क्योंकि सत्य और झूठ का सम्बन्ध कैसे हो सकता है। भक्ति भी अमान्य है क्योंकि यह भी भक्त और भगवान को द्वैत मानती है।

यह ज्ञान तर्क ज्ञान नही है क्योंकि तर्क की अपनी सीमा है और ब्रह्म तर्क से नही जाना जा सकता। यह ज्ञान अनुभव ज्ञान है, स्वय प्रकाश ज्ञान है, जो तर्क से उत्कृष्ट है।

(३) स्वामी विवेकानन्द—आधुनिक युग में अद्वैत के तीन प्रधान व्याख्याता हुए—स्वामी रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ।

इनकी विचारधारा से भी कवि पन्त प्रभावित हुआ। इसलिए स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का निरूपण उपयोगी होगा।

स्वामी विवेकानन्द अद्वैतवाद को ही दर्शन का चरम रूप मानते थे। किन्तु आधुनिक युग में सर्वत्र भौतिकवाद, अविश्वास और बौद्धिकता का साम्राज्य था। सारे दर्शन को पलायन वृत्ति का प्रतीक माना जाने लगा। अद्वैतवाद के केवल एक पक्ष—ससार के मिथ्यात्व को लेकर उसे असफल एव असिद्ध घोषित किया गया। यह भी कहा जाने लगा कि शकर मनुष्य को जीवन से विमुख होना सिखाता है। ससार को मिथ्या मान लेने पर सदाचार का कोई महत्व नही रहता। स्वामी जी ने इन सभी आक्षेपो के उत्तर दिए।

शकर के आलोचको ने ससार के मिथ्यात्व को उसकी असफलता माना। स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के मूल पक्ष पर बल दिया और वह है, आत्मा और ब्रह्म का अभेद, ससार और ब्रह्म का अभेद। स्वामी जी के विचारो को उन्ही के शब्दो में देना अधिक उचित होगा।

सर्वप्रथम उन्होंने धर्म और दर्शन पर बढ़ते हुए अविश्वास का युक्ति युक्त खण्डन किया। इसके साथ ही पश्चिमी विद्वानो द्वारा भारतीय धर्म-साधना पर लगाए गए आरोपो का भी उत्तर देना था। उन्हें भारत-विभूति के ऐश्वर्य को ससार के सम्मुख रखना था।

चाहे किसी भी भौतिक विषय को लिया जाए, यदि उसका पूर्ण एव सूक्ष्मतम अध्ययन किया जायगा, तो वह विषय इतना सूक्ष्म हो जायगा कि वह भौतिक न रह कर अभौतिक हो जायगा। "The gross melts in the fine, physics into metaphysics, in every department of knowledge' (The science and Philorophy of Religion p 3) और आज विज्ञान हमें बताता है कि पदार्थ (Matter) और गति (Motion) दोनो ही मूल सत्य शक्ति (Energy) में लय हो जाते हैं। गणित शास्त्र मे हमें Wave particle aspect of energy का नाद सुनाई देता है। जिसके अनुसार यह मान लिया गया है कि लहरें और अणु शक्ति के दो रूप हैं।

यह प्रश्न किया जाता है कि क्या धर्म और दर्शन मनुष्य का पेट भर

देंगे। एक बच्चे के सामने न्यूटन के गति के नियमों के प्रयोग कीजिये। वह आप से पूछ बैठता है कि क्या इन प्रयोगों से 'टाफी' बन जायगी। आप कहते हैं, नहीं। और वह कहता है कि तब यह प्रयोग बेकार है। स्वामी जी ने लिखा है—

"हमे उच्च सिद्धान्तो का मूल्याकन निम्न स्तरो से नही करना चाहिये। प्रत्येक सिद्धान्त का मूल्याकन उसके अपने स्तर से ही करना चाहिये और अनन्त का मूल्याकन अनन्त के स्तर मे करना चाहिये।"

(वही० पृ० ४)

यदि मनुष्य का ससार भी ऐन्द्रीय सुखो तक सीमित है, तो मनुष्य और पशु में क्या भेद रहा? ऐन्द्रीय सुखो की ही प्रधानता स्वीकार करना जीवन के अनुभव के विपरीत भी है। कारण—

"हम जानते हैं कि पशु जितना आनन्द ऐन्द्रीय अनुभवो से प्राप्त करता है, उससे अधिक आनन्द मनुष्य बौद्धिक अनुभवो से प्राप्त करता है और हम यह भी देखते हैं कि अपने बौद्धिक क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य अपने आत्मिक क्षेत्र में अधिक आनन्दित रहता है।"

वेदान्त के विरुद्ध एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि वह हमें ससार से विमुख करता है, अकर्मण्यता सिखाता है और सदाचार का तिरस्कार करता है। स्वामी जी ने लिखा है—

"मेरा उद्देश्य यह दिखाना है कि सदाचार और परमार्थ के उच्चतम आदर्श और उच्चतम दार्शनिक सत्य में सामरस्य है। सदाचार और नीति की महिमा को अक्षुण्ण रखने के लिये आपको अपने उच्चतम सत्य को झुकाना नही पड़ेगा, वरन् सदाचार और नीति के यथार्थ आधार तक पहुँचने के लिये आपको उच्चतम दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्यों पर विश्वास करना होगा। मनुष्य का ज्ञान उसके हितो का खण्डन नहीं करता।"

(प्रैक्टिकल वेदान्त—पृ० ११०)

वेदान्त की अकर्मण्यता के विषय मे स्वामी जी कहते हैं—

"यदि अकर्मण्यता को आलस्य के अर्थ में ग्रहण किया जाये, तो निश्चित है कि वह हमारा लक्ष्य नही हो सकती।' 'और न ही वासना के मिश्रण

से अकमण्यता कर्मण्यता बन सकती है । जो वास्तविक कर्मण्यता वेदान्त का लक्ष्य है, वह कभी भी न टूटने वाली शाश्वत शान्ति से युक्त है ।' ''''' और हम सब जानते हैं कि कार्य की सफलता के-लिये यही अवस्था सर्वश्रेष्ठ है ।"

(वही पृ० ४)

स्पष्टत यहाँ गीता के निष्काम कर्मयोग और स्थितिप्रज्ञ के महत्व की प्रतिष्ठा है ।

संसार के बढ़ते हुए संघर्ष को देखकर व्यक्ति का साहस छूटा जा रहा है । कोई तो इससे भयभीत होकर जगलो में चले जाते हैं, और कुछ व्यक्ति की शक्तियो पर अविश्वास कर समाज की शरण में जाते हैं । दोनो प्रवृत्तियाँ ही कायरता की परिचायक हैं । मनुष्य को आत्मशक्ति पर विश्वास होना चाहिये । व्यक्ति के अन्दर उमग की ऐसी तरग है जिसके वेग के सामने कोई भी बाधा नही टिक सकती । वेदान्त व्यक्ति को आत्मविश्वास सिखाता है । मनुष्य पापी नही है जैसा कि ईसाइयो के धार्मिक मानते हैं, वह शक्तिहीन नही है । स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—

"वह नास्तिक है जिसे अपने आप मे विश्वास नही है ।"

(वही पृ० १६)

वेदान्त के विरुद्ध एक यह आक्षेप भी लगाया जाता है कि वह व्यक्तित्व का नाश करना सिखाता है । अपने व्यक्तित्व को ब्रह्म में लीन करने को कहता है । रत्नाकर ने 'उद्धव शतक' मे गोपियों के मुख से यही कहलवाया है कि "सागर मे बूँद गिर जाने से सागर का क्या बन-बिगड जायेगा, हाँ बूँद की बूँदता मिट जायेगी ।" इसके उत्तर मे कहते हैं—

"किन्तु वेदान्त का लक्ष्य व्यक्तित्व का नाश नही, उसका यथार्थ साक्षात्कार है ।"

(वही पृ० ७३)

स्वामी विवेकानन्द के युग मे भी डार्विन के विकासवाद का बड़ा जोर था किन्तु जड और अन्ध विकास किसी को भी मान्य नही है । पश्चिम के वैज्ञानिको ने भी डार्विन का कडा-विरोध किया है और बर्गसा, अलैक्जैन्डर तथा मॉर्गन आदि ने चेतन विकासवाद की प्रतिष्ठा की है । स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—

"... और जिस परिवर्तन की समष्टि को हम विकास कहते हैं, उसका कारण है आत्मा, जो निरन्तर अपनी असीम शक्ति का अधिकाधिक प्रकाशन किया करती है।" (वही पृ० ८६)

और आगे—

"उस असीम शक्ति के प्रकाशन का अर्थ है उससे परिचित होना। धीरे-धीरे यह विराट देव जाग रहा है, अपनी शक्ति से अवगत होता जा रहा है, और प्रवुद्ध होता जा रहा है। जैसे-जैसे उसकी चेतना उद्‌वुद्ध होती जाती है, उसके बन्धन टूटते जा रहे हैं, उसकी शृङ्खलाएँ पाश-पाश होती जा रही हैं, और वह दिन अवश्य आएगा जब यह देव अपनी असीम शक्ति और अबाध कौशल का ज्ञान प्राप्त कर, अपने पाँव पर तन कर खड़ा हो जाएगा। आइए हम सब मिलकर उस दिव्य जागरण को शीघ्र पूरा होने मे सहायता दें।"

(वही पृ० ४८५)

श्री अरविन्द ने उपनिषद् दर्शन और चेतन विकासवाद का सामञ्जस्य किया है। श्री अरविन्द ने 'इस देव' मे मिलते-जुलते गुणों वाले नॉस्टिक व्यक्ति की भावना की है। पन्त के नवमानव पर इन दोनो की छाया है।

स्वामी विवेकानन्द ने शकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का कहाँ तक निर्वाह किया है, यह प्रश्न विवादग्रस्त है। किन्तु यह स्पष्ट है कि स्वामी जी के विचारो मे शकर मे पर्याप्त भिन्नता लक्षित होती है और यह भिन्नता आधुनिक युग की माँग थी। शंकराचार्य के लिए नीति-शास्त्र (Ethics) केवल दृश्य जगत के भीतर की चीज है किन्तु स्वामी जी उच्चतम दार्शनिक सत्यो से उसके समन्वय की बात करते हैं। शकर ने यह निर्दिष्ट रूप से आदेश दिया कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए सन्यास आवश्यक है, किन्तु स्वामी जी के अनुसार व्यक्ति संसार मे रहकर ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द ने ससार के विवर्त और माया पर कही भी बल नही दिया। स्पष्टत स्वामी जी शकराचार्य की अपेक्षा प्रस्थानत्रयी के अधिक निकट हैं। उन्होंने अद्वैत को आधुनिक युग के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। किन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने शकर अद्वैत का मूल सिद्धान्त—ब्रह्म

ग्रोर ग्रात्मा की एकता तथा ब्रह्म ग्रौर जगत की एकता—को पूर्णत स्वीकार किया है, स्वीकार ही नही किया, परिस्थितियो के ग्रनुकूल उसका विशद् वैज्ञानिक विवेचन भी किया है। "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" ग्रौर "सर्वं खल्विद ब्रह्म" मे से स्वामी जी प्रथम की ग्रपेक्षा दूसरे सत्य की ग्रोर कही पधिक ग्राकृष्ट हैं।

४—**मार्क्सवाद**—इस ग्रध्याय के ग्रारम्भ में ही दर्शन के दो रूपो का भेद स्पष्ट किया गया है। भौतिकवाद पदार्थ को प्रधान मानता है। तो फिर चेतना कहाँ से उत्पन्न हुई ? पदाथ से।

एँजेल्स ने कहा कि "चेतना का जन्म मानव-मस्तिष्क से होता है ग्रौर मनुष्य प्रकृति की उपज है।"

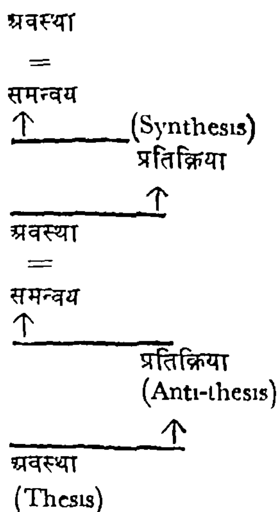
एँजेल्स ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि चेतना ग्रौर प्रकृति के ग्रन्य रूपों मे कोई विरोध नही क्योकि चेतना प्रकृति की उपज है। यह तो हुग्रा भौतिकवाद का सामान्य रूप।

मार्क्स ने इसमें द्वन्द्ववाद (Dialectics), इतिहास की भौतिक व्याख्या (The materialist conception of History) ग्रौर वर्ग सघर्ष (Class struggle) के सिद्धान्तो को जोडकर उस वाद को जन्म दिया जिसे मार्क्सवाद कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि मार्क्सवाद भौतिकवाद का ही एक विशिष्ट रूप है।

५—**द्वन्द्ववाद**—ऊपर कहा जा चुका है कि सत्य या तो विकासशील हो सकता है, या स्थाग्गु। मार्क्स के लिए पदार्थ सतत् गतिशील है। विश्व में ग्रनेक व्यापार चला करते है, क्रिया—प्रतिक्रिया हुग्रा करती है, जिसके फलस्वरूप ससार मे सर्वत्र गति दिखाई देती है। यह गति सदैव उन्नति की ग्रोर होती है। विकासवाद ग्रौर द्वन्द्ववाद मे भेद है। विकासवाद के ग्रनुसार विकास एक निश्चित सीधी दिशा में निश्चित चाल मे होता है। किन्तु मार्क्स के ग्रनुसार यह विकास सीधी दिशा मे नही वरन् टेढी-मेढी दिशा मे, ग्राकस्मिक ग्रौर क्रांति के रूप मे होता है। क्योकि इस प्रगति का कारण सघर्ष द्वन्द्व है, इसलिए इसके सिद्धान्त को द्वन्द्ववाद कहा जाता है। राहुल ने ग्रपने 'दर्शन दिग्दर्शन' मे लिखा है कि "गीतवाद को ही द्वन्द्ववाद भी कहते हैं।" (पृ० ३५७)

मार्क्स ने यह द्वन्द्व सिद्धान्त हीगेल के दर्शन से ग्रहण किया।

अब प्रश्न यह होता है कि इस गतिवाद का, इस द्वन्द्ववाद का स्वरूप क्या है। पहले एक अवस्था (Thesis) होती है। फिर उसके विरोध में प्रतिक्रिया (Antithesis) का जन्म होता है। अवस्था और प्रतिक्रिया के सघर्ष के फलस्वरूप एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें प्रथम दोनो अवस्थाओं का सामजस्य पाया जाता है। इसे समन्वय (Synthesis) कहते हैं। प्रतिक्रिया अवस्था का प्रतिषेध करती है और समन्वय प्रतिक्रिया का प्रतिषेध करता है—अर्थात् समन्वय प्रतिषेध (प्रतिक्रिया) का निषेध है। यह समन्वय ही आगे के विकास-क्रम में अवस्था बन जाता है, जिसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है और फिर एक समन्वय हमारे सामने आता है। इस प्रकार यह द्वन्द्ववाद सीधी गति मे (In straight line) न चलकर टेढ़ी-मेढ़ी (Spiral) गति मे चलता है। इसी बात को इस रूप मे दिखाया जा सकता है—



हम भारत के आधुनिक इतिहास से ही इस द्वन्द्वात्मक परिवर्तन का उदाहरण देते हैं। १९४७ के पूर्व यहाँ अंग्रेजो का राज्य था। यह अवस्था हुई। इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया यह हुई कि भारतीयो ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। तीसरे चरण में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यह प्रथम दोनो का समन्वय हुआ। अब स्वतन्त्र भारत ही अवस्था बन गया। प्रगति के लिये आन्दोलन छिड़ा। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना बनाई गई (प्रतिक्रिया) इस योजना की पूर्ति ही समन्वय है। इसी प्रकार विकास का क्रम आगे बढ़ता जाता है।

इतिहास की भौतिक व्याख्या

भौतिकवाद को स्वीकार कर लेने के पश्चात् मार्क्स के सामने दूसरा प्रश्न था अपने भौतिक सिद्धान्त के आधार पर मानव-समाज, समाज के इतिहास और सामाजिक चेतना की व्याख्या करना। यह ऊपर बताया जा चुका है कि भौतिकवादियो के अनुसार पदार्थ से चेतना का उदय होता है। जब वे भौतिक दृष्टिकोण से सामाजिक चेतना और उसकी प्रगति की व्याख्या करने के लिये

अग्रसर होते है, तो यह सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि उसका जन्म और विकास समाज की भौतिक परिस्थिति के अनुकूल ही होता है।

अब प्रश्न उठता है कि समाज की भौतिक परिस्थिति का क्या अभिप्राय है ? किसी भी समाज के उत्पादन के साधन ही—रोटी, कपडा आदि पैदा करने के उपाय हो—उसकी भौतिक परिस्थिति के परिचायक हैं। उत्पादन के साधन सदैव एक से नही रहते। युग की चाल के साथ-साथ वे भी बदलते रहते हैं।

उत्पादन के साधनो के अनुरूप ही समाज के पारस्परिक सम्बन्धो का निर्माण होता है। मानव के ये समाजगत सम्बन्ध अनिवार्य हैं, मनुष्य अपनी इच्छा से उन्हे बना या बिगाड नही सकता क्योकि वे तो उत्पादन के साधनो द्वारा ही नियन्त्रित हैं। केवल पारस्परिक सम्बन्ध ही नही, व्यक्ति की बौद्धिक चेतना और विचार परिपाटी के जन्मदाता भी यही उत्पादन के साधन है। समाज की दशा समाज के चिन्तन के अनुरूप नही होती, वरन् समाज का चिन्तन समाज के उत्पादन के साधनो के अनुसार हुआ करता है। साहित्य की आत्मा और उसके मान-दण्डो का निर्धारण करने वाले भी ये उत्पादन के साधन ही जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रियाओ को नियन्त्रित करते हैं। चेतना मानव के जीवन को नियन्त्रित नही करती, वरन् सामाजिक जीवन चेतना का नियन्त्रण करता है।

जब उत्पादन के साधन बदल जाते हैं, तो समाज की चिन्तन-धारा और पारस्परिक सम्बन्धो का भी बदलना आवश्यक हो जाता है। पुरानी विचार-धारा और सामाजिक-सगठन अपने मूल्य खो बैठते हैं। सामाजिक क्रान्ति का जन्म होता है। नये चितन और सामाजिक रूप-रेखा का जन्म होता है।

सुमित्रानन्दन पन्त ने 'आधुनिक कवि' की भूमिका मे भारतवर्ष के इतिहास की भौतिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उसे ही यहाँ उदाहरण के लिए लिया जा सकता है। भारतीय इतिहास के आदिम पशुजीवी युग मे उत्पादन का साधन था पशु पालन। राम और कृष्ण के युग मे—कृषि युग मे—उत्पादन का साधन हुआ खेती। बस समाज की सारी व्यवस्था बदल गई। आदिम युग मे मनुष्य के यौन सम्बधो पर कोई नियन्त्रण नही था। राम ने अपने युग के

अनुरूप एक नारी व्रत का पालन किया। खेत पर काम करने वाले मनुष्य के लिये एक पक्के और सच्चे साथी की आवश्यकता थी। किन्तु स्त्री पुरुष की दासी नही है। कृष्ण ने नारी-स्वतन्त्रता के लिये सफल प्रयत्न किया। आज का युग यन्त्र-युग है। यन्त्र ही उत्पादन का साधन है। इसलिए सामन्तवादी सामाजिक सगठन का बदलना अनिवार्य है।

वर्ग-सघर्ष

इतिहास हमे बताता है कि प्रत्येक युग मे जातियाँ आपस में लडती रही। राष्ट्रो मे परस्पर युद्ध होते रहे। एक ही राष्ट्र में बसने वाले विभिन्न वर्ग भी आपस मे लडते रहे। मार्क्स ने इस विश्व-व्यापी और सर्व-युगीन सघर्ष का कारण वर्ग-सघर्ष बताया। उसका कहना है कि "वर्तमान समाज का इतिहास" वर्ग-सघर्ष का इतिहास है।

प्रधान वर्ग दो ही हैं। एक शोषक जिसका उत्पादन के साधनो पर अधिकार है और दूसरा शोषित। शोषक और शोषित वर्ग का यह सघर्ष सदैव से चलता आया है, चल रहा है और तब तक चलता रहेगा जब तक कि वर्गों को पूर्णत मिटा नही दिया जाता।

मार्क्स यह भी मानता है कि आज के युग में बूर्जुआ वर्ग के विरुद्ध केवल सर्वहारा ही पूर्णत प्रगतिगामी है। मध्य वर्ग तो रूढिवादी और प्रतिक्रियावादी है।

इसके अतिरिक्त मार्क्स यह भी मानता है कि प्रत्येक वर्ग-सघर्ष राजनीतिक सघर्ष है।

अर्थ-सचय और क्रान्ति

किसी भी वस्तु का मूल्य दो दृष्टियो से देखा जाता है। प्रथम तो यह कि वह मानव की आवश्यकता पूरी करती है, और द्वितीय, उसके बदले मे कोई भी दूसरी वस्तु प्राप्त की जा सकती है। बदले में दूसरी वस्तु प्राप्त करने की शक्ति ही उस वस्तु का मूल्य कहलाती है। पहले वस्तुओ का आदान-प्रदान वस्तुओ द्वारा ही होता था। अर्थ (Money) नाम की कोई चीज नही थी। धीरे-धीरे अर्थ का आविर्भाव हुआ और वस्तुओ के क्रय-विक्रय का एकमात्र साधन यह अर्थ ही बना। धीरे-धीरे अर्थ ने पूँजी (Capital) का रूप धारण किया।

मानव जाति का इतिहास हमे यह बताता है कि पूँजी धीरे-धीरे कम से कम हाथो मे पु जीभूत होती जाती है। उसी को मार्क्स ने "Historical tendency of capitalist accumulation" कहा है। फिर दो वर्ग बन जाते हैं। एक पूँजीपतियो का शोषक वग, दूसरा सर्वहारा का शोषित वर्ग। शोषक कम मजदूरी पर अधिक काम चाहते हैं। मजदूर अपनी मजदूरी का पूरा लाभ स्वय उठाना चाहते हैं। पूँजीपतियो और मजदूरो मे सघर्ष का आरम्भ होता है। यह वर्ग-संघर्ष जोर पकड जाता है। फिर रक्त-क्रान्ति होती है और वर्गहीन समाज की स्थापना होती है, जिसमे अर्थ का समान वितरण होता है और निजी सम्पत्ति का खात्मा हो जाता है।

५—महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर सघर्ष किया किन्तु मार्क्सवादी गाँधी को प्रतिक्रियावादी ठहराते थे, क्योंकि उन्होंने रक्त-क्रान्ति नही होने दी। पन्त भी रक्त-क्रान्ति के विरुद्ध हैं। गाँधीवाद का सक्षिप्त विवरण देने के पश्चात् ही पन्त का गाँधीवाद के प्रति दृष्टिकोण निर्धारित किया जा सकता है।

गाँधीवाद के तीन पहलू हैं—राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक। राजनीतिक क्षेत्र मे गाँधी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद ..ा सघर्ष आता है। स.माजिक क्षेत्र मे भारत के सास्कृतिक पुनरुत्थान की बात है और धार्मिक क्षेत्र मे गाँधी की आध्यात्मिक शक्ति का निरीक्षण करना है। जहाँ तक महात्मा गाँधी के धार्मिक स्वरूप का प्रश्न है, वह बुद्ध और ईसा की परम्परा में आते हैं। उनका क्रान्तिकारी रूप राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र मे लक्षित होता है। वे सन्त भी थे और क्रान्तिकारी भी। कोएसलर का कहना है कि आज के युग मे ऐसी प्रतिभा की आवश्यकता है जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ क्रान्ति के बीज भी हो।

महात्मा गाँधी की राजनीति और समाज-सुधार का आधार है धार्मिक चेतना। उन्होंने लिखा है—"मेरी देश-भक्ति मेरे धर्म से नियन्त्रित है।" किन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि महात्मा जी कोरे आदर्शवादी रहे या उन्होंने

जनता की कमजोरियो का ध्यान किए विना अपने विश्वास पर अन्ध दृढ़ता से काम किया। आदर्श के साथ-साथ उनका ध्यान भारत की वर्तमान जनता की ओर भी रहा।

महात्मा गांधी ने स्पष्ट घोषणा की कि मैं "व्यावहारिक आदर्शवादी" हूँ। महात्मा गांधी ने बड़े स्पष्ट शब्दो मे यह कहा कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियो से किसी प्रकार का भी समझौता नही हो सकता, क्योकि उनकी नीति का आधार है पाशविक शक्ति।

महात्मा जी के सिद्धान्त थे सत्य और अहिंसा। सत्य को उन्होंने अपनी जीवनी मे निरपेक्ष सत्य (Absolute truth) माना है। राजनीति के क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के प्रयोग पर कई विद्वान् आक्षेप करते हैं। उसके उत्तर में कई विद्वान् यह कहते हैं कि उस समय भारत की दशा ऐसी थी कि वह सशस्त्र क्राति कर ही नही सकता था। किन्तु दोनो बातें गलत हैं। ब्रिटिश साम्राज्य बर्बर शारीरिक शक्ति का प्रतीक था। उनके प्रति गांधी ने विद्रोह किया। बर्बरता की पाशविकता से नष्ट करने का प्रयास और भी भयकर था। सत्य और अहिंसा आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक हैं। महात्मा जी ने कुटिल शरीर को आत्मा से परास्त करने का निश्चय किया।

इतना ही नही महात्मा गांधी के सामने केवल अपने देश का ही प्रश्न नही था, सारे विश्व की अशान्ति का दृश्य उनके सामने था। उस अशान्ति का कारण था—और है—मानव का नैतिक पतन। यह निश्चित है कि ससार मे शान्ति तभी हो सकती है जब मानव-तन्त्र नैतिकता मे दृढ रूप से आधारित हो।

अन्य बातो मे महात्मा जी के विचारो से विरोध रखते हुए भी टैगोर ने इस सम्बन्ध मे उनका पूर्ण समर्थन किया। उन्होने कहा कि "भारत की निहत्थी जनता ही यह सिद्ध कर सकती है कि नैतिकता पाशविक शक्ति से अधिक ताकत रखती है। हमारा युद्ध आध्यात्मिक युद्ध है—मानवता की मुक्ति के लिए सघर्ष है।"

अहिंसा की नीति अपनाना कायरता का प्रतीक नही है। अहिंसक को हिंसक की अपेक्षा कही अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। महात्मा जी ने

कहा है। कि कायरता और हिंसा दोनो में से हिंसा को ही मैं पसन्द करूँगा। किन्तु अहिंसा हिंसा से कही अधिक उदात्त है।

महात्मा गाँधी "गत आदर्शो के अन्तिम दीपशिखोदय" नहीं हैं, यह ऊपर की विवेचना से स्पष्ट हुआ। महात्मा जी की दृष्टि भूख से तड़पते हुए भारत पर पड़ी और उस करुण परिस्थिति को मिटाना ही महात्मा जी ने अपना उद्देश्य बनाया। उन्होंने स्वय लिखा है कि "जब सारा भारत भूख से तड़प रहा है तो मेरा केवल एक कर्त्तव्य है और वह है भूखो के लिए भोजन जुटाना। व्याकुल रोगियो को कबीर के पद के पदो से बहलाना असम्भव है।"

(महात्मा गाँधी—रोमाँ रोला)

६—श्री अरविन्द

मानव की आकांक्षाएँ क्या हैं ? वह पूर्ण ईश्वरत्व, उन्मुक्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अपरिमित आनन्द और अबाध स्वतन्त्रता चाहता है। वह आज भी यही चाहता है, कल भी यही चाहता था, और आगे भी यही चाहेगा।

चेतना और पदार्थ का सामरस्य—आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी मानव-साधना का लक्ष्य यही कामनाएँ हैं और भौतिक क्षेत्र मे भी। हमे बताया जाता है कि शकराचार्य आदि ज्ञानियो ने भूत-जगत का तिरस्कार करके जीवन की चरम सफलता—ये सभी विभूतियाँ प्राप्त की। आज हम देखते हैं कि विज्ञान आत्म-जगत का पूर्ण तिरस्कार कर मनुष्य के उच्चतम लक्ष्य की पूर्ति इन्ही इच्छाओ की पूर्ति में—सग्लन है। विज्ञान और आध्यात्मिकता का यह युद्ध आज चल रहा है। क्या यह सभव है कि दोनो का उद्देश्य एक होते हुए भी उनमे भयकर शत्रुता हो ?

श्री अरविन्द ने यह सिद्ध किया है कि चेतना और पदार्थ मे यह विरोध देखने का कारण है मानव की सकुचित दृष्टि। इस प्रकार की समस्याएँ तभी उठती हैं जब मानव-चेतना मे उलझनें हो, जब वह भीतर सामरस्य के दर्शन करने मे असमर्थ हो। हमे अपने में जो गलतियाँ दिखाई देती हैं, वे सभी सत्य हैं—भले ही अनिर्दिष्ट रूप में।

वास्तव मे देखा जाए तो पदार्थ और चेतना में कोई विरोध नही है। दोनो

मे सामरस्य है। उपनिषदो मे पदार्थ को भी ब्रह्म कहा गया है। यह कहना भ्रम है कि ससार असत्य है (शकर)। विज्ञान ने भौतिक आधार पर जो प्रगति की है उसे भ्रम कहकर नही ठुकराया जा सकता। इसके साथ ही साथ ऋषियो-मुनियो ने कठोर साधना करके जिन आत्मिक शक्तियो का उपार्जन और गूढ रहस्यो का उदघाटन किया है, उन्हें झूठा कह देना भी बुद्धि की विकृति प्रदर्शित करना है।

चेतना और पदार्थ दोनो की उपयोगिता को स्वीकार कर लेने के पश्चात्, उन्हे सत्य मान लेने के पश्चात् हमारे सामने प्रश्न आता है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? किस प्रकार हम चेतना और पदाथ मे सामरस्य स्थापित कर सकते हैं? इस समस्या को हल करने के लिए हमें दो बातें स्वीकार करनी हैं—प्रथम हमे एक सर्वव्यापी सत्ता को पहचानना है जो इन दोनो तत्त्वो को उचित महत्व और गरिमा प्रदान करती है। द्वितीय, जब हम उस सर्वव्यापी सत्ता और चेतना तथा पदार्थ के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करेंगे तो विकासवाद का सिद्धान्त ही सारी गुत्थियो को सुलझाता है। श्री अरविन्द के दर्शन का मूल है उपनिषद्-ज्ञान और विकासवाद का समन्वय। उपनिषद् का ज्ञान ही विकासवाद को वास्तविक एव पूर्ण सिद्धान्त बनाने में समर्थ है। श्री अरविन्द ने लिखा है कि प्राचीन पूर्वी ज्ञान और आधुनिक पश्चिमी विज्ञान के समन्वय की ओर ही आज का युग बढ रहा है।

उपनिषद् ज्ञान और आधुनिक विकासवाद के स्वरूप को समझने के लिए हमे पहले मूल सत्य से चलना पडेगा।

मूल सत्य—ससार मे हमे परिवर्तन का ज्ञान होता है। स्वानुभूति मे हमे एकरसता का ज्ञान होता है। यह मैं जानता हूँ कि मैं वही हूँ जो परसो था, कल था, आज हूँ या कल हूँगा। सत्य के ये दो ही रूप हो सकते हैं—एक स्थिर, दूसरा गत्यात्मक। ये दोनो ही सत्य हैं।

"अत हमारे सामने दो सत्य हैं—एक विशुद्ध सत्ता और द्वितीय विश्व-सत्ता—सत्ता का सत्य और गति का सत्य। किसी एक को अस्वीकार करना

आसान है किन्तु सच्ची और फलवती योग्यता तो चेतना के सत्यो को समझाने और उनके पारस्परिक सम्बन्धो के उद्घाटन करने मे है।"

(डिवाईन लाईफ प्रथम भाग पृ० ११६)

जो स्थिर है वही ब्रह्म है और यह विकासशील सत्य है चेतना-शक्ति।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या ये दो ही मूल सत्य हैं या इनसे परे भी कुछ है ? हाँ मूल सत्य तो शुद्ध चैतन्य (Absolute) है। यह अवाङ्मनसगोचर है। स्थिरता और गतिशीलता तो उस शुद्ध चैतन्य पर मानव-मस्तिष्क के आरोप हैं। हम उसे जान नही सकते इसलिए हमें उपर्युक्त दोनों सत्यो को स्वीकार कर लेना चाहिये।

उपर्युक्त दो सत्यों—स्थिर सत्ता और चेतन शक्ति—को मान लेने पर यह प्रश्न आता है कि उन दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ? तन्त्र शास्त्र मे जो शिव और शक्ति का अभेद स्वीकार किया गया है उसी प्रकार श्री अरविन्द स्थिर सत्ता और चेतना शक्ति को एक मानते हैं।

"शक्ति सत्ता से सपृक्त है। शिव और काली, ब्रह्म और शक्ति दो नही है जो अलग-अलग किये जा सकें। सत्ता से सयुक्त शक्ति शान्त हो सकती है या गतिवान हो सकती है। किन्तु जब वह शक्ति शान्त है तब भी वह रहती है और न मिटती है न कम होती है तथा न ही उसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन आता है।"

(वही पृ० १२५)

अब प्रश्न यह होता है कि स्थिर सत्ता से शक्ति का उदय कैसे होता है ? क्यो होता है ? तो इसके उत्तर मे श्री अरविन्द कहते हैं कि यह एक शाश्वत सत्य है। ब्रह्म के अनन्त उल्लास की अभिव्यक्ति शक्ति की इस सजगता और क्रीड़ा मे होती है।

"अचल से गति का उदय एक सनातन सत्य है।"

(वही पृ० ११६)

"सम्पूर्ण सृष्टि या परिवर्तन इस आत्माभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"

(वही पृ० १६६)

सृष्टि-क्रम (विकासवाद)

मूल सत्यो को स्थिर कर लेने के पश्चात् अब यह देखना है कि सृष्टि का क्रम क्या है ? चेतन शक्ति किस प्रकार अपने आप को अभिव्यक्त करती है ? विकास का क्या रूप है ?

भौतिक विकासवादी यह मानते है कि पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है। उसके अनुसार विकास की शक्ति सजग नही है, चेतन नही है, जड है। किन्तु श्री अरविन्द शक्ति को चेतन मानत है। कारण, ससार मे सर्वत्र हमे उपयोगिता और उपादेयता लक्षित होती है। प्रकृति का क्षुद्र से क्षुद्र अवयव भी कुछ उपयोगिता रखता है। यदि विकासगामी शक्ति जड है, तो यह उपयोगिता कैसे हो सकती थी ?

सच्चिदानन्द और चेतन शक्ति मे अभेद है। जो कुछ हमे दिखाई देता है, सभी सच्चिदानन्द की आनन्द-क्रीडा है। ससार रूप मे सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति के—सृष्टि क्रम के—दो रूप हैं। एक अवरोहण (Involution) दूसरा आरोहण (Evo ution)। अवरोहण की क्रिया आरोहण की क्रिया के ठीक विपरीत है। अवरोहण की दशा मे सच्चिदानन्द से अतिमन (Supermind) का उदय होता है, अतिमन से मन (Mind) का, मन से प्राण (Life) का और प्राण से पदार्थ (Matter) का। यह सभी सच्चिदानन्द की चेतना शक्ति के रूप मे अभिव्यक्ति है। आरोहण की क्रिया में पदार्थ के भीतर यह चेतना शक्ति ही उच्छ्वसित हो उठती है, प्राण को जन्म देती है, प्राण से मन को, मन से अतिमन को और अन्तिम अवस्था मे अतिमन सच्चिदानन्द मे लय हो जाता है। श्री अरविन्द ने सच्चिदानन्द की सृजनात्मिका शक्ति को माया कहा है। माया के दो रूप है। नीच माया तो ससार के भेदो को और विषमताओ को जन्म देती है। पदार्थ, प्राण और मन तक की अवस्थाएँ नीच माया के भीतर हैं। अतिमन मे उच्च माया का क्षेत्र है, जहाँ भेद-बुद्धि और विषमताओ का नाश हो जाता है। सृष्टि-क्रम की—अवरोहण और आरोहण की क्रिया को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं—

सच्चिदानन्द (चेतन शक्ति)

ln अ ↓ ← आ E١o

١o व .. .. रो lu

lu रो अन्तिम अतिमन { उच्च माया } ह ti

(अभेद—बुद्धि)

ti ह .... ण on

↓ ↑ |

on ण मन मन |

[नीचमाया]

प्राण प्राण (भेद-बुद्धि)

↓

↓ ↑ |

पदार्थ ___|___ |

.. ..

जड विकासवाद में विश्वास करने वालो का कहना है कि पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है, वह पदार्थ से महत् नही, उससे गौण है। किन्तु उनसे प्रश्न किया जाता है कि क्या चेतना अव्यक्त रूप से पदार्थ में वर्तमान नही है ? उसे पदार्थ मे अव्यक्त रूप से वर्तमान मान लेने से दोनो को समान महत्व प्रदान करना पडेगा और चेतना को पदार्थ से सर्वथा भिन्न तत्त्व मानना पडेगा किन्तु यह भौतिकवादी स्वीकार नहीं कर सकता। और यदि वह यह कहे कि चेतना अव्यक्त रूप मे पदार्थ मे वर्तमान नहीं है तो उसे यह मानना पडेगा कि चेतना के अभाव से चेतना का आविर्भाव हुआ। किसी अभाव मे किसी चीज का भी जन्म होना अवैज्ञानिक है। श्री अरविन्द के विकास सिद्धान्त का मूल मन्त्र है—"जो कुछ पदार्थ मे अव्यक्त रूप मे विद्यमान नही है, वह उससे उदित नही हो सकता।"

(वही पृ० १३३)

पदार्थ मे प्राण अव्यक्त रूप से वर्तमान है, प्राण में मन और मन में अतिमन, अव्यक्त रूप से वर्तमान है।

निम्न मूल्यो से उच्च मूल के आविर्भाव के मूल में वही चेतना शक्ति है। किन्तु उच्च मूल्यो के उदय होने पर निम्न मूल्यों का तिरस्कार करना मूर्खता है। मन या अतिमन के उदय पर ससार को मिथ्या या विवर्त कह देना गलती है। सच तो यह है कि उच्च मूल्यो को निम्न मूल्यो का अपनी उन्नति के साधन के रूप मे प्रयोग करना चाहिये और आज ऐसा हो भी रहा है।

मनुष्य का स्थान ससार में महत्वपूर्ण है क्योकि केवल उसे ही मन की—बौद्धिक-चेतना की प्राप्ति हुई है और फिर उसी में ही अतिमन का उदय होगा। किन्तु अभाव-पीडा आदि का कारण है मन का सकुचित और अविद्या-ग्रस्त होना। नीच माया ही अविद्या है जिसके कारण मनुष्य अपने आपको ससार से बिल्कुल अलग एक इकाई के रूप मे देखने लगता है। किन्तु अतिमन के उदय होने पर—जो उच्च माया या विद्या का क्षेत्र है—इस भेद बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य भेद मे अभेद और अभेद में भेद देखने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण मानव जाति का विकास अति चेतना की ओर हो रहा है। इस नव चेतना को ही कवि पन्त स्वर्ण-किरण और स्वर्ण धूलि कहता है और उसके समस्त परवर्ती काव्य में इसी नव-चेतना के सौन्दर्य, सुख और समृद्धि के गीत हैं। श्री अरविन्द ने लिखा है कि अतिमन के उदित हो जाने पर जीवन और ससार बदल जायेगा। अतिमन से विभूषित मानव को श्री अरविन्द ने द्रष्टा (Gnostic being) कहा है। यही पन्त का नव-मानव है। ईसाई मत के आरम्भिक काल में विद्वानों का एक ऐसा दल भी उठ खडा हुआ था जो श्रद्धा को नही, ज्ञान को मुक्ति का साधन मानता था और जो व्यक्ति का जन्म मूल तत्व के निरन्तर विकास का फल मानता था। इस दल के व्यक्ति को Gnostic कहा जाता था। वह द्रष्टा या नव मानव सभी प्रकार के बन्धनो और अभावो से मुक्त होगा। किन्तु अतिमन का उदय ही विकास-क्रम का अन्त नही है। अभी तो सच्चिदानन्द में लीन होना है। इसका साधन है ज्ञान। मनुष्यत्व ही है ईश्वरत्व की प्राप्ति। श्री अरविन्द के शब्दो में—

"To fulfil God in life is man's manhood"

(Same p 56)

कवि के चिन्तन का विकास

'वीणा'—वीणा मे हमें तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं—प्रकृति-प्रेम, माँ का प्रेम, आदर्श के प्रति मोह। इस आरम्भिक काव्य में जो प्रार्थनाएँ मिलती हैं उनमे माँ के प्रेम और आदर्श के मोह का मधुर मिलन दिखाई देता है। अधिकाश प्रार्थनाएँ व्यक्तिगत हैं। किन्तु ससार के कल्याण की भावना भी कुछ गीतो में प्रस्फुटित हुई।

''कुमुद कला वन कल हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ!
जग का तिमिर त्रास हर दूँ—
नीरव रजनी में निर्भय।

यह आदश चिन्तन सर्वत्र कवि के पास रहा है। माँ के अनन्य प्रेम ने ही कवि के हृदय मे माँ के प्रति भक्ति-भावना जाग्रत कर दी है। फलस्वरूप कवि माँ से ही प्रार्थना करने लगता है। 'वीणा' के भावो में गम्भीरता नहीं है किन्तु उनमे सरलता है, मजुल प्रेम की सरल निश्छल अभिव्यक्ति है। इसीलिये सभी गीत अत्यन्त मोहक वन पडे हैं। कवि के एकान्त जीवन की नीरसता ने उसके हृदय मे कामना जागत की जो रहस्यात्मक प्रेम रूप मे प्रकट हुई। कवि ने प्राय अपने को वालिका के रूप में चित्रित किया है। रहस्य-भावना से भरे हुए ये गीत उत्कृष्ट कोटि के हैं।

याद है क्या न प्रात की वात?
खिले थे जव तुम वनकर फूल,
भ्रमर वन, प्राण! लगाने धूल
पास आया मैं चुपके शूल
चुभाये तुमने मेरे गात
निठुर! यह भी कैसा अभिमान?

जहाँ तक चिन्तन का प्रश्न है, कवि में अभी सरलता मिश्रित जिज्ञासा है, अभी उसकी चेतना स्वप्न-लीन है।

"स्वप्न देखती थी मैं मादक, किन्तु अचिर, अस्फुट सुखमय,
लता कुन्ज में सोई हूँ मैं, सुरभित सुमनो पर निर्भय।"

ग्रन्थि-पल्लव—अचानक कवि के हृदय मे प्रेम का वाण लगता है जो चिर वियोग का शल्य छोड जाता है। 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' मे इस मर्मपीडा की ही विवृत्ति का कलात्मक वैभव है। इसका वर्णन हो चुका है। जहाँ तक चिंतन का सवाल है, पल्लव की "परिवर्तन" कविता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ से कवि का जागरण काल आरम्भ होता है। कवि को ससार की अनित्यता का निष्ठुर ज्ञान होता है और वह कराह उठता है—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस।

× × × ×

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,

(अनित्य जग)

ससार की अचिरता देखकर समुद्र का मन भी सिसक उठता है और उडगन भी सिहर उठते हैं। निष्ठुर परिवर्तन के झझावात में "पददलित धरातल टलमल हिल-हिल उठता है।" कवि सोचता है कि आखिर इस अनित्यता का कही अन्त भी है? ससार मे कही आनन्द और सुख भी है? उत्तर में उसे ससार की क्षण-भगुरता मे छिपे हुए स्थायी सनातन तत्त्व का ज्ञान होता है। कवि के लिये यह 'विश्व का तत्त्वपूर्ण दर्शन' है। अनित्य जग से ठीक विपरीत ज्ञान होता है।

"मूँदती नयन मृत्यु की रात खोलती नव जीवन का प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात बीज बोती अज्ञात।"

(नित्य जग)

कवि को सुख और दुख दोनो के महत्व का ज्ञान होता है। जीवन के लिये दोनो आवश्यक हैं—

"आज का दुख कल का आल्हाद, और कल का सुख आज विपाद,"

पन्त के पाठको को यह ध्यान रखना चाहिये कि यह विचार पन्त के चिंतन

का एक प्रधान स्तम्भ है। और यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि चिन्तन की प्रौढावस्था मे दुख-सुख के सामजस्य का यही सत्य हिंसा और अहिंसा, क्रान्ति और शान्ति के तुल्य महत्त्व के रूप मे प्रकट हुआ। यहाँ कामायनी की यह पंक्तियाँ अनायास ही याद आ जाती है—

"दुख की पिछली रजनी बीच, विकसिता सुख का नवल प्रभात।"

"नित्य जग" के विषय मे दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिए। प्रथम, यह कविता भी कवि की निराशा की छाया से बची नही है जैसा कि इन पंक्तियो से प्रकट होता है—

"अलभ है इष्ट अत' अनमोल, साधना ही जीवन का मोल।"

द्वितीय, नित्य जग का दार्शनिक चिन्तन कवि के जिज्ञासु और विकासशील व्यक्तित्व को स्थायी शान्ति प्रदान करने मे असमर्थ होता है। इस बौद्धिक उथल-पुथल का कारण समाज की करुण दशा का आघात नही है, कवि के व्यक्तिगत जीवन की कोई करुण घटना है। आघात व्यक्तिगत है, चिन्तन व्यक्तिगत है, इसलिए उसका हल भी प्रमुखत व्यक्तिगत ही है। "नित्य जग" कविता भारतीय चिन्तन से ओत-प्रोत है।

कला की दृष्टि से "परिवर्तन" कविता विशेष रूप से 'निष्ठुर परिवर्तन' उत्कृष्ट है—हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओ में मे एक है। यह कविता एक अन्य दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। कवि के मानसिक आघात और उसके क्रन्दन की शान्ति होती है, आध्यात्मिकता मे। 'गुञ्जन' के बाद की रचनाओ मे कवि की चेतना को समाज आहत करता है, सामाजिक समस्याओ का हल भी उसे मिलता है आध्यात्मिकता मे—श्री अरविन्द के दर्शन मे। यहाँ हम पन्त के चिन्तन के द्वितीय स्तम्भ पर पहुँचते है और वह है कवि का आध्यात्मिकता के प्रति मोह। जिस प्रकार "अनित्य जग' और "निष्ठुर परिवर्तन" का उत्तर है "नित्य जग" उसी प्रकार युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या का उत्तर मिलता है अरविन्द के दर्शन मे।

गुञ्जन

ऊपर यह कहा जा चुका है कि 'परिवर्तन कविता से ही कवि का

जागरण काल आरम्भ होता है। गुञ्जन में कवि की चेतना पूर्ण रूप से सजग हो गई है। आगे सारे काव्य में हमे कवि की उद्‌बुद्ध बुद्धि के ही दर्शन होते हैं।

ऊपर नित्य जग मे जिस आध्यात्मिकता मे कवि को जीवन की समस्याओ का समाधान मिलता है, उसी का निखार और परिमार्जित प्रसार हमें गुञ्जन मे लक्षित होता है। वियोग और प्रणय के गीत भी मिलते हैं। कवि अपने व्यक्तित्व से बाहर झाँकने का प्रयत्न कर रहा है। 'गुञ्जन' के विषय मे एक बात सदैव ध्यान मे रखनी चाहिये कि जहाँ तक कवि के चिन्तन के विकास का सवाल है, वह किसी भी वाद-विशेष मे उलझा नही दिखाई देता। हाँ, इतना अवश्य है कि कवि उपनिषद्-दर्शन, अद्वैत और स्वामी रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के विचारो से प्रभावित है। किन्तु कवि की प्रतिभा उनमे फँसी हुई नही, तपी हुई दिखाई देती है। उपर्युक्त तीनो विचार-धाराओ का प्रधान स्वर है मानव जीवन का अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि। (अद्वैतवाद केवल नि श्रेयस की सिद्धि को ही लक्ष्य बनाता है।) अद्वैत सिद्धान्त की मधुर व्यञ्जना 'एक तारा' कविता मे लक्षित होती है। चाँदनी के अन्तिम छन्द मे भी इसी की छाया है। किन्तु प्रधानतया कवि ने अद्वैत को ग्रहण न कर उपनिषदो और स्वामी विवेकानन्द आदि आधुनिक विचारको के आध्यात्मिक स्वरो को वाणी दी है। उनका प्रधान नाद है आस्तिकता और मानवतावाद या विश्व बन्धुत्व। और कवि मे दोनो प्रकार की रचनाएँ मिलती है। 'नीरव तार', 'तप' और 'प्रार्थना' आदि कविताओ मे दोनो बाते दिखाई देती है। यद्यपि 'नीरव तार' बहुत पहले की रचना है, किन्तु कवि ने उसे गुञ्जन में सग्रहीत कर उचित ही किया है। यह रचना इस काल की न होते हुए भी गुञ्जन के पन्त की प्रतिनिधि रचना है। इस काल के चिन्तन की सभी विशेषताएँ इसमे लक्षित होती हैं। कला की दृष्टि से भी यह 'गुञ्जन' की रचनाओ मे विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें कवि की आस्तिकता की छाप है, समर्पण मे भावुकता का वेग है, कर्मण्यता और शक्ति का उद्रेक है, और व्यक्तिगत सम्बन्धो को तोडकर लोक सेवा मे लीन रहने की भावना है। 'प्रार्थना' कविता उत्तरा की कविताओ के मेल मे रखी जा सकती है। 'स्वर्ण काव्य' और 'उत्तरा' मे आकर कवि जिस स्वर्णिम चेतना का आह्वान करता हुआ उसके ऐश्वर्य गान

मे तल्लीन हो जाता है वही यहाँ 'ज्योतिर्मय-जीवन' के रूप मे वर्तमान है। जो लोग यह कहते है कि पन्त मे चिन्तन की एकरसता नही है, उन्हे इस समानता को देखना चाहिए। 'प्रार्थना' मे जहाँ कवि "ज्योतिर्मय जीवन के बरसने" की प्रार्थना करता हुआ दिखाई देता है, वहाँ 'तप' में कवि मन को विश्व-वेदना मे तप कर अपने सजल स्वर्ण मे जीवन की पूर्णतम और पवित्र मूर्ति रचने के लिए कहता है। कुछ लोग ईश्वर विश्वास और विनय को पलायन प्रवृत्ति का द्योतक मानते हैं। किन्तु यह गलत है। ईश विनय का यह अर्थ नही है कि मनुष्य अपने आत्मविश्वास को खो बैठे, आलस्य मे डूब जाय। कवि को अपनी शक्ति पर भी विश्वास है। वह स्वय भी सघर्ष के लिये, नव-निर्माण के लिये कटिबद्ध है। 'मानव' कविता मे कवि ने मानव की गरिमा—शारीरिक और मानसिक—का प्रदर्शन किया है। यदि मनुष्य अपने अन्तर का विकास कर ले, यदि वह सच्चे अर्थो मे मानव बन जाय तो वह पूर्णकाम हो जायगा। से कोई भी अभाव नही सतायेगा।

उपर्युक्त विवेचन से कवि की आदर्श भावना का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया होगा। वीणा मे भी कवि के सामने एक आदर्श था। यहाँ उसी का विकास दिखाई देता है। कुछ व्यक्ति आदर्श भावना को दिवा-स्वप्न के तुल्य ठहराते है। आदर्शवादी होना पलायनवादी होना है। किन्तु इसका खण्डन हम जीवन मे ही पाते हैं। साहित्य की सभी समस्याओं का समाधान जीवन के क्षेत्र से होना चाहिये। ऐसा न करने पर निष्फल वाद-विवाद उठ खडा होता है। प्राय हम कहा और सुना करते हैं—प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का एक लक्ष्य निश्चित करना चाहिये, एक आदर्श बनाना चाहिये। यदि जीवन मे व्यक्ति को आदर्श सामने रखने की आवश्यकता है, तो क्या साहित्यकार के लिये आदर्शवादी होने की आवश्यकता नही है। प्रसाद जी ने कोरे आदर्शवाद की धार्मिक उपदेश से तुलना की है। प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख-यथार्थ का समर्थन किया है। पन्त का आदर्श हमने सक्षेप मे देखा। उनका यथार्थ अभी देखना है। उसके दर्शन 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक होते है। किन्तु क्या उनमें कवि आदर्शवादी नहीं रहा ? क्या वह एकदम यथार्थवादी (मार्क्स-वादी) होकर फिर आदर्शवादी (अध्यात्मवादी) हो गया है ? इन प्रश्नो का उत्तर हम अलग से कवि की आदर्श भावना की विवेचना मे देंगे।

युगान्त-युगवाणी-ग्राम्या

गुञ्जन कवि के मानसिक विकास की दृष्टि से सक्राति काल का काव्य है। कवि व्यक्ति के दायरे से बाहर निकल कर समाज के क्षेत्र मे पदार्पण कर रहा है। यह ऊपर कहा जा चुका है कि गुञ्जन में कवि की चेतना किसी मत विशेष मे फँसी हुई नही है। इसीलिये मैंने गुञ्जन को कवि की स्वच्छन्द प्रतिभा कार उद्‌गार कहा है।

गुञ्जन में कवि की चेतना हृदय से बाहर निकल कर मानव-जीवन पर झाँकती दिखाई देती है। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या मे वह मानव-जीवन में स्वच्छन्द विचरण कर उसकी व्याख्या करने वाले सिद्धान्तो और वादो का अध्ययन करती दिखाई देती है। इसीलिये इस काल को मैं कवि का अध्ययन काल मानता हूँ। इस काल मे कवि की प्रतिभा दो प्रधान वादो मे फँसी दिखाई देती है, वे है गाँधीवाद और मार्क्सवाद। किन्तु बीच-बीच मे कवि की स्वच्छन्द-प्रतिभा के स्वर भी गूँज उठते हैं।

यथार्थ की विषमता

कवि की कोमल चेतना पर दूसरा प्रबल प्रहार हुआ यथार्थ की कुत्सा का। उसने देखा कि मनुष्य आँखो पर रूढियो की पट्टी बाँधे, दिमाग पर अन्धविश्वास का खोल चढाये और हृदय में द्वेष की आग जलाए बढ़ा चला जा रहा है—न जाने किस वीभत्स पतन के गर्त की ओर। उसका सूक्ष्म आदर्श स्थूल यथार्थ से टकरा गया। भव्य आदर्श करुण यथार्थ की ओर बढने लगा। सूक्ष्म कल्पना स्थूल जीवन की ओर अग्रसर होने लगी। युगान्त से ग्राम्या तक हमे कवि की इसी अग्रसर चेतना की कहानी मिलती है। किन्तु कवि की यथार्थ चेतना की प्रवलता के सामने आदर्श बिल्कुल तिरोहित नही हो गया। स्थान-स्थान पर वह भी मुखर हो उठा। कहा जा चुका है कि कवि पन्त आरम्भ से अन्त तक आदर्शवादी रहा है। किन्तु यथार्थ ज्ञान ने भी आदर्श को रूप देने मे, उसका परिष्कार करने में सहायता की।

अब हम सक्षेप में यह देखेंगे कि कवि ने जीवन की भयकरता को किन-किन रूपो में देखा। प्रथम, उसने देखा कि जनता अन्धविश्वासो और रूढ़ियो से ग्रस्त

है। सामन्त काल की वदिनी स्त्री की उभरती हुई चेतना को केवल इसीलिये कुचला जा रहा था कि सामन्त युग मे उसे वह स्थान प्राप्त नही था जो उसे आज प्राप्त होना चाहिए। आध्यात्मिकता के नारे लगाते हुये भी साधु महात्मा नरक की ओर लपक्ते जा रहे थे। यह हुआ प्राचीन का बुरा प्रभाव। आधुनिक युग मे भी ऐसे कई नाद और वाद उठ खडे हुए हैं जो मानवता को पशुता की मनोवृत्तियों से आंकते है। प्रधान दो हैं—डार्विन का जड विकासवाद और फ्रायड का यौनवाद। 'चीटी' कविता मे हमे दोनो का खडन मिलता है। मनुष्य "मैथुन-आहार-यत्र" भर रह गया है। शरीर की सजावट और शृगार ही उसका साध्य बन गया है। भारतवर्ष के 'अपरिचित नरको' की वीभत्स दशा का करुण उद्घाटन 'ग्राम चित्र' मे मिलता है। अब कवि के लिए 'ताजमहल' केवल 'मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन' रह गया है, जिसे देखकर उसके हृदय से हाय ही निकलती है। मानवता को शव बनाया जा रहा है, और शव को अमर वैभव में लपेट कर रखा जा रहा है। न्याय कहाँ है? मनुष्य कहाँ है? सर्वत्र बर्बरता का साम्राज्य है।

इतना ही नही विज्ञान की मूर्ति-यन्त्र ने जीवनोत्कर्ष के लिये जन्म लेकर भी जीवन को कुचलना आरम्भ किया। वह शोषण का साधन बन गया—नही, बना दिया गया। दो वर्ग बन गये। एक यन्त्र का स्वामी था और दूसरा यन्त्र का सेवक। किन्तु यन्त्र ने न स्वामी को छोडा और न सेवक को। दोनो को पीसना आरम्भ किया। पूंजीपतियो ने मजदूरो का शोषण किया और इसी मे अपनी सफलता समझी। किन्तु यन्त्र ने दोनो को—स्वामी और सेवक को लूट लिया। स्वामी को जला दिया वासना की आग मे और सेवक को मसल दिया दरिद्रता की चक्की मे। किन्तु इस अनाचार, असमंजस और अशान्ति का कही अन्त भी है?

इतिहास की भौतिक व्याख्या का आधार लेकर कवि ने यन्त्र-युग की पर्यालोचना की। जब-जब उत्पादन के साधन बदले, भौतिक परिस्थितियाँ बदली और उन्ही के अनुकूल सस्कृति, आचार और अध्यात्म बदला। दार्शनिक चिन्तन भौतिक परिस्थितियो की उपज है। भौतिक दशा नित्य परिवर्तन-

शील है। इसीलिए सभी कुछ गतिवान है, अस्थिर है। (विशेष—देखिए मार्क्स-वाद।)

> "धर्म, नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
> शासन जनगण तन्त्र अचिर—युग स्थितियाँ जिनकी प्रेषक,
> मानव गुण भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत्।"
>
> (महात्माजी के प्रति)

कवि ने इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। किन्तु यह मैं पहले कह चुका हूँ कि आध्यात्मिकता के प्रति मोह पन्त की स्थायी मनोवृत्ति है। वह यहाँ भी वर्तमान है। वह प्रत्येक युग के लिए आत्मिक दर्शन की उपज अनिवार्य मानता है। किन्तु मार्क्सवादी प्रभाव के कारण किसी भी सनातन सार्वभौम दर्शन की सत्ता को मानने के लिए तैयार नही है। उसका अपने युग की भौतिक परिस्थितियो के अनुकूल होना आवश्यक है। वैसे उसका अस्तित्व सर्वयुगीन है। एक युग का दार्शनिक चिन्तन दूसरे युग के लिए अनावश्यक हो जाता है। इस सब को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं।

उत्पादन के साधन } → भौतिक परिस्थितियाँ। →आध्यात्मिक दर्शन

|

——→नए उत्पादन एक साधन } नई भौतिक परिस्थितियाँ } नया आध्यात्मिक दर्शन

"पतझर' और '१९४०' आदि कविताओं मे कवि प्राचीन के नाश पर नवीन के सृजन की बात कहता है। सृजन और नाश का यह क्रमिक चक्र चलता ही रहता है। यह विश्वास पन्त के चिन्तन-भवन का एक और प्रधान स्तम्भ है जो आरम्भ से अन्त तक मिलता है। मेरी इस बात से कुछ लोगो का मतभेद हो सकता है। इसका कारण यह है कि उनका ऐसा विश्वास है कि केवल ऐतिहासिक भौतिकवाद ही सृजन और नाश, आरोहण और अवरोहण, सृष्टि और प्रलय को स्वीकार करके उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करता है। किन्तु

यह शुद्ध भ्रम है। ससार की प्राय प्रत्येक चिन्तन धारा किसी न किसी रूप मे विकास (जिसमे ह्रास भी समाविष्ट है) मानती है। भारतीय दर्शन भी सृष्टि और प्रलय की बात कहता है। श्री अरविन्द भी सच्चिदानन्द के आरोहण, अवरोहण की बात कहते हैं (विशेष देखिये 'श्री अरविन्द')। 'ग्राम्या' में कवि १६४० का आह्वान करता है—

"आओ हे दुर्धर्ष वर्ष, लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन।"

यहाँ पर कवि मार्क्सवाद से भली-भाँति परिचित है, प्रभावित भी है। किन्तु पल्लव के "नित्य जग" की इन पक्तियो को देखिये—

'मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती अज्ञात।"

'गुंजन' की 'सुख-दुख' कविता की यह पक्तियाँ देखिये—

'यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का,
चिरहास अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का।"

युगान्त की पतझर की यह पक्तियाँ देखिये—

"कङ्काल जाल जग मे फैले
फिर नवल रुधिर पल्लव लाली।"

'युगवाणी' में 'महात्मा जी के प्रति' यह पक्तियाँ देखिये—

"तोड़ युगो के स्वर्ण पाश अब मुक्त हो रहा मानव
जन मानवता की भव सस्कृति आज हो रही निर्मित।"

और 'उत्तरा' कविता की यह पक्तियाँ देखिये—

"जड चेतन के चक्र निरन्तर
घूम रहे चिर प्रलय सृजनकर,

जयध्वनि हाहारव मे बढता
युग पथ पर मानवता का रथ।"

(इसमे चेतन का स्वर भी निर्दिष्ट एव प्रधान हो उठा है)

अब यह भलीभाँति प्रमाणित हो गया होगा कि नाश और सृजन के चक्र पर कवि को सदैव विश्वास रहा है।

यथार्थ की विषमता से पीड़ित कवि की चेतना मानव जीवन की मुक्ति के साधन खोजने के लिये अध्यात्मवाद से मार्क्सवाद, मार्क्सवाद से गाधीवाद और गाधीवाद से श्री अरविन्द-दर्शन तक चक्कर लगाने लगी। 'ग्राम्या' तक का पत गाधीवाद से विशेष रूप से प्रभावित था। इन मतवादो और सिद्धान्तो के साथ-साथ कवि का स्वच्छन्द चिंतन—वीणा और गुजन की आलोचना मे जिनको ओर सकेत किया था—भी कवि के साथ था और नवीन विचार-धाराओ के सम्पर्क में आकर विकसित होने लगा था। प्रत्येक लोक नायक मानव जीवन के उद्धार के लिये प्रयत्नशील होता है। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप वह एक निश्चित सिद्धान्त को जन्म देता है और उसे अन्य सिद्धान्तो के विरोध मे रखता है। अन्य सिद्धान्तों का उद्देश्य भी मानव का उद्धार ही होता है। फिर यह विरोध क्यो। इस विरोध का कारण प्रत्येक चिन्तक का दृष्टिकोण और उसके समाज की विषमताए एव आकाक्षाए होती हैं। पन्त ने विरोधी सिद्धान्तो का अध्ययन किया। उसने उनके विरोधो को दूर कर, अपने स्वतन्त्र चिन्तन के अनुरूप उनके समन्वय का प्रयत्न किया। समन्वय की प्रवृत्ति पन्त के चिन्तन-भवन का एक और स्तम्भ है।

चिन्तन का रूप

प्रत्येक चिन्तक की विचारधारा के दो पक्ष होते हैं। प्रथम, नकारात्मक जिसमे वह विरोधी सिद्धान्तो या मतवादो का तर्क के आधार पर खण्डन करता है। द्वितीय, सृजनात्मक जिसमे वह अपने मत की प्रतिष्ठा करता है। कोई भी चिन्तन तभी पूर्ण होता है जब उसमें दोनो पक्ष हो—विरोधी सिद्धान्तो का युक्ति-युक्त खण्डन भी हो और अपने मत की सम्यक् स्थापना भी हो।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि युगान्त से ग्राम्या तक की विचारधारा मे तीन

बातें दिखाई देती है। प्रथम है कवि का स्वतन्त्र चिन्तन, द्वितीय गाधीवाद, और तीसरा मार्क्सवाद। कवि के स्वच्छन्द चिन्तन मे आध्यात्मिकता का भी मोह मिश्रित है, यह ऊपर कहा जा चुका है। पन्त के चिंतन के नकारात्मक पक्ष में हमें तीन एकागी सिद्धान्तो का खण्डन मिलता है—

(१) कोरे अध्यात्मवाद का खण्डन,

(२) कोरे भौतिकवाद का खण्डन,

(३) कोरे गाधीवाद का खण्डन।

सृजनात्मक पक्ष मे कवि ने अपने चिन्तन के अनुरूप समन्वय का प्रयत्न किया है। समन्वय के भी तीन रूप मिलते हैं

(१) अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय,

(२) गाधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय,

(३) अध्यात्मवाद और भूतवाद का समन्वय।

पहले हम चिंतन के नकारात्मक पक्ष का विवेचन करेंगे।

(१) कोरे अध्यात्मवाद का खडन—यह पहले कहा जा चुका है कि साहित्य का आधार जीवन है। जीवन भी व्यक्तिगत जीवन नही सामाजिक जीवन। इससे यह स्पष्ट है कि साहित्यकार प्रत्येक सिद्धान्त को—चाहे वह आध्यात्मिक हो चाहे भौतिक—सामाजिक चेतना की दृष्टि से देखेगा। साहित्यकार का दृढ आधार है, निश्चित दृष्टिकोण है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी क्योंकि यदि साहित्यकार के लिये कोई मत विशेष प्रधान हो जाय और समाज गौण हो जाय, तो वह साहित्यकार नही रहता वरन् उस मत विशेष का प्रचारक मात्र रह जाता है। वह साहित्य के स्वरूप को विकृत कर उसे निष्प्राण कर देता है। साहित्य का प्राण है समत्व, जो एकागिता का विरोधी है। इसीलिये यह देखा जाता है कि मत विशेष से ग्रस्त व्यक्ति का साहित्य प्राय प्राणहीन होता है।

कवि पन्त ने भी अध्यात्म को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से देखा है। पन्त का परिवर्तन-शीलता मे—विकासवाद मे दृढ विश्वास है। ग्राम्या तक इस विकासवाद का स्वरूप मार्क्सवाद के रङ्ग में रङ्गा दिखाई देता है। स्वर्ण-काव्य और उत्तरा में जाकर उसका रूप दूसरा हो जाता है। तब कवि चेतन शक्ति

के विकास मे विश्वास करने लगता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की दृष्टि से देखते हुए ही वह आध्यात्मिक सिद्धान्तों के निरपेक्ष सत्य के प्रति विद्रोह करता है।

इसका यह अभिप्राय नही है कि अध्यात्म-चिन्तन का जीवन के लिए कोई उपयोग नही है। वह भी जीवन को पूर्ण एव सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार भौतिकवाद भी अपनी सीमाओ के भीतर रहते हुए और सकुचित दृष्टिकोण रखते हुए भी मानव जीवन के लिए उपयोगी है।

वैदिक अध्यात्म-चिन्तन की चरम परिणति 'अद्वैतवाद' मे हुई। किन्तु उसकी एकात महत्ता स्वीकार करना पन्त को स्वीकार नही है। उसका महत्व है केवल चिन्तन के क्षेत्र मे, सस्कृति के क्षेत्र मे। 'अद्वैतवाद' की प्रतिष्ठा के समय वाष्प-विद्युत के यन्त्रो का अभाव था। फलत अद्वैतवादी चिन्तक समाज की एकता को स्थापित करने में असमर्थ होकर, एकात चेतना की ओर बढने लगे। कवि को अध्यात्म चिन्तन स्वीकार है किन्तु भौतिक उत्कर्ष और लोक सगठन के महत्व से भी उसे इन्कार नही है। कवि को अद्वैतवाद का लोकोपयोगी रूप–चेतना के एकत्व की प्रतिष्ठा का पक्ष—स्वीकार है किन्तु ससार का मिथ्यात्व उसे स्वीकार नही है। स्वामी विवेकानन्द के विचारो को प्रदर्शित करते समय मैं यह लिख आया हूँ कि उन्होंने भी जगत के मिथ्यात्व पर बल नही दिया। कवि जगत की व्याख्या करते समय अद्वैतवाद 'एकमेवाद्वितीयम्' या 'सर्व खल्विदम् ब्रह्म' को स्वीकार करता है। हीगेल भी जड और चेतन को ब्रह्म की ही दो अभिव्यक्तियाँ मानता है। ब्रह्म इन दोनो मे समाविष्ट भी है, और दोनो से परे भी। 'उत्तरा' की भूमिका मे कवि ने यही बात कही है।

कवि का दृष्टिकोण सामूहिक हित ही रहा है। उसी दृष्टि से देखते हुए कवि ने कहा है—

"मैं अध्यात्म और भौतिक दोनो दर्शनो के सिद्धान्तो से प्रभावित हुआ हूँ पर भारतीय दर्शन की सामन्तकालीन परिस्थितियो के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति मे हुई है (दृश्य जगत एव ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियो के कारण, जो वर्गयुद्ध और

रक्तक्रान्ति मे परिणति हुई,—ये दोनो परिणाम मुझे सास्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पडे।"

(आधुनिक कवि-भूमिका पृ० २५)

और उत्तरा मे यही बात भूमिका के पृ० ७ पर है।

"जिस प्रकार हमारे मध्ययुगीन विचारको ने आत्मवाद से प्रकाश अन्ध होकर मानव चेतना के भौतिक (वास्तविक) धरातल को माया, मिथ्या कहकर भुला देना चाहा (जिसका कारण मैं 'युगवाणी'* की भूमिका मे दे चुका हूँ) उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान दर्शनवादी और विशेषकर मार्क्सवादी भौतिकता के आधार में और कुछ भी न सूझने के कारण मन (गुण) तथा संस्कृति (सामूहिक अन्तर्चेतना) आदि को पदार्थ का बिम्ब रूप, गौण स्तर या ऊपरी अति-विधान कहकर उडा देना चाहते हैं, जो मान्यताओ की दृष्टि मे, ऊर्ध्व तथा समतल दृष्टिकोणो मे सामजस्य स्थापित न कर सकने के कारण उत्पन्न भ्रान्ति है।"

(२) कोरे भौतिकवाद का खन्डन—उपर्युक्त दोनो उद्धरणो मे कवि ने अध्यात्मवाद और भौतिकवाद दोनो के एकान्तिक महत्व का खण्डन किया है। भौतिकवाद समाज के हितो की ओर देखता तो है किन्तु केवल राजनीतिक एव आर्थिक दृष्टिकोण से। वह संस्कृति की महानता को भी अस्वीकार करता है और अन्तर्जगत की महत्ता को भी।

जिस प्रकार अद्वैतवाद अध्यात्मवाद का विशिष्ट रूप है उसी प्रकार मार्क्सवाद भौतिकवाद का एक विशिष्ट रूप है। युगात से लेकर ग्राम्या तक का पत मार्क्सवाद से प्रभावित रहा है। 'महात्मा जी के प्रति' में वह महात्मा गाधी के प्रयत्नो को मार्क्सवादी दृष्टि से देखता है। 'जीवप्रसू' मे पन्त आकाश की ओर देखने वाली छायावादी (अध्यात्मवादी) प्रकृति को

---

* "मध्ययुग आत्मदर्शन या आत्मवाद का सक्रिय, सगठित एव सामूहिक प्रयोग नही कर सका। तब भौतिक विज्ञान इतना समुन्नत नही था, वाष्प, विद्युत, रश्मि आदि मानव जीवन के वाहन नही बन सके थे।"

(युगवाणी—भूमिका-[घ])

मार्क्सवाद इसे स्वीकार नही करता। इसकी ओर पन्त ने उत्तरा की भूमिका मे सकेत किया है।

(५) मार्क्सवाद भौतिक ऐश्वर्य पर ही एकान्त वल देता है। उसमे मनुष्य की सस्कृत वृत्तियो के विकास के लिए कोई स्थान नही है। वह वहिर्जगत के सामने अन्तर्जग को तुच्छ मानता है। किन्तु पत तो नव-सस्कृति के निर्माण की वात सर्वत्र कहता है।

(६) मार्क्सवाद जीवन और साहित्य को राजनीति से बाँध देने का उपक्रम करता है। उसके लिए साहित्य राजनीति का अनुगामी है। राजनीति से स्वतन्त्र उसका कोई महत्व नही है। पन्त ने इसका विरोध किया है। अपनी भूमिकाओ मे उसने स्पष्टत कहा है कि "मैंने साहित्य को राजनीति से अलग रखा है।"

इतने दोष होते हुए भी कवि मार्क्सवाद की ओर झुका, उसके कारण दो थे। प्रथम, कवि ने मार्क्स के ऐतिहासिक यथार्थवाद की उपयोगिता स्वीकार की। द्वितीय, उसके लोक-सरक्षक पक्ष को ग्रहण किया। रोटी, कपड़ा मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ हैं। सस्कृति और चिन्तन मनुष्य की स्वाभाविक आकाक्षाएँ हैं। पन्त को पहली आवश्यकता की पूर्ति मार्क्सवाद मे दिखाई दी और दूसरी आकाक्षा की तृप्ति गाधीवाद और अध्यात्मवाद मे।

आदर्श के प्रति मोह ने कवि को मार्क्सवादी नही वनने दिया। यद्यपि यह आदर्श प्रवृत्ति युगान्त से ग्राम्या तक मे दवी हुई दिखाई देती है, फिर भी स्थान-स्थान पर वह उद्वुद्ध हो उठी है। 'दो लडके', 'चीटी', 'मानव', '१६४०' आदि कविताओ मे हमे कवि का आदर्श—नवान सस्कृति के निर्माण की अभिलाषा—दिखाई देती है। कवि यहाँ अपने आदर्श से दूर अवश्य है किन्तु बिल्कुल विछुडा हुआ नही है।

कवि ने स्वय माना है कि अध्यात्मिकता मे विश्वास रखते हुए भी वह मार्क्सवाद और भौतिक उन्नति की ओर अधिक आकर्षित है क्योकि यह सक्रांति काल की आवश्यकता है। जिस प्रकार युगान्त आदि मे आध्यात्मिकता दवी हुई दृष्टि गौण हो गई है और आध्यात्मिक रुचि मुखर हो उठी है।

अव प्रश्न यह होता है कि आध्यात्मिकता की ओर मुडकर क्या कवि ने जीवन

मे पलायन किया है ? इसकी विशद विवेचना तो आगे की जायगी किन्तु मार्क्स-वाद का खण्डन करते समय एक अन्य बात पर ध्यान देना चाहिये। हिन्दी के आलोचना क्षेत्र मे मार्क्सवाद और प्रगतिवाद पर्यायवाची शब्द मान लिये गये हैं। जो लेखक मार्क्सवादी है या जिनमे मार्क्सवाद के तत्त्व मिलते हैं और जिनमे मार्क्सवाद के विरोधी तत्त्वो का अभाव है, वे सब प्रगतिवादी मान लिये जाते हैं। जो मार्क्सवादी नही है, या मार्क्सवाद के प्रतिरोधी विश्वासो को स्वीकार करते हैं वे पलायनवादी और प्रतिक्रियावादी है। मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का पर्यायवाची शब्दो के रूप में प्रयोग करना सकुचित है। साहित्य के विद्यार्थियो के लिये भी यह प्रयोग कठिनाई और असमजस का कारण बन जाता है। 'उत्तरा' मे पन्त ने भी इस बात का उल्लेख किया है।

(३) **कोरे गांधीवाद का खण्डन**—गांधीवाद का सामान्य परिचय पहले दिया जा चुका है। मैं यह भी कह चुका हूँ कि युगान्त मे ग्राम्या तक गाधीवाद और मार्क्सवाद के अतिरिक्त हमें कवि का स्वच्छन्द दृष्टिकोण भी मिलता है। यह निश्चित है कि कवि का स्वच्छन्द दृष्टिकोण पूर्ण रूप से गाधीवाद के मेल मे नही बैठता। इसीलिये कही भी उसने गाधीवाद को पूर्ण रूप से स्वीकार नही किया है।

पन्त मे अन्तर्विरोध की ओर ऊपर सकेत किया गया है। कवि की गाधी-वाद सम्बन्धी रचनाओ में भी अन्तर्विरोध दिखाई देता है। युगवाणी की बापू कविता में कवि कहता है—

"आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ?

× × × ×

बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान,
हँस उठते हैं रोम हर्ष से, पुलकित होते प्राण।"

आत्मा के तेजराशि आह्वान से पुलकित होने वाला कवि 'महात्मा जी के प्रति (ग्राम्या मे) कहता है—

'नही जानता युग विवर्त मे होगा कितना जनक्षय,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।'

(बापू !)

"बन्धन बन रही अहिंसा आज जनो के हित,
यह मनुजोचित निश्चित कब ? जब जन हो विकसित।"

(अहिंसा।)

यह स्पष्ट है कि पन्त ने अद्वैत के मायात्मक ससार को मिथ्या मान उसके आध्यात्मिक एकत्व को स्वीकार किया है, मार्क्सवाद के वर्ग-सघर्ष की एकातिक महत्ता और रक्तक्रान्ति को त्याग उसके सामूहिक हितवाद को माना है और गाधीवाद के अहिंसा के एकान्तिक महत्त्व को वर्तमान युग के लिए अस्वीकार कर उसके स्थायी मूल्य को समझा है। कवि के आदर्श और गाधी के लक्ष्य मे समानता है। गाधी ने रामराज्य का स्वप्न देखा, पन्त ने नव मानववाद के अवतरण और ऐश्वर्य का गान किया। गांधी को आध्यात्मिकता से प्रेम है, पन्त की रुचि भी आरम्भ से ही आध्यात्मिक रही है। गाधी ने रोटी-कपडे की समस्या उठाई और चरखे को उसका हल बताया, पन्त ने उसे पूर्णत स्वीकार किया। गाधी आधुनिक यन्त्रो के विरोधी थे क्योकि उनके प्रचार के कारण एक तो देश में शोषण बढ़ा और दूसरे बेरोजगारी का जोर हुआ। कवि कहता है—

'भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
धुन रुई, निर्धनता दो धुन,
कात सूत, जीवन पट लो बुन,
अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
थम, थम, थम।
भ्रम, भ्रम, भ्रम—
कहता चरखा प्रजातन्त्र से
'मैं कामद हूँ सभी यन्त्र से"
कहता हँस आधुनिक मन्त्र से

'नम, नम, नम !'

चरखा गीत (ग्राम्या)

कवि का गांधी से मतभेद है केवल दो बातो मे। प्रथम, वर्त्तमान परिस्थितियो में अहिंसा नही हिंसा ही श्रेयस्कर है। द्वितीय, व्यक्ति और वर्ग की नीव पर खडे आदर्श समाज के लिए मङ्गल-विधायक नहीं हो सकते।

कवि के चिन्तन का नकारात्मक पक्ष दिखा लेने के पश्चात् अब हम उसके समन्वयात्मक पक्ष का दिग्दर्शन कराएंगे। इसे पढते समय कवि के स्वतन्त्र चिन्तन की विशेषताओ को आध्यात्मिक रुचि, आदर्श-स्वभाव, क्रमिक नाश और सृजन मे विश्वास, और समन्वय के महत्व मे आस्था—सदैव ध्यान मे रखना चाहिए क्योंकि समन्वय के प्रत्येक रूप के मूल मे हमे कवि को यही भावनाएं काम करती दिखाई देती हैं।

(१) अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय—पंत की बहुमुखी समन्वयात्मिका प्रतिभा के लिए अद्वैत या मार्क्स किसी एक के एकांतिक महत्व को स्वीकार करना असंभव है। पहले दिए हुए दोनो उद्धरणो मे कवि ने दोनो की सीमाएं दिखाई हैं। अद्वैत मे चेतना की अखण्डता दिखाई देती है, मार्क्स मे बाह्य जीवन की। एक का सम्बन्ध अन्तर्जगत से है, दूसरे का वहिर्जगत से। पन्त ने दोनो के सामंजस्य पर बल दिया है।

"अन्तर्मुख अद्वैत पडा था युग युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करके दिया साम्य ने वस्तु विधान।"

—समाजवाद-गांधीवाद (युगवाणी)

तार्किक दृष्टि से देखने पर अद्वैत और साम्य के समन्वय की बात प्रकाश और अंधकार के समन्वय की बात के समान है? इसीलिए यह असंगत है। अद्वैत के लिए साम्यवाद की रंगभूमि जगत मिथ्या है, साम्यवाद के लिए अद्वैत से संचरण का प्रांगण चेतन का जगत मिथ्या है। दार्शनिक दृष्टि से इसका खंडन करने पर भी हमे इस समन्वय के मूल मे कवि का स्वच्छन्द चिन्तन तो दिखाई देता ही है। उसी के अनुरोध से कवि ने यह समन्वय की बात कहा है।

किसी भी सिद्धान्त का अध्ययन दो प्रकार से हो सकता है। प्रथम, व्यक्तिगत

रुचि-कुरुचि को बचाते हुए उसका सत्य स्वरूप भी समझा जा सकता है। द्वितीय, व्यक्तिगत रुचि के अनुसार, निजी दृष्टिकोण के अनुरूप उसका मूल्याङ्कन भी किया जा सकता है। पन्त का दृष्टिकोण सदैव सामाजिक रहा है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर उसने अद्वैत को देखा है और साम्य को भी। इसीलिए वह दोनो के समन्वय की बात कहता है। किन्तु तर्क के आक्षेप से यह समन्वय बच नही सकता।

यह स्पष्ट है कि सिद्धान्त की दृष्टि से (और आलोचक की एक यही दृष्टि होती है) अद्वैत और मार्क्सवाद का समन्वय असम्भव है। युगान्त से ग्राम्या तक कवि ने अनेक दार्शनिक सिद्धान्तो और सामाजिक वादो का अध्ययन किया। अपने दृष्टिकोण के अनुरूप सबके समन्वय का प्रयत्न किया। कवि इसी बात को स्वतन्त्र रूप से कह सकता था और वही अधिक उचित भी होता।

अद्वैत और मार्क्सवाद का समन्वय नही हो सकता। किन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि आध्यात्मिकता और भौतिकता का भी समन्वय नही हो सकता। आत्म जगत अद्वैत से व्यापक सत्य है और भूत जगत मार्क्सवाद से विस्तृत। वह दोनो वाद तो इन व्यापक क्षेत्रो की अपने ढङ्ग से व्याख्या करने वाले है। इसीलिए आगे चलकर कवि अद्वैतवाद और मार्क्सवाद के समन्वय की बात नही कहता वरन् अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के समन्वय की बात कहता है। इस बात में सतुलन भी है और औचित्य भी। उत्तरा की भूमिका मे हमे इसी सतुलन के दर्शन होते हैं। वैसे तो आधुनिक कवि की भूमिका और उत्तरा की भूमिका की अधिकाश विवेचना एकसी ही है। अन्तर इतना है कि आधुनिक कवि की भूमिका मे कवि का दृष्टिकोण मँजा हुआ एव परिपक्व नही है। उत्तरा की भूमिका मे वह पूर्ण रूप से निखर उठा है और उसका स्वरूप निर्दिष्ट हो गया है। दोनो भूमिकाओ को ध्यान से पढने से यह सत्य स्पष्ट हो जाता है। उत्तरा की भूमिका मे श्री अरविन्द के दर्शन का प्रभाव एक नई बात है।

स्वर्ण काव्य एव उत्तरा मे अद्वैतवाद और मार्क्सवाद के समन्वय की बात न कहकर कवि भारतीय जीवन-दर्शन और मार्क्सवादी सामूहिक हितवाद (जो भूतवाद का सामान्य स्वरूप है) के समन्वय की बात कहता है।

"मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग-सतुलित) जनतन्त्र तथा भारतीय जीवन-दर्शन को विश्व-शान्ति तथा लोक के कल्याण के लिए आदर्श-सयोग मानता हूँ, जसा कि मैं अपनी रचनाओ में भो सकेत कर चुका हूँ—

'अन्तमु ख अद्वैत पडा था युग-युग से निष्क्रिय निष्प्राण,
जग मे उसे प्रतिष्ठित करके दिया साम्य ने वस्तु विधान ।'

—'युगवाणी'

'पश्चिम का जीवन-सौष्ठव हो विकसित विश्व तन्त्र में विपरित,
प्राची के नव आत्मोदय मे स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित ।'

—'स्वर्णकिरण'

इत्यादि—

—उत्तरा (भूमिका) पृ० २१, २२

पाठक देखेंगे कि युगवाणी के साम्य के स्थान पर स्वर्ण किरण मे 'पश्चिम का जीवन सौष्ठव' और अद्वैतवाद के स्थान पर 'प्राची का नव आत्मोदय' हो गया है। यही सतुलित रूप है।

(२) **गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय**—गाधीवाद और मार्क्सवाद के समन्वय का स्वर 'युगवाणी' से लेकर 'उत्तरा' तक मिलता है। 'उत्तरा' मे कवि की स्थायी-मनोभूमि का परिपाक है। इसलिए समन्वय का यह रूप पन्त के स्थायी चिन्तन का अश है। निम्नलिखित उद्धरणो से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

"साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतन्त्र महान
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण ।
× × × ×
गाधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नव मान,
सत्य, अहिंसा से मनुजोचित नव सस्कृति करके निर्माण ?
× × × ×
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद ।"

समाजवाद—गाधीवाद (युगवाणी)

"चरमोन्नत जग मे जब कि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यन्त्र यान, वैभव महान,
सेवक है विद्युत वाष्प शक्ति धन बल नितान्त
फिर क्यो जग मे उत्पीडन ? जीवन यो अशात ?"

इसका कारण है—

"चर्वित इसका विज्ञान ज्ञान वह नही पचित ।
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित !"

और इसका निदान है—

"चाहिए विश्व को आज भाव का निवोन्मेप,
मानव उर मे फिर मानवता का हो प्रवेश ।
बापू ! तुम पर है आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नही जाओगे मानव के बन्धन ?"

—'बापू' (ग्राम्या)

यहाँ कवि भौतिकता मे त्रस्त जगत के उद्धार के लिए गाधीवाद को समर्थ मानता है ।

गाधीवाद के विषय मे कवि कहता है—"इस युग के महापुरुष गाधी जी भी अहिंसा को एक व्यापक सास्कृतिक प्रतीक के ही रूप मे दे गए हैं, जिसे हम मानव चेतना का नवनीत, अथवा विश्व मानवता का एकमात्र सार कह सकते हैं ।' सत्य अहिंसा के सिद्धान्तो को मैं अन्त सगठन (सस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूँ ।"

(उत्तरा भूमिका पृ० १८)

गाधीवाद के इसी महत्व के कारण वह गाधीवाद और लोक सगठन (मार्क्सवाद का एक पक्ष) के समन्वय की बात कहता है—

"अतएव युग पुरुष को पूर्णांत सचेष्ट करने के लिये यदि लोक सगठन के साथ गाधीवाद को पीठिका बनाकर मन सगठन (सस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाए और मनुष्य की सामाजिक चेतना (सस्कृति) का विकसित विश्व-परिस्थितियो (वाष्प-विद्युत आदि) के अनुरूप ही नवीन रूप से सक्रिय समन्वय किया जाए तो व'मान के विक्षोभ के आत्त'नाद तथा क्रान्ति की क्रुद्ध

ललकार को लोक- जीवन के सगीत तथा मनुष्यता की पुकार के रूप में बदला जा सकता है, एव क्रान्ति के भीतरी पक्ष को भी सचेष्ट कर उसे परिपूर्ण बनाया जा सकता है।"

(उत्तरा-भूमिका पृ० ४)

कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गाधीवाद प्रतिक्रिया-वादी है और मार्क्सवाद प्रगतिवादी। अत: दोनो मे सामंजस्य होना असम्भव है। इसका एक कारण यह है कि कुछ आलोचकों के लिए मार्क्सवाद प्रगतिवाद है और जो मार्क्सवाद नही है वह पलायनवाद है। मार्क्सवाद और प्रगतिवाद को पर्यायवाची मानने पर ही ऐसे असतुलित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इन आलोचकों को द्वितीय यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि जब कवि मार्क्स-वाद और गाधीवाद के समन्वय की बात कहता है, तो वह मार्क्सवाद के किस पक्ष को ग्रहण करता है। पन्त ने उपर्युक्त युगवाणी की कविता का शीर्षक 'समाजवाद-गाधीवाद' रखा है न कि 'मार्क्सवाद-गाधीवाद'। पन्त ने मार्क्सवाद का प्रयोग सर्वत्र उसके सामाजिक सगठन के मूल्यवान रूप मे ही किया है। पन्त ने मार्क्सवाद को अपने दृष्टिकोण के अनुरूप देखा है—उसी प्रकार जिस प्रकार उसने अद्वैत को अपने दृष्टिकोण से देखा है। कवि ने मार्क्स-वाद का खण्डन इन शब्दो मे किया है—

"सहस्रो वर्षों से आध्यात्मिक दर्शन की सूक्ष्म सूक्ष्मतम झंकारों से रहस मौन निनादित भारत के एकान्त मनोगगन मे मार्क्स तथा एंजिल्स के विचार दर्शन की गुंजें बौद्धिकता के शुभ्र अन्धकार के भीतर से रेंगने वाले झींगुरो की रुंधी हुई झनकारों से अधिक स्पदन नही पैदा करतीं।"

(उत्तरा—भूमिका पृ० २०)

" द्वन्द्व-तर्क या भौतिकवाद का महत्व दिखाना भारतीय दर्शन के विद्यार्थी के लिए हास्यास्पद दार्शनिक तुतलाहट से अधिक अर्थ-गौरव नहीं रखता।'

(वही पृ० १०)

अब यह भी सुन लीजिये कि पन्त मार्क्सवाद की ओर क्यो आकृष्ट हुआ—

"मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन-पक्ष मे नही,उसके वैज्ञानिक (लोकतन्त्र के रूप मे मूर्त) आदर्शवाद में है, जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है। किन्तु उसे वर्ग-क्रान्ति का रूप देना अनिवार्य नही है।"

(वही पृ० २१)

अब यह स्पष्ट हो गया कि पन्त ने मार्क्सवाद के किस पक्ष का सयोग गान्धीवाद से किया। यह तो पन्त भी जानता है कि मार्क्स के वर्ग-सघर्प और रक्त-क्रान्ति के लिए गान्धीवाद मे कोई स्थान नही है। सच तो यह है कि कवि गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय नही कर रहा है, वरन् अपने दृष्टिकोण के अनुरूप गान्धीवाद का सगठन कर रहा है। या फिर गान्धीवाद को आध्यात्मिक शक्तियो का प्रतीक मानते हुए और मार्क्सवाद को भौतिकवाद का विशिष्ट रूप समझते हुए हम कवि के गान्धी मार्क्स समन्वय को आत्म-अनात्म समन्वय का रूप मान सकते है।

(३) अध्यात्मवाद और भूतवाद का समन्वय—दर्शन क्षेत्र मे चेतन और पदार्थ के विरोध एव सघर्प की बात हो चुकी है। उसके समन्वय के भी अनेक प्रयत्न हुए। पन्त आरम्भ से ही समन्वयवादी रहा है। उसकी समन्वयात्मिका बुद्धि के वैभव का पूर्ण परिचय हमे इसी अध्यात्म और भूतवाद के सामजस्य में मिलता है।

आत्मवाद और वस्तुवाद विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न रूपो मे प्रकट होते है। अध्यात्मवादी आदर्शवादी होता है, व्यक्ति पर विश्वास करता है और अन्तर्जगत पर अधिक वल देता है। वस्तुवादी यथार्थवादी होता है, समाज पर विश्वास रखता है और वहिर्जगत पर अधिक वल देता है। पन्त ने आदर्श और यथार्थ का, व्यक्ति और समाज का, अन्तर्जगत और वहिर्जगत का भी सामजस्य किया है। अध्यात्मवादी की साधना ज्ञान के रूप मे प्रकट होती है, वह मानव जीवन का ऊर्ध्वतल है और भारत की निजी सपत्ति है। वस्तुवादी की साधना विज्ञान के रूप मे प्रकट होती है, वह मानव जीवन का समतल है, और पश्चिम की निजी सम्पत्ति है। पन्त ने ज्ञान और विज्ञान का ऊर्ध्वतल और समतल का, पूर्व और पश्चिम का समन्वय करने का उपक्रम किया है। पूर्व और पश्चिम का समन्वय आज के विज्ञान के युग मे ही सम्भव है। तुलसी के युग मे तो उसका कोई प्रश्न

ही नही था। विशाल दृष्टि के कारण ही समन्वय का यह रूप उपर्युक्त दोनो रूपो से कही अधिक सतुलित, स्वस्थ और काम्य है। निम्नलिखित उद्धरणो मे हमे अध्यात्म और भूतवाद का समन्वय दिखाई देता है—

"भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्म दर्शन अनादि मे समासीन अम्लान।"

'बापू'—युगवाणी

'जड समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर।"

'कला के प्रति' (ग्राम्या)

वँधना प्रकाश तम बाहो मे
सुर मानव तन करते धारण,
फिर लोक चेतना रगभूमि,
भू स्वर्ग कर रहे परिरभण।

—निर्माणकाल (उत्तरा)

पन्त एक ऐसी सस्कृति का निर्माण चाहता है जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ भौतिक समृद्धि भी छलकती दिखाई दे। शारीरिक इच्छाओ की पूर्ति ही उद्देश्य न हो, मानसिक विकास भी निखर उठे। ऐन्द्रीय चेतना भी उल्लसित हो और मनोचेतना भी पल्लवित होती रहे। केवल वाह्य साम्य ही पर्याप्त नही है, हृदय के साम्य की भी आवश्यकता है।

"मानव को आदर्श चाहिए
सस्कृति, आत्मोकर्ष चाहिए,
बाह्य विधान उसे है बधन
यदि न साम्य उनमे अन्तरतम"

—'चोटी'

"भौतिक दर्शन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सत्य को सामाजिक वास्तविकता मे परिणत करने योग्य समाजवादी विधान का जन्मदाता है।"

(आधुनिक कवि—भूमिका पृ० २७)

आदर्श और यथार्थ का समन्वय कवि इन शब्दो में करता है—

कवि के दृष्टिकोण का स्वस्थ सतुलन। 'ज्योत्स्ना' के भीतर कही भी अन्तर्विरोध दिखाई नही देता। इसका कारण यह है कि उसमे कवि का स्वच्छन्द चिन्तन प्रतिफलित हुआ है। विचारधारा के क्रमिक विकास को समझने के लिए 'ज्योत्स्ना' कवि की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कृति है।

अब हम अन्तर्विरोध के दूसरे रूप की—युगवाणी तथा ग्राम्या और परवर्ती काव्य के बीच के विरोध की मीमासा करेंगे। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो यह विरोध मिट जाता है। विरोध का एकमात्र कारण यह है कि पूर्ववर्ती काव्य मे कवि की दृष्टि बहिर्जगत की ओर अधिक रही है, किन्तु अन्तर्जगत के महत्त्व की ओर भी वह सजग रहा है। 'चीटी' कविता मे वह कहता है—

"मानव को आदर्श चाहिये,
सस्कृति आत्मोत्कर्ष चाहिये,"

परवर्ती काव्य मे कवि की दृष्टि मानव के अन्तर्जगत की ओर अधिक रही है। किन्तु यहाँ भी कवि ने बहिर्जगत के महत्व को विस्मृत नही किया। कवि ने स्वय इसी बात को कहा है—

"बाहरी दृष्टि से उन्हे (पाठको को) 'युगवाणी' तथा 'स्वर्ण किरण' काल की रचनाओ मे शायद परस्पर-विरोधी विचार-धाराओ का समावेश मिले पर वास्तव मे ऐसा नही है।"

उत्तरा, भूमिका पृ० (१)

'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे यदि ऊर्ध्व मानो का सम धरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' मे समतल मानो का ऊर्ध्व धरातल पर, जो तत्वत एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं।"

वही—पृ० २

इन उद्धरणो से उपयुक्त विवेचन की पुष्टि होती है। किन्तु 'युगवाणी', 'ग्राम्या' रचनाओ के बीच मैंने जिस अन्तर्विराध की ओर सकेत किया है, वह स्वीकार करना ही पडता है।

एक बात और। आलोचक उस बात का आग्रह ही क्यो करे कि किसी भी विचारक मे आरम्भ से अन्त तक विचारो का एक सूत्रीय विकास ही मिले। सम्भव हो सकता है कि वह कभी किसी ऐसे विचार को स्वीकार कर ले, जिसे

वाद मे नए सिद्धान्त के आलोक मे वह अस्वीकार कर दे या उसे परिष्कृत कर ले। किसी भी विचारक मे हमें इस प्रकार का विरोध मिल सकता है, और मिलता है। कौन नही जानता कि ब्रिटिश साम्राज्य का स्वामिभक्त सेवक गाधीवाद मे चलकर उसका उग्र विरोधी बन गया था। इसी बात को पन्त ने कहा है कि "किसी लेखक की कृतियो मे विचार साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को ही अधिक महत्व देना चाहिए, "

(वही—पृ० २)

बौद्धिकता की प्रधानता क्यों—'गुञ्जन' के उपरान्त की काव्यकृतिया में बौद्धिकता की प्रधानता बताई जाती है। कवि भी ग्राम्या मे बौद्धिक सहानुभूति की बात करता है। 'वाणी' कविता मे वह अपनी वाणी से 'जनमन मे विचार वहन' करने के लिए ही कहता है, भाव नहीं। इसका क्या कारण है ? क्या दोष है ?

पन्त केवल कवि ही नही है, चिन्तक भी है, समाज और युग के प्रति प्रबुद्ध भी है। जीवन की विषमताओ को दूर करने के उपाय दो हैं। प्रथम तो उनकी तीक्ष्ण आलोचना की जाए। (यथार्थवादी काव्य का जन्म यही से होता है।) द्वितीय, समरस स्थितियो का मधुर अङ्कन कर युग चेतना को उसकी ओर आकर्षित किया जाए। (यह आदर्शवादी काव्य का लक्षण है)। आलोचना करने के लिए हृदय की नही बुद्धि की आवश्यकता होती है। बुद्धि का कार्य हृदय से नही लिया जा सकता। फलत पन्त के गीतो मे बौद्धिकता की छाया सघन हो उठा।

और फिर मैं पूछता हूँ गीतो मे बौद्धिकता दोष ही क्यो है ? सामाजिक चेतना को उभारने के लिए प्राय निबन्धो का प्रयोग होता है जैसा कि वाल्तेयर और रूसो मे मिलता है। पन्त ने यही कार्य कविता के साधन द्वारा करना चाहा। वह ऐसा करने मे सफल भी हुआ। कविता में बौद्धिकता का समावेश कर पन्त ने उसके स्वरूप को विकृत नही किया है, वरन् उसे आधुनिक युग की परिस्थितियो के अनुकूल विकसित करने का प्रयत्न किया है। बुद्धिगत साधारणीकरण की आवश्यकता आज के युग की आवश्यकता है। युगवाणी की 'भूत दर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गाधीवाद' आदि कविताओ मे पन्त ने

स्पष्टत यो कहिए कि मार्क्सवाद को पूर्णत स्वीकार नही करता है। पन्त ने स्वय इस बात को स्पष्ट किया है।

"मेरा मन यह स्वीकार नही करता कि मैंने अपनी रचनाओ मे जिस सास्कृतिक चेतना को वाणी दी है, एव जिस मन सङ्गठन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, उसे किसी भी दृष्टि से प्रतिगामी कहा जा सकता है। मैंने सदैव ही उन आदर्शों, नीतियो तथा दृष्टिकोणो का विरोध किया है जो पहले युगों की सकीर्ण परिस्थितियो के प्रतीक हैं, जिनमे मनुष्य विभिन्न जातियो, सम्प्रदायो तथा वर्गो मे विकीर्ण हो गया है।' ' मेरा विनम्र विश्वास है कि लोक सगठन तथा मन सङ्गठन एक दूसरे के पूरक हैं, क्योकि वे एक ही युग (लोक) चेतना के बाहरी और भीतरी रूप है। ' जो विवेचन सभी प्रकार के मन सङ्गठन तथा सास्कृतिक प्रयत्नो को प्रतिक्रियात्मक तथा पलायनवादी कहकर उनका विरोध करते हैं उनकी भावना युग प्रबुद्ध होने पर भी, विचारधारा वादो से पीडित तथा बुद्धि भ्रम से ग्रस्त है।"

—वही पृ० ५, ६

इस भ्रम को दूर करने के लिए दो बातो की आवश्यकता है। प्रथम, मार्क्सवाद की सीमाओ का खण्डन (जैसा कि पन्त के आक्षेपो मे पहले किया जा चुका है)। द्वितीय, प्रगतिवाद की नवीन, व्यापक एव स्वस्थ रूपरेखा का निर्माण। यहाँ इसके विशद उद्घाटन के लिए स्थान नही है। सक्षेप मे ही कुछ विवेचन किया जाएगा।

प्रगति का अर्थ है उन्नति करना। यह उन्नति मानसिक और भौतिक दोनो क्षेत्रो मे होगी। इसे यदि भौतिक उन्नति तक ही सीमित कर दिया जाय तो मनुष्य और पशु मे कोई भेद नही रह जायगा। यदि दिमाग पर पट्टी बाँध कर मनुष्य हवा मे उडने लगा, तो वह पक्षियो के समान तो हो जायगा किन्तु मनुष्य नही कहला सकता। मार्क्सवादी दर्शन को पलायन का प्रतीक मानते हैं। पूर्वाग्रहो मे बँधकर चलने पर ऐसे ही भ्रामक निष्कर्ष निकलते हैं। मार्क्सवादी दृष्टि को लेकर चलने वाले के लिए अध्यात्मवाद पलायन का प्रतीक है। मानव समाज के लिए घातक है। अध्यात्मवादी दृष्टि वाले के लिए मार्क्सवाद एक

धोखा है तथा भ्रामक सिद्धान्त है। दोनो निष्कर्ष पूर्वाग्रहो की जडता के कारण असङ्गत हैं।

आदर्श, यथार्थ और प्रगति—पन्त के यथार्थवादी रूप पर भी प्रकाश डाला गया है, और आदर्शवादी दृष्टिकोण पर भी। मार्क्सवादी के लिए प्रत्येक प्रकार का आदर्श पलायन का प्रतिरूप है। यह गलत है। यथार्थ और आदर्श प्रगति के दो पहलू हैं। यथार्थ और आदर्श से भिन्न प्रगति का कोई स्वरूप ही नही हो सकता। यथार्थ की पीडा का चित्रण कर कवि जनता को दोषों और रूढियो से मुक्त करता है, और आदर्श का स्मरणीय चित्र खीचकर उसे उसकी ओर बढने के लिये लालायित करता है। **बिना आदर्श के प्रगति अन्धी है। बिना यथार्थ के प्रगति खोखली है।** जीवन के अनुभव से अपने इस मत की पुष्टि की जा सकती है। लापरवाह बच्चे को माता-पिता डाटते हुए कहते हैं 'यदि तू नही पढ़ेगा तो भगी बनेगा।' इस कथन के मूल मे बालक के हित की कामना छिपी है। यह यथार्थ ज्ञान द्वारा प्रगति की प्रेरणा का रूप है। और कभी माँ-बाप बच्चे से कहते हैं "यदि तू पढेगा तो राजा बनेगा।" इस कथन के मूल मे भी उसके हित की कामना छलकी पडती है। यह आदर्श निरूपण द्वारा प्रगति की प्रेरणा का रूप है। इसी प्रकार साहित्यकार भी अबोध जनता को कभी कोसता है, गाँवो को 'अपरिचित नरक' कहता है, और कभी 'भू पर स्वर्ग' के दर्शन कराता है। दोनो के मूल मे है जनता के हित की भावना, प्रगति की प्रेरणा।

डटन और आचार्य शुक्ल ने 'साधनावस्था' और 'सिद्धावस्था' (या कला काव्य) को काव्य का भेद माना है। उपर्युक्त नवदृष्टि के अनुसार हम साधनावस्था के काव्य को यथार्थवादी काव्य और सिद्धावस्था के काव्य को आदर्शवादी काव्य कहते है। प्रत्येक देश में दोनो प्रकार के काव्य मिलते है। कभी-कभी एक ही काव्य मे दोनो रूपो का सामजस्य दिखाई देता है—जैसे रामचरितमानस।

क्या यथार्थ चित्रण प्रगति-विरोधी नही होता ? होता है। कब ? जब वह पाठक को गर्हित यथार्थ मे अनुरक्त करे। फ्रायड मे प्रभावित यथार्थवादी ऐसे ही काव्य का निर्माण किया करते हैं।

जब आप समाज की रूढियो और कुरीतियो को दूर करने के लिए कहते हैं तो क्या आपके दिमाग मे सुन्दर विश्वास नही होते ? मार्क्सवादियो के सामने भी एक आदर्श होता है—चाहे वह समाजवाद हो या साम्यवाद। लोग, विद्यार्थियो से जीवन का लक्ष्य बनाने के लिये कहा करते हैं तो क्या साहित्यकार को ही आदर्श चिन्तन की आवश्यकता नही है ?

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आलोचना क्षेत्र मे 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद'—एक नया नाम रखने की आवश्यकता नहीं है। क्योकि फिर यथार्थोन्मुख आदर्श की बात भी होनी चाहिये। यदि यथार्थ को आदर्श की ओर अग्रसर करने की आवश्यकता है, तो क्या आदर्श को यथार्थ के अनुरूप ढालने की आवश्यकता नही है ? यह भ्रम तभी उत्पन्न होता है—जब हम यथार्य और आदर्श को एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग दो सिद्धान्त मानते हैं। मूल सत्य तो यह है कि प्रत्येक यथार्थ-चित्रण आदर्शोन्मुख होगा और प्रत्येक आदर्श यथार्थ मूलक होगा। दोनो मे चोली-दामन का सा साथ है। मधुर फल मे यथाथ की गुठली है और आदर्श का गूदा।

मैं आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पक्षपातियो से पूछता हूँ कि क्या 'केवल' यथार्थ का चित्रण प्रगति की प्रेरणा नही देता, क्या 'ग्राम-चित्र' कविता को पढकर पाठक के मन मे विक्षोभ नही उत्पन्न होता, जो 'उन अपरिचित नरको को धरती के स्वर्गों में बदल देने की प्रेरणा देता है। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि जहाँ 'केवल' यथार्थ का चित्रण होगा, वहाँ भी प्रगति का उत्साह तरगित दिखाई देता है। इसी प्रकार आदर्श मे भी प्रगति की कामना ही अवतरित है। पन्त जहाँ यथार्थवादी है वहाँ भी वह प्रगतिगामी है और जहाँ आदर्शवादी है वहाँ भी वह प्रगतिवादी है, क्योकि यथार्थ और आदर्श प्रगति के ही दो पहलू है।

व्याख्या

व्याख्याएँ

१. मोह

यह कविता कवि पन्त की प्रारम्भिक कविताओ में से है। कवि स्वभाव से प्रकृति-प्रेमी है। साथ ही उसके हृदय मे यौवन का प्रवेश हो रहा है। इसी कारण नारी का सौन्दर्य उसे अपने प्रति आकर्षित करता है। परन्तु अभी यौवन कवि पर पूरी तरह से हावी नही हो पाया है। प्रकृति-प्रेम कवि को अपनी ओर खीचता है। इन दोनों आकर्षणों में परस्पर सघर्ष होता है और अन्त में नारी-सौन्दर्य पर प्रकृति-सौन्दय की विजय होती है। परन्तु यह विजय भी एक प्रकार से पराजय बन जाती है क्योंकि कवि नारी के बिना प्रकृति का वर्णन नही कर पाता। इस कविता को पढते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

छोड द्रुमों की ... . .. इस जग को !

भावार्थ—बाला का सौन्दर्य कवि को अपने प्रति आकर्षित करता है। दूसरी ओर प्रकृति-सौन्दर्य भी जोर मारता है। कवि बाला को सम्बोधन कर कहता है—

हे बाले! वृक्षो की मनोहर, शीतल छाया को त्याग कर, प्रकृति के प्रति मेरे मन मे निरन्तर बनी रहने वाली ममता को तोड कर, मैं अभी से इस ससार को भूल तेरे बालो के जाल में अपने लोचनो को कैसे उलझा दूँ? भाव यह है कि नारी से प्रेम करने पर पुरुष सारे ससार को भूल केवल नारी मे ही सीमित होकर रह जाता है। कवि कहता है कि अभी उसकी अवस्था ऐसा नही है कि वह ससार के प्राकृतिक आकर्षणो का मोह त्याग नारी-प्रेम के जाल मे अपने को उलझा दे।

(१) यहाँ 'माया और 'छाया' शब्द विशेष ध्वनि दे रहे है। 'माया मे

अर्थ 'ममता' मे है । प्रकृति कवि के लिए माँ के समान ममतामयी है जिसकी शीतल छाया मे उसे आनन्द मिलता है। यहाँ 'छाया' से शारीरिक सुख तथा 'माया' मे आन्तरिक सुख की अभिव्यक्ति हो रही है।

(२) 'द्रुमो की मृदु छाया' और 'बाल-जाल' शब्द साभिप्राय प्रयुक्त हुए हैं। वृक्षो की मृदुल छाया और प्रिया के केशपाश की छाया मृदुलता, कोमलता, स्निग्धता और अपनत्व है। परन्तु कवि 'बाल-जाल' का प्रयाग कर नारी के उस आकर्षण को ओर सकेत कर •हा है जिसमे उलझ कर पुरुष सारे ससार को भूल जाता है। बाह्य दृष्टि से ता यहाँ दोनो मे साम्य है परन्तु प्रभाव-साम्य की दृष्टि से दोनो मे बहुत अन्तर है।

तज कर तरल ... मृग सा मन ?

भावार्थ—हे बाले ! मै चचल तरगो और सतरगे इन्द्र धनुष के सौन्दर्य को त्याग कर, अभी मे इस ससार को भूल, तुम्हारे कटाक्षो (भ्रूभगो) द्वारा अपने हिरण जैसे भोले, सरल मन को कैसे बिधवा दूँ। अर्थात् तुम्हारे कटाक्षो से कैसे प्रभावित हो उठूँ। अभी तो मेरा मन प्रकृति की गोद मे स्वच्छन्द रूप से विचरण करता है।

(१) तरल तरग तथा इन्द्रधनुष नारी की भौंहो के ही समान तिरछे होते हैं।

(२) 'मृग सा मन'—में लुप्तोपमा अलकार है।

कोयल का वह ... सजनि श्रवन !

भावार्थ—हे सजनि ! यह तो बता कि कोयल की मदभरी कोमल काकली तथा भ्रमर की वीणा के अनमोल स्वरो के समान मधुर गुजार को त्याग मैं केवल तेरे ही स्वरो से अपने कोनो को भर लूँ। अर्थात् यह नैसर्गिक सगीत सुनना त्याग सदैव तेरा ही प्रिय सगीत सुनता रहूँ। अभी ऐसा करने का समय नही आया है।

ऊषा-सस्मित ... इस जग को।

भावार्थ—फूटती हुई उषा मे फूलो की पखुडियो पर चन्द्र किरणो के साथ उतरे हुए अमृत-जल (ओस का बूँदा) को त्याग मैं तेरे अधरामृत के खुमार

मे अपने जीवन को कैसे वहला दू ? अर्थात् अमृत के समान शीतल, जीवन-प्रदायक ओस की बूंदें अभी मेरे लिए अधिक आकर्षण रखती हैं। तुम्हारे अधरो का अमृत तो शराब के समान मादक होता है। इसलिए अभी मैं उसका पान नही करना चाहता। क्योकि उसे पान कर लेने पर मैं इस ससार को भूल जाऊंगा।

(१) इस कविता मे कवि ने नारी के सौन्दर्य और गुणो की तुलना मे प्रकृति के सौन्दर्य और गुणो को प्रस्तुत कर दोनो की तुलना की है और प्रकृति को नारी से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। नारी की समान केश-छाया के सामने द्रुमों की मृदु छाया है। पहली मन को उलझा लेती है, दूसरी शीतलता प्रदान करती है। नारी के कटाक्षो की तुलना मे तिरछी चचल लहरें और इन्द्रधनुष हैं। कटाक्ष पुरुष के मृग के समान भोले-स्वच्छन्द मन को आहत कर देते हैं जबकि लहरो और इन्द्रधनुष के प्राकृतिक सौन्दय का उपभोग करता हुआ मन मुक्त बना रहता है। नारी का सगीत इतना मादक होता है कि पुरुष उसे सुन सब कुछ भूल जाता है परन्तु कोयल की काकली और भ्रमरो की गु जार उसे विभोर कर उसमे नवीन चेतना का सृजन करते हैं। नारी का अधरामृत शराब के समान सुध-बुध भुला देने वाला तथा उन्मत्त कर देने वाला होता है और सुधामयी चन्द्र किरणो के साथ उतरा जल-ओस-मन को शीतलता प्रदान करता है। नारी और प्रकृति के आकर्षणो में निहित इसी अन्तर का अनुभव कर कवि अभी से नारी के आकर्षण की उपेक्षा कर प्रकृति के सौन्दर्य मे ही डूबा रहना चाहता है।

(२) सम्पूर्ण कविता मे 'व्यतिरेक' की व्यजना है।

२. विनय

मा ! मेरे जीवन की ... है वारम्वार !

शब्दार्थ—मजुल = सुन्दर, कोमल। मुक्तालकार = मोतियो का अलकार। भूरि = अनेक। रति = प्रेम। कृति = कार्य। आचार = व्यवहार।

भावार्थ—कवि कहता है कि हे माँ ! जब मैं जीवन मे हार जाऊं और तेरे वक्ष से चिपट कर आँसू बहाऊं तो मेरे उन आँसुओ का उपहार तेरे हृदय

का सुन्दर हार वन जाय। अर्थात् मेरी हार मे तू मुझे अपना कर अपने वक्ष मे चिपटा ले और सान्त्वना प्रदान करे। और जब मेरा परिश्रम सफल हो जाय तो परिश्रम के कारण मेरे मस्तक पर झलक आई पसीने की बूंदे तेरे मस्तक का चमकीला मोतियो का अलकार बन जाय। अर्थात् गर्व से तेरा मस्तक चमक उठे।

मेरे असख्य दुखों का भार तेरे हृदय की इच्छा का फल बन जाय। अर्थात् मै यह समझूं कि मेरे ये दुख भी तेरी ही इच्छा के प्रतिरूप हैं। भाव यह है कि दुख मे भी मैं निराश न हो, उमे तेरी ही इच्छा समझ सान्त्वना प्राप्त करता रहूँ। मेरे प्रेम, कर्म, व्रत और व्यवहार तेरी आशा का शृगार बन जायें। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण कार्य तेरी आशाओ की पूर्ति करने वाले बन जाय। हे माँ! तेरी निर्भयता ही तेरी पूजा का साधन हो। अर्थात् मेरी सुख-दुख भरी सम-विषम परिस्थितियो मे तेरा सदैव निर्भय बना रहना ही तेरी सबसे बडी पूजा है। मेरी बार-बार यही विनय है।

३ प्रथम रश्मि

इस कविता मे कवि प्रकृति के अज्ञात रहस्यो के प्रति जिज्ञासु हो उठा है। पक्षी प्रभात का आगमन स्वत ही जान लेते हैं परन्तु मानव समय जानने के अनेक साधनो के रहते हुए भी उससे अनभिज्ञ रहता है। इसका रहस्य क्या है? कवि एक बाल-विहगिनि को सम्बोधन कर इसी रहस्य को जानने का प्रयत्न कर रहा है।

प्रथम रश्मि का   '   यह गाना!

भावार्थ—कवि किसी बाल-विहगिनि को सम्बोधन कर पूछ रहा है कि प्रकृति की गोद मे विहार करने वाली है बाल-विहगिनि (छोटी सी चिडिया)! तुझे प्रभात की प्रथम सूर्य-किरण के आगमन का ज्ञान पहले से ही कैसे हो जाता है? (पक्षी सूर्योदय से पूर्व ही अपनी निद्रा त्याग, चैतन्य हो चहचहाने लगते हैं।) और उसके आगमन के स्वागत मे तू जो यह गाना गाती है उसे तूने कहाँ से सीखा है?

(१) अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि शेली भी पक्षिया के इस कलरव को सुन आश्चर्यचकित हो कह उठा था—

"That from heaven, or near it
Pourest Thy full heart
In Profuse Strains of Unpremeditated art"

सोई थी तू . . . उसका आना ?

शब्दार्थ—स्वप्न-नीड = स्वप्नो का घोसला। कामरूप = इच्छानुसार रूप बदलने वाले। नभचर = आकाश मे विचरण करने वाली परियाँ, चन्द्रिका, ओस की बूँदें आदि। स्नेह = तेल। अवनि = पृथ्वी। तरुवासिनि = वृक्ष पर रहने वाली। अन्तर्यामिनि = भीतरी रहस्य जानने वाली।

भावार्थ—हे बाल-विहगिनि ! तू रात्रि के समय अपने घोसले म पखो को समेट कर सुखपूर्वक सोती हुई मीठे-मीठे स्वप्नो का आनन्द ले रही थी और तेरे द्वार पर असख्य जुगनू प्रहरी के समान घूम-घूम कर पहरा दे रहे थे।

इच्छानुसार अपना रूप परिवर्तन कर लेने वाली अप्सरायें (परियाँ) चन्द्रमा की किरणों के सहारे आकाश के नीचे पृथ्वी पर उतर-उतर नई कलियो का कोमल मुख चूम-चूम कर उन्हे मुस्कराना सिखा रही थी, खिलना सिखा रही थी। (कवि कल्पना कर रहा है कि रात्रि के समय परियाँ आकाश से नीचे उतर कलियो का मुख चूमती हैं जिससे वे खिल उठती हैं।) यहाँ कवि ब्रह्म मुहूर्त का भावमय वर्णन कर रहा है।

जिस प्रकार दीपक तेल समाप्त हो जाने पर मन्द हो उठते हैं उसी प्रकार अब तारों की ज्योति मन्द हो गई थी। पवन न चलने के कारण वृक्षो के पत्ते निश्चल, निर्जीव से नीचे झुके पडे थे। सारी धरती स्वप्नो में निमग्न थी। अर्थात् ससार के सारे प्राणी निद्रा मे डूबे स्वप्न देख रहे थे। अन्धकार ने सारे ससार पर अपना मण्डप सा तान रखा था, सारा ससार अन्धकार मे डूबा हुआ था।

हे वृक्ष पर निवास करने वाली बाल-विहगिनि ! ऐसे समय तू आने वाले प्रभात का स्वागत-गान गाती हुई कूक उठी थी। हे अन्तर्यामिनि ! किसने तुझे प्रभात की उस प्रथम किरण के आगमन के सम्बन्ध मे पहले से ही सूचना दे दी थी।

निकल सृष्टि के • ताना बाना।

शब्दार्थ—अन्ध-गर्भ = अन्धकार के भीतर। छाया-तन = छाया जैसे अस्पष्ट, धुंधले शरीर वाले। छाया-हीन = जिनके शरीर की छाया नही पडती, भूत। निशिचर = रात्रि मे विचरण करने वाले राक्षस आदि। कुहुक = जादू। टोना-माना = टोना-टोटका। श्री-हीन = सौन्दर्य हीन, फीकी। क्रोड = गोद। कोक = चकवा। वहु दर्शिनि = सब कुछ देखने-जानने वाली। नभ चारिणि = आकाश मे उडने वाली।

भावार्थ—रात्रि के सघन अन्धकार के भीतर छिपे रहने वाले आभा के समान धुंधले दिखाई पडने वाले, दुष्ट रात्रि मे विचरण करने वाले अनेक प्राणी तथा छाया-हीन शरीर वाले भूत-प्रेत (भूत-प्रेतो के शरीर की छाया दिखाई नही पडती, ऐसा लोक-विश्वास है) अन्धकार के गर्भ से बाहर निकल, वह अपने जादू-टोने का जाल रच कर अनेक प्रकार के षडयन्त्र रच रहे थे।

रात्रि भर के कठिन परिश्रम से थक कर सुन्दरी शशि बाला (चन्द्रमा रूपी सुन्दरी या चन्द्रमा की चाँदनी) सौन्दर्य-हीन हो अर्थात् फीकी पड कर अपना मुख छिपा रही थी। भाव यह है कि चन्द्रमा अस्त हो रहा था और उसकी चाँदनी फीकी पड गई थी। भ्रमर कमल की गोद मे बन्द था और चकवा चकवी के वियोग के कारण पागल हो रहा था।

प्राणियो की समस्त इन्द्रियाँ रात्रि की निद्रा के कारण मूर्च्छित सी गतिहीन थी अर्थात् सारे प्राणी चुपचाप गहरी नीद मे सो रहे थे। ससार में पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी। जड और चेतन सब एकाकार से हो रहे थे। अर्थात् सारे जीव निद्रा में डूबे रहने के कारण जड के समान निस्तब्ध, गतिहीन पडे हुए थे। दोनो मे कोई अन्तर नही रहा था। ससार के सूने हृदय मे केवल प्राणियो के साँसों का आवागमन ही चेतनता का एक मात्र प्रतीक था। अर्थात् सब सो रहे थे।

सब कुछ देखने वाली अर्थात् इस सारे रहस्य को जानने वाली, हे आकाश मे विचरण करने वाली, हे बाल विहगिनि ! तूने ही सबसे पहले जाग्रति का यह गाना गाया था। अर्थात् तूने ही अपने इस गान द्वारा सारे विश्व मे जाग्रति

की लहर उत्पन्न कर दी थी। (पक्षियो का कलरव सुन प्राणी प्रभात का आगमन जान जाग उठते हैं।) तूने जाग्रति के अपने इस गीत द्वारा सारे विश्व मे सौन्दर्य, सुख और सुगन्धि का जाल तान दिया था। (प्रभात काल मे उषा का सौन्दर्य, निद्रा भग हो चेतना का सुख और फूलो की सुगन्धि चतुर्दिक व्याप्त हो जाती है।)

(१) रात्रि समय भ्रमर का कमल-कोश मे बन्द रहता तथा चकवा और चकवी का वियोग होना कवि-सत्य है अर्थात् कवियो की कल्पना है।

(२) यहाँ शशि बाला, अलि और कोक तीनो ही दुखी है। एक थक गया है, दूसरा बन्दी है और तीसरा वियोगी है।

(३) 'एकाकार'—शब्द से मीलित व्यजना का तथा 'साँसो का आना जाना' से उन्मीलित व्यजना का बोध होता है। साँसो का आवागमन ही जड-चेतन के अन्तर को स्पष्ट कर रहा है।

निराकार तम मानो • स्वर्गिक गाना।

शब्दार्थ—ज्योति-पु ज=प्रकाश का समूह। द्रुत=शीघ्र, तुरन्त। हास=हँसी। मधुवाल=भ्रमर।

भावार्थ—सारा ससार जब अन्धकार मे डूबा हुआ था उस समय ससार की समस्त वस्तुएँ—जड-चेतन अपना आकार हो निराकार सी हो रही थी। ससार को निराकार का स्वरूप प्रदान करने वाला निराकार अन्धकार सूर्योदय होते ही प्रकाश के पु ज मे साकार हो उठा। अर्थात् सब अपना खोया हुआ स्वरूप प्राप्त करने लगे। सभी अपने वास्तविक स्वरूप मे दिखाई पडने लगे। सूर्य की प्रथम किरण फूटते ही ससार रूपी जाल मे आबद्ध अर्थात् ससार के समस्त प्राणी और वस्तुएँ नाना प्रकार के रूप धारण कर तुरन्त प्रकट होने लगी। सारे ससार का स्वरूप बदल गया।

उस प्रथम किरण का स्पर्श होते ही वृक्षो के पत्ते पुलकित हो उठे, सोया हुआ पवन अस्थिर हो उठा। अर्थात् पवन चलने लगा और वृक्षो के पत्ते हिलने लगे। फूलो के अधरो पर हँसी फूट उठी। अर्थात् बन्द फूलो पर पडी ओस

की बूँदें सूर्य-किरण पड़ने से निर्मल हास्य के समान हिलती हुई चमकने लगी।

ससार के प्राणियो की पलकें खुल गई। चारो ओर सूर्य किरणो के पड़ने से सुनहरी आभा छा गई। सुगन्धि जग कर चारो ओर फैलने लगी। फूलो पर भौंरे मँडराने लगे। ससार ने नये रूप से नया जीवन, नयी गति और नये उत्साह का अनुभव किया। अर्थात् सारा ससार नवजीवन प्राप्त कर गति और उत्साह से भर उठा। (अन्तिम चार पक्तियो का अर्थ प्रारम्भ में कर दिया गया है।)

(१) प्रसाद ने भी 'कामायनी' मे इसी भाव को व्यक्त किया है—

"कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी मे सब होते अनुरक्त॥"

(२) 'निराकार तम नाना'—ये पक्तियाँ उस दार्शनिक सिद्धान्त का अभिव्यक्ति दे रही हैं जिसके अनुसार जब ब्रह्म निराकार अथवा अव्यक्त रूप में रहता है तो समस्त नाना रूपात्मक जगत उसी मे छिपा रहता है। जब अव्यक्त ब्रह्म व्यक्त (साकार) रूप धारण करता है तब उसी से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। अर्थात् यह सृष्टि अव्यक्त ब्रह्म का ही साकार रूप है।

यहाँ अन्धकार निराकार रूप और प्रकाश साकार रूप है।

(३) इस सम्पूर्ण कविता मे छायावादी लाक्षणिक और प्रतीक-प्रधान शैली का प्रयोग किया गया है। प्रकृति के विभिन्न रूपो का मानवीकरण छायावादी-काव्य की विशेषता रही है। वही प्रवृत्ति इस कविता मे मिलती है।

४ पर्वत प्रदेश मे पावस

छायावादी शैली मे कवि ने इस कविता मे प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रारम्भिक छन्दों मे प्रकृति का आलम्बन रूप तथा अन्तिम छन्दो मे

मिलता है। इस कविता का सबसे बड़ा आकर्षण इसका नाद-

ऋतु थी · · ·· · है विशाल।

शब्दार्थ—पावस = वर्षा। मेखलाकार = करधनी के रूप मे गोलाकार। अवलोक = देख। महाकार = विशाल आकार।

भावार्थ—वर्षा ऋतु थी और पर्वत प्रदेश था। वहाँ प्रकृति क्षण-क्षण मे नये-नये रूप धारण कर रही थी। बादल उमड-घुमड कर प्रकृति को प्रति-क्षण नया-नया रूप प्रदान कर रहे थे। विशाल पर्वत गोलाकार रूप मे चारो ओर फैला हुआ था। उस पर हजारो फूल खिल रहे थे। उस पर्वत के चरणो मे अर्थात् उसकी तलहटी मे दर्पण के समान निर्मल जल वाला एक ताल स्थित था। फूलो मे भरे पर्वत का प्रतिविम्ब उस ताल में पड रहा था जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पर्वत अपने हजारो फूल रूपी नेत्र फाड-फाड कर उस ताल रूपी दर्पण मे अपने प्रतिविम्ब को निहार रहा हो।

(१) पर्वत का मानवीकरण किया गया है।

(२) अनुप्रास, रूपक, उपमा अलकार है।

(३) डा० नगेन्द्र ने इसके ध्वनि-सौन्दर्य की प्रशसा करते हुए लिखा है—

"पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश' मे लघु अक्षरो की आवृत्ति मे घूमते हुए चित्रो की भाँति प्राकृतिक दृश्यो के परिवर्तन का आभास देती है, तो 'मेखलाकार पर्वत अपार' का 'अ' पर्वत के विस्तार का चित्र सम्मुख उपस्थित करता है।"

गिरि का गौरव · ··· ·· चिन्ता पर।

शब्दार्थ—मद = मादकता, नशा। तरुवर = ऊँचे वृक्ष। नीरव = शान्त। अनिमेष = एक टक। चिन्ता पर = ध्यान मे डूबे।

भावार्थ—उस पर्वत से मोती की लडियो के समान सुन्दर झागो से भरे झरने झर रहे थे। उनकी झर-झर की ध्वनि नसो को उत्तेजित कर उनमे मादकता भर रही थी। अर्थात् उस ध्वनि को सुन कर शरीर पर एक नशा सा छा रहा था। वे झरने झर-झर ध्वनि के साथ झरते ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वत के गौरव का यशोगान कर रहे हो।

अधिक विस्तृत हैं परन्तु उनके मूल मे उस वालिका की सी वही अवाध कल्पना छिपी हुई है। इसी कारण कवि इन सारे दृश्यो को चमत्कृत कर देने वाले जादू के खेल कहता है।

५. आँसू की बालिका

कवि की 'मोह' शीर्षक कविता मे अज्ञान रूप से नारी-सौन्दर्य के प्रति कवि के आकर्षण की जो भावना मिलती है और प्रकृति सौन्दर्य को महत्व दे उसने उस भावना का प्रतिरोध करने का जो प्रयत्न किया है, वही नारी-सौन्दय प्रस्तुत कविता मे प्रवल वन कवि के मन प्राण पर छा गया है और कवि अपनी प्रिया के रूप सौन्दर्य का अतुलनीय वर्णन करता हुआ उसके विरह मे व्याकुल हो रहा है। कवि के दृष्टिकोण मे आये इस परिवर्तन को ध्यान मे रख कर इस कविता का अध्ययन करने से कवि के दृष्टिकोण मे क्रमश धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन और विकास को समझने में सहायता मिलती है।

एक वीणा की ... पाया था आकार।

शब्दार्थ—प्राण=जीवन, उत्साह। सुधामय=अमृतमयी। उपचार=इलाज। आधार=सहारा। आभार=कृतज्ञता।

भावार्थ—कवि बालिका से कहता है—

तुम्हारा सौन्दर्य वीणा की मधुर झंकार के समान मधुर-कोमल, सूक्ष्म और अनुभूति-गम्य है। तुम्हारा अपार सौन्दर्य वीणा की कोमल झंकार के समान मन-प्रण को एक अद्‌भुत अतीन्द्रिय आनन्द से प्रकम्पित कर देता है। हे सुकुमारी! मैं तुम्हे किस साधन द्वारा तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य को दिखाऊँ। जिस प्रकार वीणा की झंकार को किसी दर्पण मे प्रतिविम्वित नही दिखाया जा सकता है उसी प्रकार तुम्हारे इस सूक्ष्म, अनुभूति गम्य सौन्दय को भी किसी साधन द्वारा अभव्यक्ति नही किया जा सकता। अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य अवर्णनीय है। चित्र की रेखाओ, कविता के शब्दो और मूर्ति के पत्थर मे उसका प्रतिरूप नही अंकित किया जा सकता। अर्थात् अभिव्यक्ति का कोई भी प्रकार या साधन तुम्हारे रूप सौन्दर्य का अंकन नही कर सकता।

तुम्हारा स्पर्श करने से मेरे मन प्राण जीवन के उत्साह से भर उठते थे।

जब तुम समीप रहती थी तो मन मे ऐसी पवित्र, आनन्द से भरी अनुभूति होती थी जैसी गगा-स्नान करने से होती थी। अर्थात् तुम गगा के समान पवित्र हो। हे कल्याणी! तुम्हारी वाणी मे त्रिवेणी की लहरो का सा दिव्य सगीत मुखरित होता रहता था।

जिस प्रकार हम किसी अपरिचित व्यक्ति को विना किसी रागात्मक भावना के साथ देखते हैं उसी प्रकार हे कल्याणी! तुम्हारी उस रागात्मक भावना से अपरिचित सरल-भोली चितवन मे प्रभातकालीन नव-जीवन प्रदान करने वाली शुभ्रता ओत-प्रोत रहती थी। (यहाँ कवि बालिका की चितवन को 'अपरिचित' इसलिए कह रहा है कि वह अभी तक सांसारिक राग-द्वेषो से सर्वथा अछूती सरल-भोली बालिका थी ।) तुम्हारी अमृत के समान मधुर, सुगन्धित सांसो के स्पर्श का अनुभव कर मैं अपनी सम्पूर्ण व्यथा वेदना से मुक्त हो जाता था। तुम्हारी छाया मे अर्थात् तुम्हारे साथ रहने मे मुझे जीवन का एक सहारा मिल जाता था। तुम्हारी सुखद चेष्टाएँ—बाल सुलभ भोली क्रीडाओ को देख मेरे मन को एक अद्भुत शान्ति प्राप्त होती थी और मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञता से भर उठता था।

तुम्हारी करुणा से भरी भौंहो मे आकाश की सी विशालता और गम्भीरता थी। अर्थात् अभी तक तुमने अपनी भौहो द्वारा कटाक्षो के विषाक्त बाण छोडना नहीं सीखा था। तुम्हारे हृदय मे सबके प्रति ममता और करुणा की जो भावना भरी रहती थी तुम्हारी सरल अकुचित भौहें उसी करुणा की प्रतीक थी। तुम्हारे हास्य बचपन का सम्पूर्ण सौन्दर्य, भोलापन और उन्मुक्तता भरी रहती थी। अर्थात् तुम बच्चो के समान खूब खिलखिला उठती थी। तुम्हारी आँखो मे सबके प्रति अगाध प्रेम छलकता रहता था। मानो तुम्हारी आँखें प्रेम की साकार मूर्ति थी।

(१) यहाँ कवि बालिका के पवित्र कोमल आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। वह नख-शिख वर्णन न कर बालिका के भोलेपन और पवित्रता का ही उद्घाटन कर रहा है। यह दृष्टि मासल सौन्दर्य-वर्णन की तुलना मे अधिक श्रेयस्कर और अभिनन्दनीय है। इसमे मासल कामुकता के स्थान पर गगा-जल

की सी निर्मल पावनता लहरा रही है। छायावादी लाक्षणिक शैली ने इस रूप-वर्णन में एक अद्‌भुत शालीनता और आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

कपोलों मे उर के · · वच्चों के सांस।

शब्दार्थ—दुराव = छिपाव। आवास = निवास। मुकुल = पुष्प। भास = आभास।

भावार्थ—तुम्हारे कपोल तुम्हारे हृदय के सुन्दर, स्निग्ध, कोमल भावो के ही समान सुन्दर, चिकने और कोमल थे। अर्थात् तुम्हारे कपोल तुम्हारे हृदय के भावो के प्रतीक थे। तुम ध्यान लगा कर बातें सुनती थीं और उस अपनापन का भाव तुम्हारे नेत्रो की स्निग्ध भावना द्वारा प्रकट हो जाता था। अर्थात् तुम्हारा प्रिय व्यवहार तुम्हारी दूसरो की ध्यान लगा कर बातें सुनने से तथा नेत्रो द्वारा उसी भाव को व्यक्त करने से प्रकट होता था। तुम्हारे सकेत यद्यपि सरल होते थे परन्तु उनमे नारी-सुलभ-स्वभाव का सकोच भरा रहता था। अर्थात् तुम्हारे सकेतो मे निर्लज्जता न रह कर एक शालीनता भरा सकोच ओतप्रोत रहता था। तुम्हारे कोमल अधरो मे एक मधुर रहस्य की सी भावना भरी रहती थी। अर्थात् तुम्हारे कोमल अधर नारी-स्वभाव-सुलभ लज्जा और शील के प्रतीक थे। तुम्हारे हृदय मे उषा की सी निर्मलता और उल्लास भरा रहता था। तुम्हारा मुख फूल के समान खिला हुआ रहता था। अर्थात् तुम्हारा मुख फूल के समान खिला हुआ रहना था। अर्थात् तुम्हारा मुख फूल के समान सुन्दर कोमल मुस्कान से खिला और पवित्र रहता था। तुम्हारे स्वभाव मे चाँदनी की सी शीतलता, निर्मलता और पवित्रता थी। अर्थात् तुम अत्यन्त शान्त स्वभाव की थी। तुम्हारे विचार बच्चो की साँसो के समान निर्मल और सरल थे।

बिन्दु मे थीं तुम · · · तुम स्वर्ग पुनीत।

भावार्थ—तुम जल की एक बूंद के समान लघु होते हुए भी अपने मे सम्पूर्ण सौन्दर्य का एक विशाल सागर छिपाए हुए थी। अर्थात् जिस प्रकार जल की एक बूंद सागर की विशालता, अनन्तता और गम्भीरता की प्रतीक होती है उसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य विश्व के समस्त सौन्दर्य का प्रतीक था।

विश्व का समस्त सौन्दर्य तुम मे समाया हुआ था। तुम्हारे एक स्वर मे ससार का सम्पूर्ण सगीत समाया हुआ था। तुम उस एक कली के समान थी जिसमे बसन्त का समस्त सौन्दर्य समाया रहता है। तुम इस धरती के पवित्र स्वर्ग के समान थी।

(१) इस चित्रण द्वारा कवि के बालिका के व्यक्तित्व को अलौकिकता प्रदान कर उसे सम्पूर्ण सौन्दर्य एव गुणो का एक पु जीभूत समुच्चय माना है।

(२) विरोधाभास एव उल्लेख्य अलकार है।

विधुर उर के मृदु .. . दृग जल धार।

शब्दार्थ—विधुर = विरही। पिघल पड़ते हैं प्राण = हृदय द्रवित हो उठता है।

भावार्थ—हे कुमारी ! तुम्हारे वियोग में विरही बने अपने हृदय के कोमल भावो द्वारा मे नित्य नए-नए रूप से तुम्हारा शृगार करता हूँ, अर्थात् नए-नए रूप मे तुम्हारे सौन्दर्य की अनुभूति करता हूँ और अपने हृदय के इन नेत्रो रूपी दुहरे द्वारों को बन्द कर अर्थात् दोनो नेत्र बन्द कर चुपचाप मन-ही-मन तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं अपने बन्द स्थिर पलको मे तुम्हारे मनोरम चित्र का सृजन कर तुम्हारी अपार रूप-सुधा का पान करता हूँ। अर्थात् आँखें बन्द कर तुम्हारे रूप की कल्पना कर तुम्हारे रूप-सौन्दर्य का पान करता रहता हूँ। तुम्हारा रूप आँखो के सामने आते ही मेरे प्राण द्रवित हो उठते है और मेरे नेत्रो से जल की धारा प्रवाहित हो उठती है। मैं विरह-वेदना से व्याकुल हो रोने लगता हूँ।

बालकों-सा ही तो . .. करता हूँ मान।

भावार्थ—उस समय मैं अज्ञात रूप से बच्चो के समान फूट-फूट कर रो उठता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं असहाय हूँ फिर भी न जाने फिर किस से मान करने लगता हूँ। अर्थात् तुम्हारे विद्रोह ने मुझे असहाय बना दिया है। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे नही मिल सकती फिर भी न जाने मैं क्यो मान करने लगता हूँ कि शायद कोई आकर मुझे समझाए।

मूंद पलको में .... गाएँगी सर्वदा ।

भावार्थ—वियोग की इस दारुण व्यथा से व्याकुल हो कवि अपने हृदय से कहता है कि—

हे हृदय ! अपनी प्रिया के ध्यान को अपनी पलकों मे बन्द कर वेदना के इस आह्वान को स्वीकार कर ले। अर्थात् अब तू इस वेदना को अपने जीवन का सर्वस्व मान ले। क्योकि उस प्रिया के पवित्र शून्य स्थान की पूर्ति तीनों लोको का ऐश्वर्य-सौन्दर्य भी नही कर सकता।' हे मेरे भग्न हृदय ! तेरे उज्ज्वल आंसू सदैव फूलो में वास करेंगे। अर्थात् तेरे ये आंसू फूलो में बसी ओस की बूंदो के समान सदैव निर्मल और पवित्र रहेंगे। वायु उनकी व्यथा दूर करेगी और भ्रमर बालिकाएं सदैव उनकी विरह व्यथा के गीत गाती रहेंगी।

(१) इस अंश मे कवि की विरह-व्यथा अत्यन्त गहन हो उठी है। कवि को आशा नही रही कि अब उसकी प्रिया से उसका मिलन हो सकेगा। इसलिए उसकी यह व्यथा अनन्त बन गई है। जायसी, सूर और घनानन्द की विरह-वेदना के समान यह वेदना अनन्त, अथाह और असीम है।

(२) कवि के प्रेम मे कही भी काम की कलुषता नही। उसको प्रिया सम्पूर्ण गुण-सौन्दर्य की साकार प्रतिमा है और उसी के समान कवि का प्रेम और उसकी विरह-वेदना भी उतनी ही पवित्र, गहन और अनुभूति-जन्य है।

(३) छायावादी काव्य के सम्पूर्ण गुण—कोमल कल्पना, सगीतात्मकता, लाक्षणिक मूर्तामूर्त विधान, कला और भाव का अद्भुत सतुलन, नवीन भाव व्यजना, भावों की सूक्ष्मता—इस कविता में साकार हो उठे हैं। शब्द योजना और लय भावानुकूल है। सघन प्रभाव की सृष्टि होती है। भाव-प्रवणता अद्भुत रूप से निखरी है।

६. 'आंसू' से

विरह है अथवा ... कविता अनजान !

भावार्थ—कवि 'आंसू' के सम्बन्ध मे कह रहा है कि यह विरह का

प्रतीक है अथवा वरदान का। (विरह मे दुख होता है और वरदान मे सुख प्राप्त होता है। साथ ही विरह प्रेम को पुष्ट करता है और प्रेम सुखद होता है इसलिए विरह वरदान स्वरूप भी है। यहाँ कवि यह निश्चित नही कर पा रहा कि विरह के दुख के प्रतीक इस आँसू को वह दुख का कारण माने अथवा सुख का। आगामी पंक्तियो मे वह इसी समस्या का विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है।)

कवि कहता है कि मेरी कल्पना मे कसकती हुई पीडा बसी हुई है। मेरे आँसुओ मे सिसकता सगीत रहता है। मेरी सूनी आहो मे सुरीले मधुर छन्दो के स्वर मुखरित हो रहे हैं। मेरे इन छन्दों के स्वरो की मधुर लय का क्या कही अन्त हो सकता है। अर्थात् मैं निरन्तर अपनी प्रिया के ध्यान मे डूबा रहता हूँ। मेरे हृदय में स्थित विरह निरन्तर छन्दों के मधुर स्वरो के रूप में प्रवाहित होता रहता है। मेरे गीत प्रस्फुटित होते रहते हैं। गीतो का यह क्रम अबाध रूप से चलता रहता है। अर्थात् विरह ही मेरे गीतों को जन्म देने वाला है।

गीतो को विरह से उत्पन्न मान कवि आगे कहता है कि ससार का पहिला कवि वियोगी रहा होगा। उसकी आहो से गान उत्पन्न हुआ होगा। और विरह के कारण आँखो से बहे आँसुओ के रूप मे अज्ञात रूप से ही कविता फूट पडी होगी। अर्थात् कविता का जन्म विरह के आँसुओ से ही हुआ होगा।

(१) आदि कवि वाल्मीकि जब क्रौंच वध को देख शोकाकुल हुए थे तभी ससार की प्रथम कविता का जन्म हुआ था।

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शेली भी दुख से कविता का जन्म मानता है—

"Our sweetest songs are those
That tell of saddest thoughts"

हाय किसके उर में .. . . भरे नयन।

भावार्थ—कवि विरह से व्याकुल है। वह अकेला है इसलिए विरह-व्यथा से पीडित हो चीत्कार करता हुआ पूछता है कि मैं अपने हृदय की इस व्यथा को किससे कह कर हल्का करूँ। (व्यथा दूसरो से कह देने से हल्की हो जाती

।) अपने आँसुओं का यह हार गूँथ कर मैं किसे उपहार-स्वरूप दे डालूँ।
र्थात् मैं अपनी विरह-वेदना को किसे सुनाऊँ।

मेरा जीवन तो पावस (वर्षा) ऋतु के समान बन गया है। अर्थात् जिस प्रकार वर्षा ऋतु मे निरन्तर वर्षा होती रहती है उसी प्रकार मेरे नेत्रो से विरह-वेदना के कारण निरन्तर आँसुओ की वर्षा होती रहती है। मेरा मन मान-सरोवर के समान वेदना रूपी जल से भर उमड रहा है, उद्वेलित हो रहा है। मेरे नयनो मे सघन, धुँधले, निर्मल, साँवले मेघो रूपी स्मृतियाँ छाई रहती हैं जिनके कारण उनमे निरन्तर आँसुओ की वर्षा होती रहती है—

(१) द्वितीय छन्द से सूर की ये पक्तियाँ तुलनीय है—

"निसदिन बरसत नयन हमारे।
सदा रहत पावस रितु इन पै जबते स्याम सिधारे॥"

(२) उपमा से पुष्ट सागरूपक है।

(३) प्रकृति के साथ साधर्म्य दृष्टव्य है।

कभी उर मे अगणित ... भावी चारों ओर।

भावार्थ—कभी मेरे हृदय मे असख्य कोमल भाव पक्षियो के समान कलरव करने लगते हैं। अर्थात् हृदय कोमल भावनाओ से भर उठता है। और कभी प्रिया की स्मृति रूपी कोमल घाव लाल कलियो के समान अवश रूप से स्वय प्रस्फुटित हो उठते हैं। अर्थात् अस्पष्ट सी स्मृतियाँ विकसित हो मुझे उसी प्रकार व्याकुल कर देती हैं जैसे छोटा सा घाव ठेस लगने पर मर्मान्तक पीडा देता है।

कभी-कभी जैसे बरसाती आकाश मे सतरगी इन्द्रधनुष एक छोर से दूसरे छोर तक हवा मे लटका एक पुल सा बाँध देता है उसी प्रकार मेरे हृदय मे रगीन आशाएँ छा कर उसे भर देती हैं। मेरी ये आशाएँ उस सेतु (पुल) के समान हैं जो प्रिया से मिलन का मार्ग खोल देती हैं। परन्तु ये आशाएँ इन्द्रधनुष के ही समान क्षणिक और निराधार होती है। कभी मुझे अपना भविष्य सघन कुहरे के समान ही अस्पष्ट दिखाई देने लगता है। अर्थात् मैं भावी मिलन की आशा से पूर्णत निराश हो उठता हूँ।

तडित सा सुमुखि .. . तुम्हें निदान।

भावार्थ—हे सुन्दरी ! जव तुम्हारी स्मृति वर्षाऋतु मे एकाएक भयकर गर्जन के साथ हृदय को प्रकम्पित और नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाली विजली के समान चमक उठती है तो मैं अत्यधिक व्याकुल हो जाता हूँ। और मेरे प्राण जुगुनुओ के समान उड़ कर निराशा के उस सघन अन्धकार मे तुम्हें खोजने के लिए तुरन्त उडने लगते हैं।

(१) अमूर्त 'ध्यान' की उपमा मूर्त 'तडित' मे दी गई है।

देखता हूँ जब . . पग अज्ञात।

भावार्थ—हे प्रिये। जव मैं उपवन को अपने फूलो रूपी प्यालो मे अपने यौवन (सौन्दर्य) की मादक मदिरा भर-भर कर भ्रमरो को पिलाता हुआ देखता हूँ, जव नवोढा नायिका सी छोटी लहर को नीचे किनारो पर उगे फूलो के पास अचानक रुक और फिर अकेली व्याकुल हो तुरन्त पीछे खिसक जाते हुए देखता हूँ तो हे प्राण प्रिये। तुम्हारी स्मृति तव मेरे हृदय मे मीठा सा दर्द उत्पन्न कर देती है। मेरा दुर्वल शरीर सिहर उठता है और मेरे पग अचानक ठिठक कर रुक जाते हैं। भाव यह है कि उपवन और भ्रमर, लहर तथा तट की ये केलि-क्रीडाएँ देख मुझे तुम्हारी मधुर स्मृति व्याकुल कर देती है और मैं ठिठका सा चेतना हीन हो उठता हूँ।

(१) 'उपवन' का मानवीकरण है।

(२) प्रकृति और कवि मे वैधर्म्य है। छन्दो मे चित्रोपमता है।

देखता हूँ जव . चाहते क्या आदान

भावार्थ—जव मैं चाँदनी को अपना पतला, इन्द्रधनुष के समान रगीन, हल्का, रेशमी वादलों का घूँघट खोल कर झाँकता हुआ देखता हूँ अर्थात् जव रगीन, झीने, कोमल वादलो मे से चन्द्रमा प्रकट हो जाता है तो हे प्रिय। मेरे हृदय में तुम्हारे चन्द्रमुख की स्मृति जाग्रत हो उठती है और मैं तुम्हारे ध्यान मे खो जाता हूँ। न जाने मेरे प्राण तुमसे क्या पाना चाहते हैं।

(१) इस छन्द में वर्ण-मिश्रण की अद्भुत छटा दर्शनीय है।

(२) स्पर्श कल्पना का मुन्दर उदाहरण है।

बादलों के छायामय .. प्रमुदित गिरि पर ।

भावार्थ—कवि प्रकृति मे सर्वत्र मिलन के दर्शन करता है। छाया के समान झीने बादल परस्पर मिलकर एकाकार हो जाते हैं। उनकी यह क्रीडा मेरी आँखों में सदैव घूमती रहती है। बादल आकाश से लेकर पृथ्वी तक सघन रूप से छा जाते है मानो आकाश और पृथ्वी मिल कर एक हो गए हो। कभी पर्वत पर बादल छा जाते हैं और कभी बादलो मे पर्वत विलीन हुआ सा दिखाई देने लगता है। अर्थात् बादल और पर्वत मिल कर एकाकार हो जाते हैं। (यहाँ कवि समासोक्ति अलकार द्वारा नायक-नायिका की केलि-क्रीडाओ का प्रकृति के माध्यम से वर्णन कर रहा है।)

जब पर्वत के शिखर पर वायु रूपी चरवाहा बाँस के सघन झुरमुटो मे घुस बशी के से स्वर उत्पन्न करता था तब उस स्वर को सुन छोटे-छोटे मेघ (मेघो के बाल) प्रसन्न होकर पर्वत के ऊपर फुदकने लगते थे। अर्थात् पवन चलने पर छोटे-छोटे मेघ पर्वत पर इधर-उधर भागने-दौडने लगते थे।

(१) अन्तिम चार पक्तियों मे उपमा से पुष्ट साग रूपक है।

इन्द्र धनु की . मेघासार !

शब्दार्थ—उचक=उछल कर। विशिखो की धार=जल की धारा रूपी बाण-वर्षा। मेघ सार=मेघ+आसार=मेघो का फैलाव।

भावार्थ—बिजली चमकती है और पर्वत की ओर लपकती दिखाई पडती है। कवि इस दृश्य का रूपक बाँधते हुए कहता है कि मेघ गर्जन रूपी इन्द्रधनुष की टकार (घोष) को सुन तथा जलधारा रूपी बाण-वर्षा को देख बिजली के चचल बालक भयभीत हो पवत के उस पार भागने लगते थे तो पवन उन्हें पुचकार कर मेघो के फैलाव को रोक देता था।

(१) मानवीकरण है।

अचल के जब वे . विशाल अम्बर !

भावार्थ—अब पर्वत के निर्मल-उज्ज्वल विचारो के समान निर्मल-सफेद बादल पृथ्वी से उठ कर स्थिर गति से अनन्त-व्यापक आकाश में शीघ्र हो

विलीन हो जाते थे तब आकाश उस विशाल पर्वत के ऊपर बैठे एक पक्षी के समान शोभायमान दिखाई पडने लगता था।

(१) यहाँ समासोक्ति द्वारा योगी के विचारो को धीरे-धीरे इस ससार के माया-मोह को त्याग ऊपर उठ ब्रह्म मे लीन हो जाते दिखाया गया है।

(२) मानवीकरण है।

पपीहों की वह पीन . . के प्रश्नोत्तर।

भावार्थ—पपीहो (चातकों) की वह तीखी पुकार, निर्झरो का वह गम्भीर झर-झर की ध्वनि, झींगुरो की हल्की झनकार, बादलो की गम्भीर गर्जना, वर्षा की बूँदों की छनती सी छनकार की ध्वनि और मेढको के दुहरे स्वर अनेक प्रकार ने हृदय को मोहित करते थे। वे स्वर ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वत प्रश्न कर रहा हो और वर्षा उसका उत्तर दे रही हो। अर्थात् पर्वत पपीहो के स्वर में प्रश्न करता था और वर्षा मेघ-गर्जन मे उसका उत्तर देती थी, पर्वत निर्झर के सगीत के रूप मे प्रश्न करता था तो वर्षा बूँदो की झनकार में उत्तर देती थी। पर्वत झींगुरो के महीन स्वर मे प्रश्न करता था तो वर्षा मेढको की टर्राहट मे उसका उत्तर देती थी।

(१) यहाँ समासोक्ति द्वारा पर्वत को नायक और वर्षा को नायिका माना है।

(२) अनुप्रास एव क्रमालकार है।

(३) इस छन्द की सगीतात्मकता अनुपम है।

(४) ध्वनि कल्पना है।

खंच ऐंचीला देती है साकार।

शब्दार्थ—ऐंचीला=तना हुआ। भ्रू-सुरचाप=भौंह रूपी इन्द्रधनुष। सुदुकूल=सुन्दर वस्त्र, आचल।

भावार्थ—कवि पर्वत के इस दृश्य का बार-बार स्मरण करता है। इसके साथ उसके हृदय मे अपनी प्रिया की स्मृति जाग्रत हो उठती है और विरह-वेदना से व्याकुल हो जाता है।

कवि कहता है हे सुमुखि! उस पर्वत की वह स्मृति इस प्रकार बार-बार आकर मुझे तुम्हारी याद दिला देती है। इन्द्रधनुष को देख मुझे तुम्हारी भौंहो

की इस चपलता ने दोनो के शरीर मे पुलक का कम्पन भर दिया, दोनो के शरीर रोमाचित हो उठे और हम दोनो का प्रेम-सम्बन्ध और भी गहरा हो गया। मेरी प्रिया के ताजे खिले गुलाब के समान सुन्दर, गुलाबी गालों पर मादक बना देने वाली शराब की सी लज्जा की लालिमा छा गई। लज्जा से उसके गाल लाल हो उठे और उनका सौन्दर्य शराब के समान मादक बन गया। बालिका के मुस्कराने पर उसके गालो मे गढ़े पड जाते थे जो ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे मानो अधखुली सीप मे सौन्दर्य की बाढ़ सी छलकी पड रही हो। सौन्दर्य भीतर न समा कर बाहर फूटा पड रहा हो। उसके गालो के इन गढ़ों मे सौन्दर्य के भँवर से पड रहे थे अर्थात् सौन्दर्य अपने सम्पूर्ण वेग के साथ लहरा रहा था। ऐसा कौन है जिसके यौवन के भार से दबे हुए नेत्र नौका के समान इन गढो रूपी भँवरो मे फँस कर, चक्कर खाकर नही डूबे। अर्थात् कोई भी उसके गालो के इस सौन्दर्य से प्रभावित होने मे नही बच सकता था।

(१) इस छन्द मे उपमा और रूपको की भरमार है। प्रथम चार पक्तियो मे सहोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलकार हैं।

(२) यहाँ प्रस्तुत द्वारा अप्रस्तुत का अत्यन्त चमत्कारपूर्ण विधान हुआ है। रूप के भँवर हैं, गालों के गढ़े हैं और यौवन के भार मे बोझिल नेत्र उस भँवर मे फँसी नौका हैं।

जब प्रणय का   **प्रिय कान्ति हो।**

शब्दार्थ—मूकता=मौन। विनत=विनीत। सलिल-शोभे=कमलिनी। विलग=अलग। तिमिर=अन्धकार। अरुण-कर=सूर्य की किरण। कनक=स्वर्ण, सुनहरी। तम-शेष=अन्धकार पूर्ण।

भावार्थ—कवि कहता है कि जब हम दोनो का वह मौन मेरे हृदय को प्रथम प्रेम का परिचय दे चुका तब मैंने सावधानी के साथ प्रिया के पास बैठ, शान्त विनीत वाणी मे उससे यह कहा—

हे जल को शोभित करने वाली कमलिनी! जिस घायल, नीचे गिरे हुए भ्रमर को तुमने दया से द्रवित हो अपने हृदय से लगा लिया है तो अब जल की उस चचल तरग से बचाए हुए उस भ्रमर को तुम अपने सौन्दर्य रूपी दूसरी लहर मे क्यो डुबा रही हो। जो फूल अचानक काँटो से बिंधे मे वृक्ष से

टूट अलग जा पडा है क्या तुम अब अपने दया से द्रवित हृदय मे उसे स्थान देकर उसे पुन सुन्दर रूप से नही खिला दोगी। अर्थात् एक बार सकट से बचा कर क्या अब मुझे अपने हृदय में स्थान दे प्रसन्न नही करोगी।

सूर्य की किरणें अन्धकार का मलिन हृदय छू कर अर्थात् अन्धकार को प्रकाश से भर कर अपनी सुनहरी आभा मे कमलो को खिला देती हैं। किसी प्रिया के बिना मेरे हृदय मे निराशा का भयकर अन्धकार समाया हुआ है। हे प्रिये! मेरे उस अन्धकार से भरे हृदय मे उत्पन्न होने वाली इस प्रेम रूपी कली को खिला देने वाली कान्ति एकमात्र तुम्ही हो। अर्थात् तुम्हारा प्रेम प्राप्त कर मेरा प्रेम खिली कली के समान खिल उठेगा।

'यह विलम्ब। • हैं प्रीति से।

शब्दार्थ—बालुका=बालू, रेत। कलाधर=चन्द्रमा। कौमुदी=चाँदनी। धवल=उज्ज्वल। विकम्पित=काँपते।

भावार्थ—जब बालिका ने कवि के प्रश्नो और आग्रहो का कोई उत्तर नही दिया तो कवि पुन उससे कहने लगा।

हे कठोर हृदय वाली! तुम मेरी बात का उत्तर देने मे इतना विलम्ब क्यो कर रही हो। जल मे डूबता हुआ जब सहारे के लिए बालू को पकडता है तो बालू भी उसे बचा लेती है। जो निष्ठुर होते हैं उन पर मुझे सदैव बडा भरोसा रहा है। पर्वत की कठोर शिलाएँ ही मानव को निर्भय बना उसे सहारा देती हैं। (मनुष्य पत्थरो की गुफाओ में शरण लेकर वन्य जीव-जन्तुओ, सर्दी-गर्मी-वर्षा से अपनी रक्षा करता है।) तुम कठोर हो, इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि तुम भी मुझे सहारा दोगी, मेरी रक्षा करोगी।

सघन अन्धकार मे चन्द्रमा की कला उसकी चाँदनी बन सारे ससार मे उज्जवल कीर्ति की अधिकारिणी बन जाती है। अर्थात् दिन के प्रकाश मे चाँदनी का कोई महत्व नही रहता। जब दीनता से काँपते हाथो मे पकड़े पात्र में प्रेम के साथ दान दिया जाता है तभी उस दान का महत्व होता है। समर्थ को दान देने से दानी का महत्व नही बढता। इसी प्रकार मेरा प्रेम-शून्य हृदय निराशा के अन्धकार से भरा हुआ है। अब तुम्ही प्रेम का दान देकर उसे सुखी

और ऐश्वर्यशाली बना सकती हो। मैं दीन और प्रणय-वंचित हूँ। मुझे प्रेम की भिक्षा दो।

(१) दृष्टान्त और विरोधाभास अलंकार है। अन्योक्ति का सुन्दर प्रयोग है।

'प्रिय ! निराश्रिति ' दिखलाता सदा।

शब्दार्थ—निराश्रिति = दीनता। अल्पता = दरिद्रता। संकुचित = सिकुडी। अल्प = तनिक। अपनाव = अपनापन, प्रेम। दयानिल = दयारूपी वायु। उपकृति = उपकार। करुणालोक = करुणा का आलोक।

भावार्थ—हे प्रिये ! दीनता की अर्थात् दीन व्यक्तियो की कठोर भुजाएँ किसी लालच के कारण कभी नीची नही होती। अर्थात् जब तक माँगने वाले को अपनी इच्छित वस्तु नही मिल जाती तब तक वह अपनी फैलाई हुई बाँहें कभी नीचे नही करता। यदि दीन-दरिद्र व्यक्तियो को किसी से तनिक सा भी प्रेम मिल जाता है तो कृतज्ञता से उनकी सिकुड़ी-धँसी आँखें प्रेम के आँसू बहाने लगती हैं।

हे प्रिये ! जिस प्रकार वायु चलने से सरोवर मे असख्य लहरे उठने लगती है उसी प्रकार किसी की दया प्राप्त कर लेने पर मानव का हृदय उस उपकार के कारण रोमाचित हो उठता है और उसके हृदय में कृतज्ञता की असख्य लहरें उमडने लगती हैं। अर्थात् वह अत्यधिक कृतज्ञ हो जाता है। यदि किसी दीन-दुखी को किसी की तनिक सी भी करुणा मिल जाती है तो वह ससार के सम्मुख उस करुणा को अत्यधिक बढा-चढा कर उसी प्रकार दिखाता फिरता है जिस प्रकार प्रकाश की एक क्षीण रेखा जल मे पड उसकी असख्य लहरो मे प्रतिबिम्बित हो विशाल रूप धारण कर लेती है। भाव यह है कि यदि तुम मेरे प्रेम को स्वीकार कर प्रतिदान मे अपना प्रेम दे दोगी तो मैं तुम्हारा बहुत उपकार मानूँगा।

(१) सागरूपक अलंकार है।

(२) अनेक नवीन मौलिक कल्पनाएँ है।

'शरद के निर्मल है फर सदा ?'

शब्दार्थ—अपागो मे = तिरछे देखना।

भावार्थ—हे प्रिये ! जिस प्रकार शरद ऋतु के निर्मल अन्धकार मे जब प्रेमी-प्रेमिका का प्रथम मिलन होता है और उस मिलन की मादकता से दोनो के पलक झूमने लगते हैं (बार-बार खुलते और बन्द होते हैं) उसी प्रकार तुम्हारे इस मौन की आड़ ले मादकता से भरा किसका हाथ मुझे छू रहा है ? अर्थात् यद्यपि तुम मौन हो परन्तु मुझे स्पर्श करने वाले तुम्हारे हाथ का कम्पन यह संकेत कर रहा है कि तुम्हारे हृदय मे प्रथम मिलन के समय उत्पन्न होने वाली मादकता भर रही है, तुम प्रणय-विह्वल हो रही हो।

हे प्रिये ! क्या प्रेम की रीति ऐसी ही विचित्र है कि प्रिया प्रियतम को ओर सीधी दृष्टि से न देख सदैव उसकी आँख बचा कर तिरछी दृष्टि से ही देखती है। (यहाँ प्रिया ने कवि की ऊपरी बातें सुन कर उसकी ओर चुपचाप तिरछी दृष्टि से देखा होगा।) यह प्रेम क्या दूर रहने पर ही अधिक बढ़ता है उसी प्रकार प्रेम हो जाने के उपरान्त प्रेमी अपने प्रिय से उसका परिचय पूछता है जिस प्रकार कोई प्यासा व्यक्ति पहले पानी पी लेने के उपरान्त पिलाने वाले से यह पूछे कि तुम्हारा घर कहाँ है अर्थात् तुम कहाँ के रहने वाले हो। भाव यह है कि प्रेम तो अनायास ही हो जाता है। प्रेमी अपने प्रेमास्पद के विषय मे प्रेम करने से पहिले कोई जाँच-पड़ताल करने की चिन्ता नही करता। परिचय तो प्रेम हो जाने के उपरान्त होता है।

(१) 'दूर" बढ़ता'—मे विरोधाभास है।

(२) 'पानी पीकर घर पूछना'—मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

इन्दु की छवि में ... मेरी दीप सी।

शब्दार्थ—अनिल = पवन । वीचि = लहर । स्मिति = मुस्कान । मृगेक्षिणि = मृगनयनी ।

भावार्थ—कवि की प्रणय-याचना को सुन कर भी बालिका मौन बनी रही। कवि उसका उत्तर सुनने के लिए व्याकुल हो उठा। उसे अपने हृदय की यह उत्सुकता भरी व्याकुलता सम्पूर्ण प्रकृति मे प्रतिबिम्बित होती दिखाई पड़ने लगी। कवि कहता है कि—

चन्द्रमा की चाँदनी मे, अन्धकार के गर्भ मे, पवन की सनसनाहट मे, जल की लहरो में, फूल की भोली मुस्कान मे और लता के अधरो (पत्तो) पर सर्वत्र

एक सहज उत्सुकता का भाव विचरण कर रहा था। उस मृगनयनी ने पृथ्वी पर गढे अपने नयनो को क्षण भर के लिये ऊपर उठा मेरी ओर अपनी श्यामल दृष्टि से देखा और मेरी दीपक के समान दृष्टि को अपने स्नेह रूपी तेल से भर प्रज्वलित कर दिया। अर्थात् उसकी उस प्रेम भरी दृष्टि को देख मेरे नेत्र प्रसन्नता और उत्साह से चमक उठे। जब उसने अपनी दृष्टि नीचे से ऊपर उठाई थी उस समय मेरे हृदय की व्याकुलता अत्यन्त तीव्र हो उठी थी। मैं नही जानता था कि उसकी उस दृष्टि मे प्रेम का सन्देश होगा या उपेक्षा भरी भर्त्सना होगी। इसी कारण उसकी दृष्टि ऊपर उठते ही मेरा हृदय अत्यधिक व्याकुल हो उठा था।

(१) 'एक उत्सुकता थी'—मे दीपक, 'निज पलक उठा'—मे सहोक्ति एव यथाक्रम, तथा 'स्नेह' मे श्लेष और 'दीप से' मे उपमालकार है।

(२) प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सामजस्य है।

(३) इस कविता मे गद्य की सी शैली है। वर्णनात्मक काव्य मे प्राय इसी शैली का प्रयोग होता है।

(४) कहा जाता है कि इस कविता मे वर्णित घटना का कवि के व्यक्तिगत जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसी कारण इसमे अनुभूति की इतनी गहन मात्रा मिलती है। प्रकृति की मनोरम पृष्ठभूमि ने इसकी सवेदनशीलता को बहुत बढा दिया है। दो अनजान हृदयो के प्रथम मिलन का बहुत ही भावात्मक, सच्चा और अनुभूति-गम्य चित्रण इस कविता की विशेषता है।

८ बादल

इस कविता मे कवि बादलो के विभिन्न कोमल-भयकर रूपो के रम्य चित्र प्रस्तुत करता है। बादल प्रथम पुरुष मे अपने विभिन्न रूपो का स्वय वर्णन करते है।

सुरपति के हम ... ले जाता ऊपर।

शब्दार्थ- सुरपति = इन्द्र। अनुचर = सेवक। जगत्प्राण = पवन। जीवन-धर = प्राणो के आधार। शिखी = मयूर, मोर। सुभग = शुभ। मुक्ताकर =

मोतियो का खजाना । विधायक=धारण करने वाले । सत्वर=शीघ्र । चल=चचल ।

भावार्थ—बादल कहते हैं कि हम ही इन्द्र के सेवक, पवन के साथी और (कालिदास के प्रसिद्ध काव्य) 'मेघदूत' की करुण कल्पना को प्रेरणा देने वाले और चातक को सदैव जीवन-दान देने वाले हैं। (चातक स्वानि नक्षत्र के जल को पीकर ही जीवित रहता है, ऐसी कवि-कल्पना हैं।)

हमे देख कर ही मयूर मुग्ध हो नृत्य करने लगते हैं। हम हो शुभ स्वाति नक्षत्र मे जल बरमा कर सीपियो मे मोतियो के खजाने भर देते हैं। (कवि-कल्पना है कि स्वाति नक्षत्र में वरसी बूँदें सीपियो मे पड कर मोती बन जाती हैं।) हम ही पक्षियो को गर्भ धारण कराने वाले हैं। (लोक-विश्वास है कि मेघ गर्जन को सुन पक्षी गर्भ धारण करते हैं।) हम ही कृपक-बालिकाओ को जल का दान देने वाले हैं।

सूर्य जिम प्रकार नित्य तालावो मे कमल के फूलो को खिलाता है उसी प्रकार हमे भी आकाश रूपी जलाशय मे खिलाता है। (सूर्य के ताप से ही जल भाप बन बादलो का रूप धारण कर लेता है।) परन्तु पवन हमे पहले एकत्र कर शीघ्र ही उसी प्रकार चारो ओर बिखरा देता है जिस प्रकार बालक फूलो को चुन कर पुन उन्हें टुकडे-टुकडे कर इधर-उधर फेंक देते हैं।

जब सागर हमे अपनी नन्ही लहरो रूपी चचल पालने मे झूला झुलाता है तब वही चील का सा झपट्टा मार अर्थात् बडे वेग से झपट हमारी बाहें पकड हमको ऊपर आकाश मे ले जाता है। अर्थात् सागर की लहरो से उठती भाप को पवन बडी तीव्र गति से ऊपर उडा ले जाता है।

(१) प्रथम दो छन्दो मे 'उल्लेख' तथा तृतीय छन्द मे 'उपमा' और 'श्लेष' अलकार हैं। परन्तु इस तृतीय छन्द मे उपमान उपमेय मे सादृश्य होते हुए भी प्रभाव-साम्य का अभाव है। चतुर्थ छन्द मे व्यापार की समानता है। प्रथम दो छन्दो में लक्षणा का प्रयोग है।

(२) चतुर्थ छन्द मे सागर और बादल का मानवीकरण है।

(३) कल्पना-चित्रो के मनोरम विविध रूप अत्यन्त रम्य हैं।

भूमि गर्भ मे .. . कर सुकुमार ।

शब्दार्थ—भूमि-गर्भ = धरती के भीतर। रोमिल = रोमदार । पक = कीचड । अक = शरीर, गोद । नि शक = निर्भीक । प्रकटा = प्रकट कर। सुभग = सुन्दर। समुद = प्रसन्नता पूर्वक। शुचि = पवित्र।

भावार्थ—जिस प्रकार पक्षी अपने कोमल रोमदार पख फैला कर अपने अण्डो को सेते हैं उसी प्रकार हम धरती के भीतर (जल के रूप मे) घुस कर वहाँ पडे असख्य चित्र फूटे हुए बीजो को अपनी साँसो से सेते हैं और उनके ऊपर लिपटी कीचड को दूर कर उन्हें प्रस्फुटित कर देते हैं।

हम त्रिभुवन की विराट कल्पना के समान नाना प्रकार के रूप धारण कर सारे आकाश को भर देते हैं। (आकाश में छाये बादलों मे हमे नाना प्रकार के जीव-जन्तुओ, प्रकृति के रूपो के अद्भुत रूप दिखाई पड़ते हैं।) फिर हम निर्द्वन्द्व भाव से आकाश मे फैल कर नाना प्रकार की क्रीडाएँ करते हैं।

कभी हम अचानक भूत-प्रेतो के से भयकर विशाल रूप धारण कर जब कडक-कडक कर गरज उठते हैं तब सारा ससार थर्रा उठता है। कभी हम परियो के बच्चो के समान अपने सुन्दर सीप जैसे सफेद पख फैला कर, आनन्द के साथ चन्द्रमा की कोमल किरणो को पकड पवित्र, निर्मल चाँदनी मे तैरने लगते हैं।

(१) इस चतुर्थ छन्द की कल्पना बडी मनोहर है। मानो परियाँ सचमुच अपने बच्चो को तैरना सिखा रही हो।

(२) छन्दो मे गत्यात्मक सौन्दर्य है।

बुद्बुद् द्युति . वायु-विहार।

शब्दार्थ—तारक-दल-तरलित = तारो के समूह से युक्त। जम्वाल-जाल = काई का समूह। अमूल = बिना जड वाले । अविराम = निरन्तर । कुमुद कला = चाँदनी। अभिराम = सुन्दर । ललाम = मधुर । विद्युद्दाम = बिजली रूपी प्रत्यचा। द्रुत = तेजी से। पटह = नगाडा। विशिखो = वाणो। आसार = वितान, फैलाव, विस्तार। वज्रायुध = वज्र + आयुध = बिजली रूपी अस्त्र भीमाकार = विशाल आकार। वासव-सेना = इन्द्र की सेना।

भावार्थ—जिस प्रकार यमुना के काले जल मे चमकते हुए वुलवुले और काई के विना जल वाले गुच्छे सदैव तैरते रहते हैं उसी प्रकार हम नीले आकाश रूपी यमुना में चचल प्रकाश वाले तारो रूपी वुलवुलो के साथ काई के काले विना जड वाले समूहो के समान सदैव तैरते रहते हैं। (यहां आकाश, यमुना, तारे वुलवुले और बादल काई के गुच्छो के समान हैं।)

जिस प्रकार स्वर्ण-हस ने दमयन्ती को मधुर सन्देश सुनाया था उसी प्रकार हम दमयन्ती के समान सुन्दर चांदनी के रुपहलो किरणो रूपी हाथो में विचरण करते हुए अपनी म द-मधुर ध्वनि द्वारा ससार के जीवो को उनके प्रियतमो का मधुर सन्देश सुनाते हैं। (यहां कवि ने हल्के नन्हे सफेद वादलो एव उनकी मन्द-मधुर ध्वनि से मानव-मन मे उत्पन्न रागात्मक भावनाओ का बडा हृदयहारी चित्र अकित किया है।)

कभी हम शीघ्रतापूर्वक विजली की दुहरी प्रत्यचा चढा कर इन्द्र धनुष की टङ्कार के समान गम्भीर गजन करते हैं। (यहाँ वादलो के किनारे पर चमकती सफेद रेखा इन्द्र धनुष की दुहरा प्रत्यचा है।) फिर हम अपनी बूंदो रूपी वाणो की भयङ्कर वर्षा कर युद्ध के नगाडो के समान भयङ्कर गर्जन करते हैं।

हम अत्यन्त विशालकाय पर्वतो को अपने विजली रूपी अस्त्र के आघात से चूर-चूर कर देते हैं और फिर (विजय गर्व मे भर) अपनी शक्ति के मद मे चूर इन्द्र की विशाल सेना के समान नित्य वायु-विहार करते हैं। (यहां कवि इन्द्र और पर्वतो के पौराणिक युद्ध की ओर सकेत कर रहा है।)

(१) इसमे प्रथम दो छन्दो में वादलो का कोमल रूप है तथा अन्तिम दो छन्दो में कठोर-भयकर रूप है।

(२) उपमा, रूपक तथा श्लेप अलकार हैं।

(३) 'दमयन्ती सी' मे अप्रस्तुत पक्ष सुन्दर एव मनोरम है।

(४) चारो छन्दो में भाषा की समास शक्ति एव कल्पना की समाहार शक्ति अद्भुत है।

व्योम विपिन मे • चारों ओर।

शब्दार्थ—व्योम-विपिन = आकाश रूपी वन । अनिल-स्रोत = वायु रूपी

नदी या झरना। बाल हंस = बाल रवि। अवदात = श्वेत। मारुत = पवन। अपयश = निन्दा। भोर = प्रभात। इन्द्रचाप = इन्द्र धनुष।

भावार्थ—जब आकाश रूपी वन (उषा के उदय होने पर) नवीन कोमल पत्तो के से रंग वाला वसन्त के समान उल्लासदायक प्रभात खिल उठता है तब हम वायु रूपी नदी में तमाल रूपी अन्धकार के पत्तो के समान बहने लगते हैं।

फिर जब उदयाचल से बाल रवि सफेद हस के बच्चे के समान ऊपर आकाश में उडता है तब हम भी अपने सुनहले पखो को फैला कर तीव्र गति से हवा से बातें करने लगते हैं अर्थात् तीव्र गति से दौडने लगते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य के हृदय मे सशय धीरे-धीरे उत्पन्न होता है और अपयश ससार मे बडी तेजी से फैल जाता है उसी प्रकार हम पहले तो बडी मन्द गति से आकाश में उठते है और फिर शीघ्र ही बडी तीव्र गति से सारे आकाश में छा जाते हैं। जिस प्रकार मोह उत्पन्न होकर एकाएक सारे हृदय को आक्रान्त कर लेता है उसी प्रकार हम एकाएक उमड कर सारे आकाश को ढक लेते हैं। जिस प्रकार मनुष्य की लालसा रात-दिन बढती जाती है उसी प्रकार हम रात-दिन बढते रहते हैं।

जब व्यक्ति चिन्तित होता है तो भृकुटि टेढी हो जाती है उसी प्रकार हम आकाश की इन्द्रधनुष रूपी भृकुटी पर चिन्ता के समान छा जाते हैं। जिस प्रकार क्रान्ति का भय चारो ओर व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार हम गर्जन करते हुए आकाश मे छा जाते है।

(१) 'धीरे' ''भोर'—मे मूर्त बादलो की उपमा अमूर्त भावनाओ से की गई है। ऐसे ही चित्र शेष छन्दो मे हैं।

पर्वत से लघु · · · हिमजाल डाल।

शब्दार्थ—विभव-भूति = सासारिक ऐश्वर्य। अम्बर = आकाश। पतग = पतगा सूर्य। त्वरित = शीघ्र, तुरन्त। उत्ताल = तीखे। आतप = गर्मी। हिमजल = ठडा पानी।

भावार्थ—हम पल भर मे पर्वत के समान अपने विशाल रूप को त्याग कर

तुरन्त धूलि-कण के समान लघु रूप धारण कर लेते है और फिर पल भर मे ही पुन पर्वत के समान विशाल आकार वाले बन जाते हैं। जिस प्रकार समय का चक्र (पहिया) निरन्तर ऊपर-नीचे घूमता रहता है उसी प्रकार हम मानो काल का साकार रूप धारण कर आकाश में ऊपर-नीचे-उतरते रहते है। क्षण भर में हम जल धारण करने वाले बादल बन जाते हैं और फिर क्षण भर मे ही जल की धार बरसाने लगते हैं। भाव यह है कि बादल का रूप धारण कर हम ऊपर उठते हैं और फिर जलधार के रूप में नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। इस प्रकार हमारा उत्थान-पतन होता रहता है।

कभी हम हवा मे महल बनाते है। (बादल महल के से आकार के बन जाते हैं।) और कभी आकाश मे विशाल पुल सा बाँध देते है। और फिर हम अचानक ही उसी प्रकार विलीन हो जाते है जिस प्रकार एकाएक सासारिक ऐश्वय लुप्त हो जाता है।

कभी हम वृक्ष की नगी शाखाओ के समान सूने आकाश मे अपनी हल्की-हल्की सफेद पट्टियों द्वारा मकड़ी का सा जाला बुन देते है और फिर तत्काल ही उसमे आकाश में उड़ते सूर्य रूपी पतग को उलझा कर पकड़ लेते हैं। अर्थात् सघन रूप धारण कर सूर्य को ढक लेते हैं।

फिर हम आकाश के हृदय की करुणा के समान शीघ्र ही द्रवित होकर भीषण गर्मी से मूच्छित सी बनी कलियों पर ओस रूपी हिमजल की वर्षा कर उन्हें खिला देते है। (गर्मी से मूच्छित व्यक्ति शीतल जल के छीटे देने से होश मे आ जाता है। कलियाँ रात मे ओस पड़ने मे सुबह खिल जाती हैं।)

हम सागर के ... कल्पना महान।

शब्दार्थ—धवल=शुभ्र। धूम=धुँए। वारि-वसन=जल के वस्त्र। मूल=मूलाधार, जीवन देने वाले। अवनि=पृथ्वी। अम्बर=आकाश। सलिल=जल। मारुत=वायु। तम=अन्धकार। पावक के तूल=जलती हुई रुई। व्योम-वेलि=आकाश रूपी लता। अचल=पर्वत। दय=शीतलता। यान=रथ। पाशुल=धूल से भरे। अनल=अग्नि। विरल-वितान=भीना।

मडप। जल-खग = पानी मे तैरने वाले पक्षी। थल = धरती। अम्बुधि = समुद्र।

भावार्थ—हम मानो सागर के शुभ्र हास है। (हास—हँसी का वर्ण श्वेत माना गया है। बादल सागर से उठते है इसलिए उन्हें सागर का श्वेत हास कहा गया है।) हम जल के धुँए है। (जल से उठती हुई भाप धुँए सी लगती है। इसीलिए बादलो को जल का धूम कहा गया है।) हम आकाश की धूल है। (धूल उड कर आकाश मे छा जाती है और उसे धुँधला बना देती हैं। हल्के बादल छा जाने पर भी आकाश धुँधला दिखाई पडने लगता है इसीलिए बादलो को 'गगन की धूल' कहा गया है।) हम पवन के झाग है। (जिस प्रकार तेजी से बहते जल में झाग के टुकडे बहते चले जाते हैं उसी प्रकार हवा में सफेद बादलो के टुकडे झाग के समान बहने लगते है।) हम उषा के लाल रग के पत्ते है। (यहाँ उषा से अभिप्राय जीवन के प्रारम्भिक विकास से है। पत्ते कोपलो के रूप मे जीवन प्राप्त करते है जिसका रग लाल होता है। इसीलिए यहाँ उषा की लालिमा मे रजित लालिमा युक्त बादलो के टुकडो को 'उषा के पल्लव' कहा गया है।) हम जल के वस्त्र है। (कपडो में जिस प्रकार शरीर छिपा रहता है उसी प्रकार बादलो मे जल छिपा रहता है।) हम पृथ्वी के मूल अर्थात् उसे जन्म देने वाले है। (बादल का रूप होते है और पृथ्वी की उत्पत्ति जल से मानी गई है। इसीलिए बादलो को पृथ्वी का जनक कहा गया है।)

हम आकाश मे पृथ्वी की सृष्टि करते हैं और पृथ्वी पर आकाश की। (आकाश में सघन छाए बादल अपने विभिन्न रूपो द्वारा अनेक प्रकार के ऐसे दृश्यो तथा वस्तुओ का आकार धारण कर लेते है जिससे ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो ऊपर आकाश मे भी एक पृथ्वी स्थित हो। इसके विपरीत जब मूसलाधार वर्षा होने लगती है तो उसमे पृथ्वी छिप जाती है और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो चारो ओर धुँधले नीले रग का आकाश छा गया हो। कहावत भी है कि ऐसी वर्षा हो रही थी मानो आकाश पृथ्वी पर उतर आया हो।) हम जल की भस्म है। (भस्म का रग श्वेत होता है और बादल जल के जलने पर उठी भाप का ही रूप है। अत उसे जल की भस्म कहा गया है।)

हम वायु के फूल हैं। (फूल डालियो पर खिलते हैं और नन्हे-नन्हे सफेद बादलों को फूलो का सा रूप देने वाली वायु ही होती है।) हम ही जल मे स्थल और स्थल मे जल बन जाते हैं। (जब जल पर बादलो की छाया पडती है तो ऐसा लगता है मानो जल के भीतर पृथ्वी स्थित हो और फिर बादल ही पृथ्वी पर चारो ओर जल की सृष्टि कर देते हैं।) हम ही दिवस के अन्धकार हैं। (दिन के समय सघन बादल छा जाने पर अन्धकार छा जाता है।) हम ही अग्नि मे जलती रुई के समान हैं। (सुवह-शाम बादलो का रग जलती हुई रुई के समान लाल हो जाता है।) अथवा जिस प्रकार अग्नि रुई को जला उसे नष्ट कर देती है इसी प्रकार अग्नि के समान दाहक ग्रीष्म ऋतु भी हमें नष्ट कर देती है। ग्रीष्म ऋतु मे बादल नही दिखाई देते।

हम आकाश की लता (अमर वेल) हैं। (जिस प्रकार अमर वेल सारे वृक्ष पर छा जाती है उसी प्रकार बादल सारे आकाश पर छा जाते हैं।) हमारे ही कारण तारे गतिशील प्रतीत होते हैं। (जब प्रकाश में बादल चलते हैं तो उनके साथ तारे भी चलते से प्रतीत होते हैं।) हम पर्वताकार रूप धारण कर चलने ऐसे प्रतीत होते हैं मानो पर्वत चल रहे हो। हम आकाश के गान हैं। जब हम मन्द-गम्भीर स्वर से गर्जन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो गगन सगीत की आलापें ले रहा हो। हम तारो की तन्द्रा हैं।-जिस प्रकार तन्द्रा छाने पर रूप मलिन पड जाता है उसी प्रकार हम निरन्तर चमकते रहने वाले तारो पर छा कर उन्हें ऐसा रूप दे देते हैं मानो वे नीद के कारण झपकियाँ ले रहे हो। चाँदनी मे बर्फ के टुकडो के समान शीतल प्रतीत होते है और चन्द्रमा के रथ बन जाते हैं। (चलते बादलो के मध्य चन्द्रमा भी चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलो के रथ पर बैठा चल रहा हो।)

हम पवन की गाएँ हैं। जिस प्रकार ग्वाला गायो के झुड को हाँक कर ले जाता है उसी प्रकार पवन बादलो के टुकडो को मानो गायो के समान हाँक कर ले जाता है। परिश्रम करने से शरीर पर धूल-मिट्टी छा जाती है। सूर्य परिश्रम करता है, अग्नि वर्षा करता है जिससे बादलो का भाप के रूप मे जन्म होता है। भाप धुँधली होती है। बादलो का रग भी धुँधला होता है। इसी कारण बादलो को सूर्य का 'पाशुल श्रम' अर्थात् सूर्य की कडी मेहनत से

उत्पन्न माना गया है। हम जल और अग्नि के बने झीने मडप हैं। अर्थात् जल और अग्नि का सयोग होने पर ही हम झीने रूप मे सारे आकाश पर छा जाते हैं। हम आकाश की पलक है। जिस प्रकार पलक बन्द होने पर आँखें छिप जाती हैं और व्यक्ति सो जाता है उसी प्रकार बादलो के छा जाने पर आकाश छिप जाता है और चारो ओर नीद का सा स्तब्ध वातावरण छा जाता है। हम जल के पक्षी हैं। (जल मे पडती हल्के नन्हे सफेद बादलों की छाया ऐसी प्रतीत होती है मानो जल मे जल के पक्षी हस आदि तैर रहे हो। हम ही बहते हुए स्थल हैं। जब सघन काले बादल आकाश मे विचरण करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी के काले टुकडे हवा मे तैर रहे हो। हम सागर की महान कल्पना हैं। कल्पनाएँ जिस प्रकार अद्भुत सृष्टि की रचना करती हैं उसी प्रकार सागर ने अपनी महान कल्पना द्वारा हमारी सृष्टि की है। कल्पना महान इसलिए है क्योंकि सागर ने अपने रूप से नितान्त भिन्न रूप में बादलो की रचना की है जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी मे विलीन हो जाते हैं। यह विश्व विराट पुरुष की महान कल्पना माना गया है जो उसी से उत्पन्न होकर उसी मे लय हो जाता है।

(१) इन छन्दो मे दी गई सम्पूर्ण उपमाएँ रूप-साम्य पर आधारित हैं। उनमें प्रभाव-साम्य नही मिलता।

(२) लाक्षणिक उपमानो का कलात्मक प्रयोग किया गया है।

(३) मूर्तामूर्त विधान, मानवीकरण, विरोधाभास आदि के चमत्कार एव सौन्दर्य से यह कविता कलात्मक बन गई है। कवि ने कल्पना का मुक्त हस्त होकर उपयोग किया है। बादलो के विविध रूप बडे आकर्षक बन पडे हैं।

(४) प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र ही अधिक आए हैं यद्यपि कही-कही उद्दीपन रूप मे भी चित्रण हुआ है।

(५) विषयगत तथा आत्मगत भावो का प्राधान्य रहा है।

(६) भाषा का अद्भुत प्रभाव, सुन्दर शब्द-योजना, सुललित वाक्य-विन्यास आदि की दृष्टि से यह कविता अत्यन्त उच्च कोटि की बन पडी है।

(७) इस कविता पर अग्रेजी के प्रसिद्ध रोमान्टिक कवि शेली की 'The Cloud' कविता का बडा गहरा प्रभाव दिखाई पडता है। शेली ने भी बादलो

के विभिन्न रूपों का बड़ा मोहक और भावात्मक चित्रण किया है। पन्त ने इस प्रभाव को स्वय स्वीकार किया है।

६ मुस्कान

इस कविता मे कवि ने किसी मुग्धा नायिका को विभिन्न रूपो मे वरवस फूट उठने वाली मुस्कान का उसकी विभिन्न मानसिक दशाओ के आधार पर बडा हृदयहारी चित्रण किया है।

कहेंगे क्या मुझसे .. यह मुस्कान !

भावार्थ—कोई मुग्धा वाला अपनी सखी से वरवस खिल उठने वाली अपनी मुसकान के सम्बन्ध में कहती है कि हे सखी ! कभी-कभी मैं यह सोचती हूँ कि मेरी अनायास खिल उठने वाली इस मुस्कान को देखकर सब लोग मेरे विषय में न जाने क्या कहेंगे, न जाने मेरे विषय मे कैसी धारणा वना लेंगे। परन्तु हे सखी ! मैं अपनी इस मुस्कान को रोकने का वहुत प्रयत्न करती हूँ परन्तु फिर भी यह रुक नही पाती। मैं वरवस मुस्करा उठती हूँ।

विपिन मे पावस .. .. मुझे निदान !

शब्दार्थ—विपिन=वन। पावस के से दीप=वर्षा ऋतु मे दीपको के समान चमक उठने वाले जुगनू। दुराव=छिपाव।

भावार्थ—मेरे हृदय मे नित्य सहसा वर्षा ऋतु मे वन मे सहसा चमक उठने वाले जुगनुओं के समान सैकड़ो कोमल भाव जग उठते हैं और उन्हें मैं छिपा नही पाता। जिस प्रकार भोला शिशु अनायास ही सब को हँसा देता है उसी प्रकार मेरे हृदय मे उठने वाले भोले शिशु के समान निष्पाप, कोमल मेरे ये कल्पित भाव मुझे वरवस ही तत्काल हँसा देते हैं।

तारकों से पलकों यह मुसकान !

शब्दार्थ—तारको=तारागणो। हिमजल=आंसू। अपनाव=आत्मीयता।

भावार्थ—रात्रि मे लेटी हुई जव मैं आकाश मे चमकते तारो को देखती हूँ तो मेरी पलको मे नए-नए नाना प्रकार के भाव घिर आते हैं मानो तारो पर स कूद कर मेरी पलको मे समा जाते हो। और फिर मैं सो नही पाती। कभी

किसी नए भाव के उठने पर मेरी आँखो मे आंसू भर आते हैं और इस प्रकार ये भाव मुझसे अपनी शाश्वत आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं। अर्थात् ये भाव मेरे चिर-सहचर बन जाते है। ये भाव मेरे तन, मन और प्राण मे गुदगुदी सी उत्पन्न कर मुझे पुलकित कर देते हैं। और तब मेरी यह मुस्कान रुकनही पाती। मैं बरबस मुस्करा उठती हूँ।

कभी उडते पत्तों ... यह मुसकान।

भावार्थ—जब तेज हवा चलती है और उसमे सूखे पत्ते उडने लगते हैं तो उन्हें देख कर मुझे ऐसा लगता है मानो मेरी सुकुमार कल्पनाएँ मुझसे मिलने चली आ रही हो। कभी उमडती लहरो को देख ऐसा लगता है मानो कोई लहरो रूपी हाथ बढा कर मुझे उस पार बुला रहा हो।

इन पक्तियो का दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—हवा मे उडते पत्तो को देख मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरी कल्पना का सुकुमार प्रियतम मुझसे मिलने चला आ रहा हो। लहरो को देख मुझे ऐसा लगता है मानो कोई (कल्पना का प्रियतम) मुझ हाथ बढा कर उस पार बुला रहा हो।

मुग्धा नायिका प्राय अपने प्रियतम की कल्पना मे खोई रहती है। उसके अधिकाश भाव उसके प्रियतम से ही सम्बन्धित रहते हैं। इसीलिए प्रकृति की विभिन्न क्रियाओ मे उसे अपने प्रियतम का ही रूप दिखाई पडता है।

ऐसी स्थिति मे मुझे ससार का ज्ञान नही रहता। मैं बुरी तरह से अपनी कल्पना मे खो जाती हूँ और फिर अनजाने ही हँस पडती हूँ। हे सखि! मैं उसी समय अनायास हँस उठती हूँ जब मेरी यह मुस्कान मेरे द्वारा रोकने का प्रयत्न करने पर भी नही रुक पाती।

(१) यह छोटी सी कविता अपने भाव-सौन्दर्य के कारण एक अद्‌भुत कला कृति बन गई है। जहाँ कवि पत पर आध्यात्मिकता का भूत सवार नही हो पाता वहाँ कवि अनायास ही एक सुदर, सरस कविताओ का सृजन कर जाता है। मुसकान के समान बरबस ही उसकी लेखनी से ऐसी सुन्दर कविताएँ फूट पडती हैं।

(२) इसमें मुग्धा नायिका के निष्पाप, सरल हृदय मे उठने वाले विभिन्न

प्रकार के कोमल, प्रणय-सकुल, निष्पाप भावो से पूर्ण मानसिक दशा का बहुत सरस चित्रण हुआ है।

(३) भाषा भी मुग्धा की निर्मल मुस्कान के समान निर्मल, सरल और सरस है।

१०. मौन-निमन्त्रण

यह कविता पत की रहस्यवादी कविता मानी जा सकती है जिसकी कला छायावादी है और ध्वनि रहस्यवादी। उस अज्ञात असीम सत्ता के प्रति जिज्ञासा और कौतूहल की भावना काव्य मे रहस्यवाद की अवतारणा के प्रधान कारण हैं। इसे रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना जाता है। कवि पंत प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। कवि को प्रकृति का कण-कण मौन रूप से निमत्रण सा देता प्रतीत होता है। उसे प्रकृति के रूप में विराट रहस्यमयी सत्ता का आभास होता है। वह उसका रहस्य जानने का प्रयत्न करता है। इस कविता मे कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूति के साथ अपनी इसी जिज्ञासा को वाणी देता है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना मे ... मुझको मौन।

शब्दार्थ—स्तब्ध ज्योत्सना=शान्त, नीरव चांदनी। अजान=अनजाने, अनोखे।

भावार्थ—जब रात्रि के समय चाँदनी मे सारा जगत किसी अनजान वस्तु को देख चकित बने नादान शिशु के समान आश्चर्य मे डूबा शान्त पड़ा रहता है और जब सारा विश्व निद्रा मे डूबा अनोखे स्वप्न देखता रहता है उस समय नक्षत्रो द्वारा न जाने कौन मुझे मौन निमत्रण देता है। मौन रूप से न जाने कौन मुझे अपने पास बुलाता है।

(१) 'मौन निमत्रण'—मे विरोध चमत्मकार है।

सघन मेघों का ... भेजता मौन।

शब्दार्थ—भीमाकाश=भयकर आकाश। तमसाकार=तमस+आकार=अन्धकार से भरा। पावस=वर्षा ऋतु। तपक=चमक कर। तड़ित्=बिजली। इगित=इशारा, सकेत। वसुधा=धरती। मधुमास=वसन्त ऋतु। विधुर=वियोगी। सोच्छ्वास=उच्छ्वास के साथ। मिस=बहाने।

भावार्थ—जब सघन मेघो से भरा भयकर आकाश सारे जगत को अन्धकार से भर कर गरजता है अर्थात् आकाश मे जब सघन काली घटायें गरजती है, जब पवन तूफान का रूप धारण कर तीव्र गति से प्रवाहित होने लगता है, जब मूसलधार वर्षा होने लगती है तब न जाने कौन विजली की चमक द्वारा मुझे मौन रूप से अपने पास बुलाता है।

जब बसन्त धरती को यौवन के भार से पूर्ण देख भौरो की गु जार के रूप मे गु जन करने लगता है अर्थात् जब वसन्त मे धरती पूर्ण यौवनवती सुन्दरी के समान सुन्दर बन मुखरित हो उठती है और जब वियोगियो के हृदय मे वसन्त के उद्दीप्तकारी प्रभाव के कारण उत्पन्न कोमल भावनाओं के समान चतुर्दिक कोमल पुष्प अपनी सुगन्धित विकीर्ण करते हुए खिल उठते है तब न जाने कौन उन पुष्पो की सुगन्धि के बहाने मेरे पास अपना मूक सन्देश भेजता है, मुझे अपने पास बुलाता है।

(१) प्रकृति का भयकर रूप भी कवि को मौन निमत्रण सा देता प्रतीत होता है।

(२) उपमा और अपन्हुति अलकार है।

(३) वसुधा और वसन्त का मानवीकरण है।

क्षुब्ध जल-शिखरों को . **मेरे मौन !**

शब्दार्थ—क्षुब्ध=भयकर लहरो से भरा। जल-शिखर=जल की ऊँची-ऊँची लहरें। वात=वात्याचक्र। फेनाकार=झागो से भर कर। बिथुरा=बिखरा। भोर=प्रभात। बोर=डुबा। विहग कुल=पक्षियो के समूह। अलस=अलसाए। पलक दल=पलकें।

भावार्थ—जब पवन समुद्र मे उठती भयकर पर्वतों के समान ऊँची लहरों को मथ कर उन्हे झागो से भर देता है और चारो ओर असख्य अस्थिर बुदबुदो का ससार सा बसाकर उन्हे अज्ञात रूप से नष्ट कर देता है अर्थात् बुदबुदो को बनाता-बिगाडता रहता है तब उन लहरो मे से हाथ उठा कर न जाने कौन मुझे मौन रूप से अपने पास बुलाता है।

जब प्रभात सारे ससार को स्वर्ण की सी सुनहली आभा, सुख, सौन्दर्य और सुगन्धि मे डुबा देता है अर्थात् जब प्रभात होने पर सारे ससार मे सुनहली

आभा, सुख की भावना, सौन्दर्य और सुगन्धि छा जाती है और पक्षियो का सुन्दर सगीत (कलरव) पृथ्वी से लेकर आकाश तक छा जाता है तब न जाने कौन निद्रा से अलसाए मेरे पलको को चुपचाप खोल देता है। मेरी निद्रा भग कर देता है।

(१) यहाँ प्रकृति के भयकर और कोमल दोनो रूप कवि को मौन निमन्त्रण दे रहे हैं।

तुमुल तम मे .. .. दृग मौन !

शब्दार्थ—तुमुल=सघन। तम=अन्धकार। भीरु=कायर, भयभीत। तन्द्रा=नीद की खुमारी। खद्योतो मे=जुगुनुओ से। कनक-छाया=प्रभात कालीन सुनहली आभा। सकाल=प्रभात। बाल=बच्चे।

भावार्थ—जब सारा ससार एकाकार (एक ही आकार वाला) बन सघन अन्धकार मे ऊँघता रहता है और उस अन्धकार से त्रस्त हुए कायर झीगुरो की झनकार उस तन्द्रा को भङ्ग कर देती है अर्थात् ससार हल्का सा चैतन्य हो उठता है तब न जाने जुगुनुओ द्वारा मुझे चुपचाप माग दिखलाता चलता है।

जब प्रभात की सुनहली छाया में, उषा के सुनहले आकाश मे, कलियाँ अपने हृदय के द्वार खोल अर्थात् खिल कर चारो ओर सुगन्धि बिखरा देती है और उस सुगन्धि से व्याकुल हो भौंरो के बच्चे अर्थात् नन्हें-नन्हे से भौंरे चारो ओर गुजार करने लगते हैं तब न जाने कौन ओस के रूप में ढुलक कर मौन रूप से मेरे नेत्रो को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

विछा कार्यों का . तुम हो कौन !

शब्दार्थ—विछा=समाप्त कर। सुवर्ण अवसान=सुनहला अन्त। श्रमित=थके हुए। जुडाती=शीतल करती। छाया-जग=स्वप्न लोक। छवि-मान=सुन्दर। सुझाते=बताते, दिखाते। छिद्रो=रोमो। सहचर=साथी।

भावार्थ—जब सन्ध्या की सुनहली आभा दिवस का अन्त कर देती है अर्थात् दिवस समाप्त हो रात्रि आ जाती है और मैं अपने दिन भर के भारी कार्यों को समाप्त कर बुरी तरह मे थक कर अपनी सूनी सेज पर लेट अपने

व्याकुल प्राणो को शीतल करती हूँ तब न जाने कौन मुझे चुपचाप छाया के समान अस्पष्ट स्वप्नो के ससार मे घुमाने ले जाता है। अर्थात् मैं स्वप्न देखती रहती हूँ।

हे अमित सौन्दर्य शाली ! न जाने तुम कौन हो जो मुझे अबोध और अज्ञान जान मेरे पथ को दिखाते रहते हो, मेरा मार्ग-प्रदर्शन करते रहते हो और मेरे रोम-रोम मे सगीत फूँक देते हो। अर्थात् मेरा रोम-रोम सगीत के पुलक से भर देते हो। हे मेरे दुख-सुख के मौन सहचर ! मैं यह नही कह सकती कि तुम कौन हो !

(१) कवि कोमल अनुभूतियो का चितेरा है इसलिए उसने स्वय को नारी माना है। 'वीणा' और 'ग्रन्थि' के अनेक गीतो मे भी कवि ने स्वय को बालिका और नारी के रूप मे प्रस्तुत किया है।

(२) इस गीत मे प्रकृति के कोमल-रम्य एव भयङ्कर दोनो ही रूप कवि को आकर्षित करते है। दोनो ही रूपो मे वह उस असीम, अज्ञात, विराट सत्ता का आभास पाता है।

(३) अनुभूति की सघनता सक्षिप्त, सशक्त एव सरल भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है।

११ अनित्य जग

इस कविता मे 'निष्ठुर परिवतन' कविता के ही भाव दूसरे रूप मे अभिव्यक्त हुए है। कवि इस जग-जीवन को नाशवान मान उसके नाना करुण चित्र प्रस्तुत करता है।

(१)

आज तो सौरभ   फिर हाहाकार !

शब्दार्थ—मधुमास=वसन्त ऋतु । सूनी सॉस=गहरी आह । अकिंचनता=दरिद्रता। पावस नद=वर्षा ऋतु की उमडती नदी । उद्गार=गर्जन। कराल=भयकर। ज्वाल=ज्वाला। अखिल=पूर्ण। कचो=केशो। व्याल=सर्प।

भावार्थ—कवि ऋतुओ, लता-वृक्षो, नदियो एव मनुष्यो मे परिवर्तन द्वारा उत्पन्न किये गये परस्पर-विरोधी विभिन्न रूपो का वर्णन कर रहा है—

वसन्त ऋतु में चारों ओर सुगन्धि का साम्राज्य छाया रहता था। किन्तु शिशिर ऋतु आने पर वसन्त की वह सारी शोभा, सुगन्धि नष्ट हो जाती है और सूखी, तीखी हवा चलने लगती है जो ऐसी प्रतीत होती है मानो वसन्त ऋतु अपने विगत वैभव को याद कर गहरी आहे भर रहा हो।

वसन्त ऋतु मे वृक्ष की वही शाखा जो पत्र-पुष्पो के भार से उसी प्रकार झुकी रहती थी जैसे यौवन आने पर नारी अपने अङ्गो के विकास के भार से झुक जाती है और जिस पर मधुलोभी भ्रमरों के झुण्ड निरन्तर गूँजते हुए मँडराते रहते थे, वही शाखा तत्काल ही अर्थात् थोडे समय में ही अपने सारे वैभव को खो दरिद्र बन जाती है। उसके पत्ते और फूल सूख कर झड जाते हैं और वह नगी-सूखी रह जाती है। अपने इस परिवर्तित रूप को देख वह कॉप उठती है और सोचने लगती है कि यह जीवन भार है। (वृद्धावस्था मे मनुष्य भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सौन्दर्य खो, जीवन को भार समझने लगता है।)

वर्षा ऋतु मे जो नारी जल से परिपूर्ण हो गर्जन करती हुई बहती रहती है वही ग्रीष्म ऋतु मे सूख कर निश्शब्द रूप से बहने वाली जल की एक क्षीण रेखा सी रह जाती है। परिवर्तनशील समय ही उसके इस परिवर्तित रूप मे अपने भयकर चिन्ह छोड जाता है। प्रात काल उषा के सौन्दर्य से मण्डित जो ससार सोने का सा प्रतीत होता है वही सन्ध्या काल में अग्नि मे जलता हुआ सा दिखाई पडता है। (यहाँ उषा की लालिमा जीवन के विकास की तथा सध्या की लालिमा जीवन के अवसान का प्रतीक है जिसके उपरान्त चारो ओर अन्धकार छा जाता है।)

युवावस्था मे मनुष्य के शरीर मे यौवन का पूर्ण निखार उभर आता है। परन्तु वृद्धावस्था मे वही यौवन का सुगठित-आकर्षक शरीर हिलती हुई सूखी हड्डियो का ककाल मात्र रह जाता है। यौवनकालीन सर्प के समान चिकने, काले केश सर्प की केंचुली, कॉस के फूल तथा सेवार (पानी में उगने वाली एक घास) के समान सफेद, रूखे और उलझे हुए बन जाते हैं।

कवि कहता है कि इस ससार मे चार दिन अर्थात् थोडे समय तक सभी सुख-सौन्दर्य के स्वामी बने रहते हैं और फिर सब कुछ नष्ट होकर जीवन मे भयकर हाहाकार छा जाता है। अर्थात् चार दिन चाँदनी रह कर फिर अँधेरी रात घिर आती है।

(१) 'प्रात का—ज्वाल'—जलते समय अग्नि की लपटें उठती हैं और फिर जले हुए स्थान पर कालिमा पुत जाती है। सन्ध्या के उपरान्त आने वाली काली रात इसी की प्रतीक है।

(२)

आज बचपन का • अधरों को भूल !

शब्दार्थ—गात=शरीर। जरा=वृद्धावस्था।

भावार्थ—आज बचपन का जो शरीर कोमल पत्ते के समान स्निग्ध, लालिमा युक्त और कोमल दिखाई पडता है वही वृद्धावस्था में सूखे पत्ते के समान पीला, खुरदरा और नीरस हो जाता है। जीवन में यौवन काल मे कुछ समय तक तो सुख देने वाली चाँदनी रातो की बहार रहती है और फिर वृद्धावस्था आने पर एक भयङ्कर, अज्ञात अन्धकार सा छा जाता है।

शिशिर ऋतु मे जिस प्रकार पाला पड कर पुष्पो को जला डालता है उसी प्रकार वृद्धावस्था की निराशा, कष्ट और वेदनाओ के कारण आँखो से बहे आँसू फूल के समान कोमल गालो को झुलसा कर उन्हे कठोर झुर्रियो से भर देते हैं। यौवन काल में मनुष्य के जो अधर प्रणय में अपनी प्रिया के अधरों का चुम्बन करने के लिये अधीर बने रहते थे वही अब वृद्धावस्था मे प्रिया के उन अधरों को भूल जाते हैं। उनके हृदय मे प्रिया के अधर-चुम्बन की कामना तक नहीं जाग्रत होती।

मृदुल होठों का • • काँटों से हाथ !

शब्दार्थ—हिमजल=ओस। शरदाकाश=शरद ऋतु का निर्मल आकाश। अधर-मधुर सयोग=अधरो का मधुर मिलन, चुम्बन। विधुर=एकाकी।

भावार्थ—युवावस्था मे अधरो पर ओस के समान निर्मल, शीतल हास छाया रहता था परन्तु वृद्धावस्था के कष्टो से उत्पन्न वेदना और निराशा को

गहरी सांसो के कारण अब वह हास गायब हो गया है। युवावस्था मे शरद-ऋतु के निमल आकाश के समान जो भौंहे सरल और प्रसन्न रहती थी वही अब वृद्धावस्था आने पर चिन्ताओ के भार से घिर उठी हैं। अर्थात् गहन चिन्ताओ के कारण अब भौंहों पर बल पडे रहते है।

वियोग के समान एकाकी बना देने वाली यह वृद्धावस्था गहरी आहो द्वारा यौवन के अधरो के मधुर सयोगो—चुम्बनो को दूर कर देता है। अर्थात् अब वे मधुर चुम्बन नही मिल पाते। इस जगत में मधुर मिलन के क्षण केवल दो-चार ही होते हैं परन्तु विरह असख्य कल्पो के समान लम्बा होता है। अर्थात् सयोग के दिवस बीतते ज्ञात नही होते परन्तु वियोग के दिवस काटे से नही कटते। यहाँ युवावस्था सयोग की तथा वृद्धावस्था वियोग की प्रतीक है।

कवि कहता है कि युवावस्था के प्रेमी-प्रेमिका अब वृद्धावस्था मे शरीर और मन के अशक्त हो जाने के कारण अपने चारो नेत्र खोले एक दूसरे की ओर देख-देखकर निरुपाय हो आठ-आठ आँसू रोते रहते है। अब वे विविध प्रकार की काम-क्रीडायें करने मे अपने को अशक्त या दुखी हो रोते रहते हैं। युवावस्था मे आलिंगन के समय उनके शरीर रोमाचित हो उठते थे। अब वृद्धावस्था मे उन्ही रोमाचक आलिंगनो की स्मृति उनके हृदय में कांटो के समान कसक उठती है।

(१) यहाँ कवि ने अनेक मुहावरो का बडा सफल प्रयोग किया है जैसे—चार दिन की चाँदनी, फिर अन्धेरी रात, आठ आँसू रोना, कांटो के समान कसक उठना।

(३)

किसी को सोने . . . चुपचाप बयार।

शब्दार्थ—विपुल = असख्य। विभव = वैभव, समृद्धि। विद्युत-ज्वाल = बिजली की ज्वाला, चमक। डार = डाल, शाखा। बयार = पवन।

भावार्थ—यदि आज किसी को स्वर्ण के समान मनोहर कुछ सुख मिल भी गए तो वे काल द्वारा दिए गए ऋण के समान सकट उत्पन्न करने वाले होते हैं। जिस प्रकार साहूकार ऋण देकर कुछ समय पश्चात् उसे ब्याज

सहित वसूल कर व्यक्ति को निर्धन बना देता है उसी उसी प्रकार काल रूपी साहूकार उन ऋण रूपी सुखो को छीन कर बदले मे असख्य दुख दे देता है। इस काल को निर्लज्ज साहूकार के समान कोई भी अनुचित कार्य करने मे लज्जा नही आती। वह बडा निष्ठुर साहूकार है जो ऋण की वसूली मे किसी भी प्रकार की देर या सकोच नही करता।

असख्य मणि-रत्नो का सौन्दर्य इन्द्र धनुष के सतरगी सौन्दर्य के समान क्षण स्थायी रहता है। वैभव की चमक बिजली की चमक के समान क्षण भर के लिए सबकी आँखो मे चकचौंध उत्पन्न कर तत्काल ही छिप जाती है। जिस प्रकार मोतियो के समान सुन्दर चमकीली ओस की बूँदो से भरी डाल को पवन चुपचाप हिला कर उन बूँदो को नीचे गिरा डाल की शोभा को नष्ट कर देता है उसी प्रकार काल अज्ञात रूप से सासारिक वैभव को नष्ट कर देता है।

खोलता इधर जन्म उठते उडुगन।

शब्दार्थ—हुलास=उल्लास। अवसाद=दुख। अचिरता=अस्थिरता।

भावार्थ—ससार मे एक स्थान पर कही मानव जन्म लेकर अपने नेत्र खोलता है तो उसी समय कही दूसरे स्थान पर मृत्यु मानव के नेत्र बन्द कर देती है। जन्म और मरण की यह प्रक्रिया प्रतिक्षण होती रहती है।

जिस स्थान पर अभी उत्सव, हास और उल्लास की छटा छा रही थी वही तुरन्त दुख, अश्रु और गहरी साँसो का साम्राज्य छा जाता है। इस ससार की इस क्षणभगुरता को देख वायु मानो जोर-जोर से गहरी आहे भरने लगता है और नीला आकाश पत्ता पर चुपचाप ओस को बूँदो के रूप मे आँसू टपकाता रहता है। समुद्र का मन लहरो के रूप मे सिसक उठता है और तारे काँपने लगते हैं।

(१) कवि निराशावादी है। इसी कारण उसका ध्यान जीवन और जगत की क्षणभगुरता की ही ओर जाता है। उसने वसन्त और शिशिर, बचपन, यौवन और वृद्धावस्था वैभव की क्षणिकता के विभिन्न चित्र प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जीवन मे सुख की अपेक्षा दुख का ही प्राधान्य

रहता है। इसी भावना का अधिक उग्र रूप हमें कवि की 'निष्ठुर परिवर्तन' शीर्षक कविता मे मिलता है।

(२) अनुभूति की तीव्रता एव सवेदनशीलता ने इस कविता की प्रभाविष्णुता को बहुत बढा दिया है।

(३) सम्भवत इस कविता से चिर-कुमार कवि का प्रणय-वचित हृदय अपनी असह्य वेदना से व्याकुल हो चीत्कार कर उठा है।

१२. निष्ठुर परिवर्तन

(१)

अहे निष्ठुर .. .. उत्थान, पतन।

शब्दार्थ—विवर्तन=परिवर्तन। नयनोन्मीलन=नयन=उन्मीलन=नेत्रों का खोलना। निखिल=समस्त, सम्पूर्ण। ताण्डव नर्तन=शिव का प्रलय-कालीन ध्वसात्मक नृत्य।

भावार्थ—कवि परिवर्तन को निष्ठुर मान उसे सम्बोधन कर कहता है कि हे निष्ठुर परिवर्तन! तुम्हारा ही ध्वंसकारी ताडव नृत्य सम्पूर्ण विश्व की सुख शान्ति का विनाश कर ससार मे दुख और ध्वस की सृष्टि कर उसके सुन्दर-सुखद रूप को परिवर्तित कर देता है। अर्थात् जिस प्रकार शिव प्रलय से पूर्व ताडव नृत्य कर सम्पूर्ण विश्व का ध्वस कर देते हैं उसी प्रकार तुम अपनी क्रूर-कठोर क्रियाओ द्वारा सारे ससार का विनाश कर चारो ओर मृत्यु और ध्वस का साम्राज्य स्थापित कर देते हो। जब तुम शिव के भयकर तीसरे नेत्र के समान ससार की ओर दृष्टिपात करते हो तो चारो ओर ध्वस का साम्राज्य छा जाता है और जब अपने नेत्र बन्द किए शान्त पडे रहते हो तब ससार उन्नति करता रहता है। अर्थात् तुम्हारा नेत्र खोलना सृष्टि के विनाश का कारण बन जाता है, तुम ससार की दशा मे भयकर उथल-पुथल उत्पन्न कर देते हो और जब तक शान्त रहते हो तब तक ससार उन्नति-पथ पर अग्रसर होता रहता है।

(१) 'निष्ठुर परिवर्तन' मे विशेषण विपर्यय है।

(२) यहाँ परिवर्तन को शिव के तीसरे नेत्र के समान ध्वसकारी माना गया है। अत कवि परिवर्तन को शिव रूप मानता है।

अहे वासुकि सहस्रफन **दिङ्‌मण्डल।**

शब्दार्थ—लक्ष=लाखो। अलक्षित=अदृश्य, दिखाई न देने वाले। विक्षत=घायल। फेनोच्छ्‌वसित=झाग भरे। स्फोत=शक्तिशाली। घनाकार=बादलो के रूप में। गरल दन्त=जहर का दाँत, मृत्यु। कचुक=केंचुली, नवीन सृष्टि। विवर=बिल, सर्प की बाँबी। वक्र कुण्डल=दिशाओ का घेरा। दिङ्‌मङ्गल=सम्पूर्ण दिशाएँ।

भावार्थ—यहाँ कवि परिवर्तन को नागराज वासुकि के समान घोषित कर उसे सम्बोधन कर कहता है कि हे सहस्र फनो वाले नागराज वासुकि के समान भयकर परिवर्तन! तुम्हारे लाखो अदृश्य चरण निरन्तर ससार के घायल वक्षस्थल पर अपने चरण-चिन्ह छोडते जा रहे हैं। अर्थात् सर्प जिस मार्ग से गुजर जाता है वहाँ उसके चलने की एक रेखा बनती चली जाती है। (कहा जाता है कि सर्प के असख्य पैर होते हैं परन्तु वे दिखाई नही देते।) सर्प के ही समान परिवर्तन प्राचीन ध्वसावशेषो के रूप मे ससार में अपनी गति के चिन्ह छोड जाता है। प्राचीन सभ्यताओ के प्रतीक प्राचीन नगरो के पृथ्वी के नीचे से निकले खडहर इसके प्रमाण हैं। उन्हे देख कर यह सिद्ध हो जाता है कि ससार में अनादि काल से परिवर्तन होता चला आया है। यहाँ इन ध्वसावशेषो को घावो के समान बताया गया है। घाव सूख जाने पर उसका चिन्ह शेष रह जाता है। परिवतन के कारण दैवी—भूकम्प, बाढ, प्रलय, तूफान आदि तथा मानवीय—राज्य क्रान्ति आदि दोनो प्रकार के होते हैं। इटली के पोम्पियाई जैसे नगर दैवी परिवर्तन के प्रतीक हैं तथा मोहनजोदडो, हडप्पा तथा नील घाटी की खुदाई में निकले प्राचीन नगरो के खडहर मानवीय परिवर्तनो के। ये प्राचीन खडहर ही पृथ्वी के वृक्षस्थल पर परिवर्तन द्वारा किए गए घावो के स्मृति-चिन्ह हैं।

प्रलय के समय जिस प्रकार नागराज वासुकि अपने सैकडो फनो के विष भरे झागो के असख्य शक्तिशालो अम्बार छोडता है जो सारे विश्व मे बादलो के समान व्याप्त हो भयकर उथल-पुथल मचा देते हैं। प्रलय कालोन सघन काली

घटाएं सारे आकाश में व्याप्त हो उसे घुमाती सी प्रतीत होती हैं। अर्थात् बादलो की भाग-दौड से सारा आकाश चक्र के समान घूमता सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार परिवर्तन अपनी क्रियाओ द्वारा सारे विश्व को आतंकित कर उसमे एक भयकर उथल-पुथल मचा देता है। भाव यह है कि समय-चक्र मे पड संसार में भयकर परिवर्तन होते रहते हैं।

हे परिवर्तन ! मृत्यु ही तुम्हारा विष का दाँत है। अर्थात् जिस प्रकार सर्प अपना जहरीला दाँत गडा कर जीव को नष्ट कर डालता है। उसी प्रकार मृत्यु सबको समाप्त कर देती है। सर्प कुछ समय तक केंचुली धारण कर निष्क्रिय पडा रहता है और फिर उसे उतार कर एक प्रकार से नवीन जीवन धारण कर पुन. सक्रिय हो उठता है। उसी प्रकार कल्प समाप्त होने पर परिवर्तन रूपी सर्प अपनी निष्क्रियता रूपी केंचुली को त्याग पुन सक्रिय हो उठता है और प्रलय उपस्थित कर प्राचीन का ध्वस कर भावी नव जीवन की सूचना देता है। प्रलय के उपरान्त नव जीवन का प्रारम्भ होता है। अत यहाँ परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप मे प्राचीन के ध्वस एवं भावी नवीन का प्रणेता माना गया है।

यह सारा ससार इस परिवर्तन रूपी सर्प के रहने का बिल (वाम्बी) है। अर्थात् सारे ससार मे इसका निवास है और सम्पूर्ण दिशाएं ही इसकी गोलाकार कुण्डली है। भाव यह है कि परिवर्तन की स्थिति सम्पूर्ण दिशाओ के घेरे में आबद्ध इस सम्पूर्ण विश्व मे है अर्थात् सम्पूर्ण विश्व मे परिवर्तन होते रहते हैं।

(१) इस छन्द मे कवि ने वासुकि द्वारा परिवर्तन का सांगरूपक प्रस्तुत किया है। यहाँ नागराज वासुकि ही परिवर्तन है।

(२) 'लक्ष' 'निरन्तर'—मे विरोधाभास है।

(३) 'विक्षत'—शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि ससार मे परिवर्तन अनादि काल से होते चले आए हैं।

(४) 'घनाकार' मे श्लेष अलकार है।

(५) सघन शब्द योजना द्वारा उत्पन्न भाषा की प्रबल शक्ति के दर्शन 'शत-शत' भयकर'—जैसी पक्तियो मे होते हैं। ऐसी शब्द योजना

र्वाणत दृश्य या भाव का साकार चित्र प्रस्तुत कर देती है। प्रस्तुत छन्द भी इसमे पूर्ण सहायक है।

(२)

श्रहे दुर्जेय .. दलित धरातल।

शब्दार्थ—दुर्जेय=श्रजय। विश्वजित्=विश्व विजयी। तल=नीचे। माथ=माथा, मस्तक। नृशस=क्रूर, कठार। श्रनियन्त्रित=उच्छृखल। ससृति=ससार। मर्दित=कुचलना। श्राधि=शारीरिक पीडा। व्याधि=मानसिक पोडा। वात=तूफान। वह्नि=श्रग्नि।

भावार्थ—हे परिवर्तन! तुम श्रजेय हो। तुमने सम्पूर्ण विश्व को जान लिया है। सैकडो श्रेष्ठ देवता एव राजा तुम्हारे इन्द्रासन के नाचे श्रपने मस्तक झुकाते हैं। श्रर्थात् परिवतन के प्रभाव मे कोई भी श्रछूता नही रहता। निरन्तर गतिशील तुम्हारे रथ के पहियो के साथ सैकडो श्रनाथ लोगो के भाग्य निरन्तर घूमते रहते है। श्रर्थात् परिवर्तन रूपी काल-चक्र श्रपनी गति के साथ लोगो के भाग्य को बनाता बिगाडता रहता है।

हे निष्ठुर परिवर्तन! तुम श्रत्याचारी क्रूर राजा के समान उच्छृखल बन ससार पर श्राक्रमण कर सारे विश्व को सताते हो श्रौर श्रपने पैरो से कुचलते हो। तुम नगरो पर श्राक्रमण कर उन्हें खडहर बना देते हो, विशाल भवनो को नष्ट-भ्रष्ट कर धराशायी कर देते हो। मूर्तियो को टुकडे-टुकडे कर डालते हो। तुम युग-युगो से मानव द्वारा सचित किए गए वैभव, कला श्रौर कौशल को नष्ट कर देते हो। भाव यह है कि परिवर्तन श्रपने एक इशारे से मानव द्वारा युग-युगो से सचित एव निर्मित नगरो, वैभव एव कला-कौशल की सम्पूर्ण उपलब्धियो को क्षण मात्र मे नष्ट कर डालता है। भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट श्रादि के कारण ध्वस्त हुए प्राचीन नगरो के खडहर इसके प्रमाण हैं।

हे निष्ठुर परिवर्तन! शारीरिक पीडा, मानसिक श्रशान्ति, श्रति वृष्टि, तूफान, उत्पात, श्रमगल, श्रग्नि, बाढ, भूकम्प श्रादि तुम्हारे विशाल सैन्य दल हैं तुम इन्ही की सहायता से विश्व के नाना प्रकार के उत्पात मचाया करते हो। श्रर्थात् ये ही परिवर्तन के प्रधान कारण है। हे निरकुश श्रर्थात् स्वेच्छा-

चारी परिवर्तन ! तुम्हारे इन्ही सैन्य-दलो के पदाघात से समस्त विश्व डगमगा उठता है और कांपने लगता है। तुम विश्व को अपने पैरो के नीचे रौद डालते हो।

(१) इस छन्द में सागरूपक है। परिवर्तन को क्रूर, अत्याचारी राजा के समान बताया गया है।

(२) इस छद के अन्तिम भाग की तुलना भूषण की निम्नलिखित पक्तियो से द्रष्टव्य है—

"तारा सो तरनि धूरि-धारा मे लगत जिमि।
थारा पर पारा पारावार यो हलत है॥"

(३)

जगत का अविरत · · · समाधि स्थल।

शब्दार्थ—अविरत=निरन्तर होने वाला। हृत्कम्पन=हृदय की धडकन। सूचन=सूचना देने वाला। निखिल=अखिल, सम्पूर्ण। विकच=अधखिला। शतदल=कमल। कृमि=कीडा। स्वेद=पसीना। सिंचित=सींचा हुआ। शस्य=खेती। वर्षोत्पल=वर्षा+उपल=ओलो की वर्षा। नैश=रात्रि।

भावार्थ—हे निष्ठुर परिवर्तन ! ससार के हृदय मे निरन्तर जो धडकन होती रहती है वह तुम्हारे ही भय की सूचक है। अर्थात् तुम्हारे भय के कारण ससार सदैव व्याकुल रहता है। विश्व के समस्त प्राणियो की पलको का मौन पतन तुम्हारे ही निमन्त्रण का परिणाम है। जिस प्रकार हमे विवश होकर, अपनी इच्छा के विपरीत किसी का निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाना पडता है और हम उस समय चुपचाप आँखें नीची कर उस निमन्त्रण को स्वीकार कर लेते हैं उसी प्रकार जब हमे तुम्हारा निमन्त्रण—मृत्यु का निमन्त्रण प्राप्त होता है, हमे विवश होकर उसे स्वीकार करना ही पडता है और हम अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। (मृत्यु के समय आँखें बद हो जाती है।) यहाँ "पलको का मौन पतन" मनुष्य की विवशता का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर रहा है।

हे परिवर्तन ! तुम अर्द्ध तृप्त वासनाओ से भरे ससार रूपी कमल के भीतर क्रूर काल रूपी कीडे के समान घुस कर उसे धीरे-धीरे कुतर-कुतर कर

नष्ट करते रहते हो। अर्थात् समार को इच्छाएं तुम्हारे कारण कभी भी पूरी नही हो पाती। तुम अपने आघातो से उन्हे बार-बार नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हो। (यहाँ 'विकच' शब्द अधूरी इच्छाओ के लिये आया है।) हे परिवर्तन। किसानो द्वारा अपने पसोने से सीची हुई लहलहाती, हरी-भरी, पकी खेती को ओलो की वर्षा कर तहस-नहस कर डालते हो। और किसानो को उनका वांछित फल—अनाज नही मिलने देते। भाव यह है कि परिवर्तन अपनी क्रूरता द्वारा मानव की इच्छाओ को पूरी नही होने देता तथा उसके सारे परिश्रम एव प्रयत्न पर पानी फेर देता है।

हे निष्ठुर परिवर्तन। विश्व की सम्पूर्ण दिशाएं तुम्हारे इसी ध्वसकारी निनाद से निरन्तर गूंजती रहती हैं। अर्थात् तुम निरन्तर अपनी ध्वस-लीला मे ही व्यस्त रहते हो। यह सम्पूर्ण विश्व रात्रि के आकाश के समान तुम्हारा ही समाधि स्थल है। जिस प्रकार रात्रि का आकाश काला और निश्शब्द होता है, तुमने इस विश्व को भी उसी के समान अन्धकारमय और जीवनहीन बना दिया है। अर्थात् समार मे समाधि स्थल की सी नीरवता और गतिहीनता छा जाती है।

(१) रात्रि निराशा और अवसाद की प्रतीक है। परिवर्तन भी निराशा और अवसाद का प्रतीक है। वह जगत को रात्रि के आकाश के समान निराशा और अवसाद से भर देता है।

(२) 'सतत ध्वनि'—अनहद नाद की ओर सकेत करता है।

(३) 'विकच शतदल'—अतृप्त, अधूरी इच्छाओ का प्रतीक है।

(४) 'जगत आमन्त्रण'—में हेतूत्प्रेक्षा अलकार है।

(५) पूरे छन्द मे सागरूपक है तथा अन्तिम दो पंक्तियो में उपमालकार है।

(४)

काल का अकरुण ... गुरु गर्जन।

शब्दार्थ—अकरुण=कठोर। परिहास=हँसी-मजाक। प्रलयकर=विनाशकारी। समर=युद्ध। निसर्ग=निरन्तर। निर्भर=पूर्ण रूप से। अभ्र-

ध्वज सौध=गगनचुम्बी अट्टालिकाएं। शृगवर=ऊंची पर्वत चोटियां। भूति=वैभव। मेघाडम्बर=मेघों की सघन घटाएं। दिग्भू=आकाश और पृथ्वी। पक्षि-पोतों से=पक्षियों के बच्चों के समान। उडगन=तारागण। अम्बुधि=समुद्र। भुजगम=सर्प। इंगित=इशारा, संकेत। दिक् पिंजर= दिशा रूपी पिंजडा। बद्ध=बंधा हुआ। गजाधिप=गजराज। विनतानन= नीचा मुख किए। वाताहत=वायु के आघात से व्याकुल। आर्त=दुखी। गुरु गर्जन=भयंकर चिंघाड।

भावार्थ—हे निष्ठुर परिवर्तन! काल (यमराज) का कठोर भृकुटि विलास अर्थात् यमराज का क्रोध—जिसका परिणाम मृत्यु होता है—तुम्हारे द्वारा मनुष्यों का उडाया गया मजाक है। भाव यह है कि तुम मृत्यु द्वारा मानव की सम्पूर्ण आकाक्षाओं और योजनाओं को धूल में मिला कर अपने सम्मुख उसकी निर्बलता और असहायता सिद्ध कर उसका मजाक उडाते हो। मानव का शक्तिशाली होने का गर्व नष्ट कर देते हो। ससार की दुखभरी कहानी तुम्हारा अपना इतिहास है। अर्थात् ससार को जितने भी दुख उठाने पडे हैं वह तुम्हारे ही कारण उठाने पडे हैं। इसलिए ससार के कष्टों का इतिहास तुम्हारी कठोर करतूतों का इतिहास है।

तुम्हारा एक कठोर कटाक्ष अर्थात् तुम्हारी क्रोधभरी एक दृष्टि सारे ससार में प्रलय का सा विनाशकारी दृश्य उपस्थित कर देती है और विश्व में सर्वत्र एक भयंकर ध्वंसकारी युद्ध छिड जाता है। तुम्हारे एक इशारे में गगनचुम्बी अट्टालिकाएं और विशाल पर्वतों की ऊंची चोटियां जमीन चूमने लगती हैं, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। विशाल साम्राज्य, जो रग-बिरंगे मेघों के समान क्षण स्थायी वैभव के स्वामी होते हैं, तहस-नहस हो जाते हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार प्रभात या सन्ध्याकालीन रग-बिरंगे मेघ अल्पकाल में ही अपने वर्ण-वैभव को खो विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार वैभवशाली विशाल साम्राज्य तुम्हारे एक इशारे पर ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। उनका सारा वैभव समाप्त हो जाता है।

हे निष्ठुर परिवर्तन! तुम्हारे एक बार ही रोमांचित अर्थात् उत्तेजित हो उठने से आकाश और पृथ्वी भय से कांपने लगते हैं और आकाश में स्थित तारे

उसी प्रकार नीचे टूट-टूट कर गिरने लगते हैं जिस प्रकार पक्षिया के भयभीत बच्चे अपने घोसलो मे से नीचे टपक पडते है। विक्षुब्ध सागर नागराज के समान अपनी झागभरी सहस्रो लहरो रूपी फनो को ऊपर उठा-उठाकर तुम्हारे एक इशारे पर, तुम्हारे विनाश के सगीत पर मुग्ध हुए सर्प के समान नृत्य करने लगता है। अर्थात् समुद्र मे झागभरी विशाल लहरें उठने लगती हैं। दिशाओ रूपी पिंजडे मे आबद्ध गगन रूपी गजराज वायु के प्रचड झोको से प्रताडित हो भयकर रूप से करुण क्रन्दन करने लगता है। अर्थात् आकाश मे तूफान का भयकर शोर व्याप्त हो जाता है। यहाँ दिशाएँ पिंजडा, आकाश उनके घेरे में आवद्ध गजराज तथा तूफान के थपेडे अकुश का प्रहार है।

(१) परिवर्तन का भयकर ध्वसकारी चित्र ओजमयी सशक्त भाषा, उपयुक्त शब्द-योजना एव सांगरूपक द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

(२) प्रकृति का कठोर रूप दर्शनीय है।

(५)

जगत की शत ... सुख शान्ति।

शब्दार्थ—बधिर = वहरा। स्रोत = सोता, झरना। आक्रान्ति = अशान्ति।

भावार्थ—हे निष्ठुर परिवर्तन ! (तुम्हारी इन ध्वसकारी लीलाओ से आक्रान्त) ससार की सहस्रो कातर चीत्कारें तुम्हारे कानो से जाकर टकराती हैं परन्तु क्योकि तुम वहरे हो, इसलिए इन करुण पुकारो को नही सुन पाते। भाव यह है कि परिवर्तन इतना निष्ठुर होता है कि उस पर ससार के प्राणियो की करुण चीत्कारो का कोई प्रभाव नही पडता, उन्हें सुन कर वह विचलित नही होता। सारा ससार दुख से व्याकुल हो अपने आँसुओ रूपी झरनो की अगणित धाराओ से तुम्हारे पत्थर के समान कठोर हृदय को निरन्तर सीचती रहती हैं। परन्तु क्योकि तुम पत्थर-हृदय हो इसलिए इन आँसुओ का तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नही पडता।

क्षण-क्षण मे पीडित ससार के हृदय से सौ-सौ निश्वासें उठ-उठ कर आकाश मे छा जाती हैं। अर्थात् मानव दुख से ग्रस्त हो निरन्तर गहरी निश्वासें भरते रहते हैं। चारो दिशाओ में अशान्ति गरज-गरज कर सुख और शान्ति

को नष्ट करती रहती है। (परन्तु तुम्हारे ऊपर इस सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(६)

हाय री दुर्बल . .. माया जाल !

शब्दार्थ—भ्रान्ति=भ्रम । विराम=विश्राम । हर्म्य=हरम, महल। उलूको=उल्लुओ। मारुत=पवन। माया-जाल=खेल, जादू।

भावार्थ—इस छन्द मे कवि यह दिखाना चाहता है कि परिवर्तन के इस ध्वसकारी रूप को देख कर भी मानव को ज्ञान नही होता और वह निरन्तर अपनी कामनाओ की पूर्ति के प्रयत्न में लगा रहता है। मानव के इसी प्रयत्न को कवि मानव की 'दुर्बल भ्रान्ति' कहता है।

कवि कहता है कि मानव का यह भ्रम कितना दुर्बल है कि परिवर्तन के जाल में पड़े हुए इस नाशवान ससार मे वह शान्ति की खोज करता रहता है। परन्तु उसे यह शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। इस सृष्टि का वास्तविक उद्देश्य ही सदैव अशान्ति है। यह ससार तो निरन्तर चलते रहने वाले जीवन-सग्राम का ही दूसरा नाम है। यहाँ विश्राम की कामना करना स्वप्न के समान व्यर्थ है। भाव यह है कि यह ससार अशान्ति का ही दूसरा रूप है इसलिए मानव को यहाँ शान्ति और विश्राम कभी भी प्राप्त नही हो सकता।

इस ससार मे एक सौ वर्ष तक नगर और उपवन वसते हैं और फिर सब कुछ नष्ट होकर उसी स्थान पर एक सौ वर्ष तक सुनसान जगल खड़े रहते हैं। अर्थात् कुछ समय तक सुख-समृद्धि रहती है और फिर सब कुछ नष्ट हो जाता है। यही तो इस नाशवान ससार का असली रूप है। पहले यहाँ निमारण होता है, फिर उसकी सब तरह से उन्नति की जाती है और अन्त मे सब कुछ नष्ट हो जाता है। उत्पत्ति, पोषण और विनाश—यही सृष्टि का असली रूप है। आज जहाँ गर्व से मस्तक ऊँचा किए असख्य राजमहल खड़े हैं, जिनमे रत्नो के दीप जला कर नित्य प्रति दीपावली सी मजाई जाती है, मत्रपाठ होते हैं, कल वही राजमहल (अपने सम्पूर्ण वैभव को खोकर) खंडहर बन उल्लुओ के निवास स्थान बन जाते हैं, उनमे उल्लू बोलने लगते हैं, झिल्लियो की झन-

कारें सुनाई देने लगती है। दिन और रात्रि के समय चक्र मे बधा हुआ 'यह विशाल विश्व मेघ और वायु के माया-जाल अर्थात् जादू के खेल के समान क्षण स्थायी और नाशवान है।

भाव यह है कि जिस प्रकार पवन मेघो को एकत्रित कर आकाश मे विभिन्न प्रकार के रगीन, सुखद, मनोरम दृश्यो का सृजन करता है और फिर पवन का एक तीव्र झोका आते ही वह सारा दृश्य मात्र में ही विलीन हो जाता है उसी प्रकार मानव अपनी रगीन आकाक्षाओ की पूर्ति के निमित्त वैभव के विशाल आडम्बर खडे करता है परन्तु परिवर्तन के एक ही आघात से उसका निर्मित यह वैभव का ससार नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

(१) प्रस्तुत कविता मे कवि पन्त का पलायनवादी स्वर उभर कर ऊपर आया है। कवि परिवर्तन से त्रस्त है। उसे चारो ओर विनाश और अशान्ति का साम्राज्य ही छाया हुआ दीखता है। कवि निराशावादी है इसलिए परिवर्तन के मूल मे छिपे भावी विकास की वैज्ञानिक प्रक्रिया को नही समझ पाया है। ऐसी कविताएँ मानव को निराशावादी और भाग्यवादी बना देती है।

(२) डा० नगेन्द्र आदि ने इस कविता को अत्यन्त उच्च कोटि की कविता माना है। कला की दृष्टि से इस कविता को उच्च कोटि की रचना मानने मे हमे कोई आपत्ति नही। आपत्ति है इसके सन्देश से। काश कवि शिव के ध्वसकारी रूप के मूल मे दिये कल्याण के स्वरूप को समझ सकता। शिव ध्वस इसलिए करता है कि उसके भावी कल्याण की सृष्टि होती है। इसीलिए शिव को 'शिव' कहा गया है।

(३) पन्त की यही एक कविता ऐसी है जिसमे प्रकृति का उग्र रूप दिखाई देता है। अन्यथा कवि पन्त प्रकृति के कोमल रूपो के चितेरे के रूप मे ही अधिक विख्यात हैं।

(४) छन्द सौष्ठव, उपयुक्त शब्द-योजना, ओज तथा भाषा की दृष्टि से इस कविता को उच्च कोटि की कलाकृति माना जा सकता है।

१३. नित्य जग

इस कविता मे जगत और जीवन के प्रति कवि का सतुलित दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। उसने जगत की नश्वरता का रूप, परिवर्तन के प्रभावो को हृदयगम किया परन्तु साथ ही इस बात को भी अनुभव किया कि इस जगत की वास्तविकता परिवर्तन से परे नित्य नवीन और अक्षय है।

(१)

नित्य का यह . . . . देती अज्ञात !

शब्दार्थ—अनित्य नर्तन = नश्वर नृत्य। विवर्तन = प्रदर्शन। व्यावर्तन = परिवर्तन। अचिर = नश्वर। चिर = अविनश्वर। अन्वेषण = खोज। तत्व-पूर्ण = वास्तविक। अकूल = असीम, सीमाहीन। बूड = डूब। निस्सार = सारहीन, व्यर्थ। सैकत = बालू, रेत। अतिवात = तेज हवा।

भावार्थ—यह ससार उस नित्य शक्ति (विराट पुरुष) की नश्वर नृत्य क्रीडा है। वह नित्य शक्ति इस ससार के रूप मे स्वय को प्रदर्शित करती है, अभिव्यक्त होती है। अर्थात् यह प्रतिभासित जगत उस नित्य शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। यह जगत परिवर्तनशील है। इस नश्वर जगत मे उस अविनश्वर सत्ता की खोज करना ही सच्चा दर्शन है। अर्थात् दर्शन का वास्तविक उद्देश्य इस जगत मे उस नित्य शक्ति की खोज करना ही है।

जिस प्रकार अतल सागर के हृदय से एक विराट असीम उमग उठ कर सारे सागर मे असख्य लहरो के रूप में छा जाती है उसी प्रकार उस असीम सत्ता के हृदय मे सृजन की उमग उत्पन्न होने पर बुलबुलो के समान नाशवान सैंकडो जगतो की सृष्टि होती है। और जिस प्रकार सागर से ही उत्पन्न असंख्य सारहीन बुलबुले नष्ट होकर उसी मे विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार असख्य नाशवान जगत उस असीम सत्ता मे उत्पन्न हो उसी मे लय हो जाते हैं। तेज हवा बालू के किनारों का सृजन कर फिर स्वय ही उन्हें गिरा देती है। उसी प्रकार वह असीम सत्ता सैंकडो जगतो का सृजन कर स्वय ही उन्हे नष्ट कर देती है।

(१) उपनिषदो मे उल्लेख है कि जब विराट पुरुष अपने एकाकीपतन से व्याकुल हो उठा तो उसने सृष्टि की रचना की—"एकाकी न रमते, एको ऽहं बहुस्याम्"। और फिर स्वयं ही उसे नष्ट कर डाला। सृजन और विनाश की यह प्रक्रिया अनादि काल से इसी प्रकार चलती चली आ रही है।

(२) 'अतल—निस्सार'—मे सांग रूपक है।

(३) वेदान्त और उपनिषदो का गहरा प्रभाव है।

(२)

एक छवि के .... आदान-प्रदान !

शब्दार्थ—उडगन = तारागण। स्पन्दन = चेतना। विभात = प्रभात। विधि = विधाता। लोल = चपल। उभय = दोनो। त्रिगुण = सत, रज, तम = तीन गुण। प्रलयकर = प्रलय करने वाली, विनाशकारी। वात = वायु। अम्लान = निर्मल। आदान-प्रदान = लेन-देन।

भावार्थ—कवि सृष्टि के कण-कण मे उसी एक असीम मूल शक्ति का आभास पाता है। एक ही ज्योति असख्य तारो को प्रकाशित करती है। एक ही चेतन शक्ति सब तारो मे चेतना उत्पन्न करती है। सारे तारे एक ही सुन्दर प्रभात की आभा मे लीन हो जाते हैं, छिप जाते हैं और सारे एक ही विधाता (नियन्ता) के आधीन है। अर्थात् सारे तारो की गति-विधि का नियमानुसार सचालन करने वाला वही एक विराट पुरुष है। सब उसी के नियन्त्रण मे सचालित होते है।

सुख और दुख, दिन और रात दोनो एक ही चेतन शक्ति रूपी चचल लहर के दो छोरो के समान हैं। अर्थात् दोनो परस्पर एक ही डोर मे आबद्ध रहते हैं। सत, रज, तम—तीन गुणो से निर्मित यह ससार सुख-दुख तथा दिन-रात के इन्ही जोडों से पूर्णता प्राप्त करता है। सृजन ही अन्त मे विनाश बन जाता है। अर्थात् सुख और दिवस सृजन करते है तथा दुख और रात्रि विनाश करती है। इस प्रकार निर्माण और विनाश का यह सतुलित क्रम निरन्तर चलता रहता है।

एक तरफ मृत्यु रूपी रात्रि जीवन को नष्ट कर देती है और दूसरी तरफ वही प्रभात के रूप मे नव-जीवन प्रदान करती है। शिशिर ऋतु की सब कुछ

नष्ट कर देने वाली वायु ही अज्ञात रूप से बीज बोकर वसन्त के रूप मे उन्हे नव जीवन प्रदान करती है। अर्थात् विनाश के मूल मे सदैव भावी सृजन का रहस्य छिपा रहता है। विनाश रूपी परिवर्तन ही नव जीवन का प्रधान कारण बन जाता है।

मुरझाए फूलो की मधुर मुस्कान ही फिर फलो के रूप मे निर्मल रूप धारण कर खिल उठती है। (फूलो के मुरझाने पर ही उनमे फल लगते है।) फूल स्वयं को नष्ट कर फलो को जन्म देते हैं। कवि कहता है कि फूलो का यह आत्म-बलिदान कितना महान है जो स्वय को नष्ट कर फलो रूपी नव-निर्माण करते हैं। इस ससार मे सृजन और विनाश का यह लेन-देन निरन्तर इसी प्रकार चलता रहता है। अर्थात् सृजन के उपरान्त विनाश और फिर विनाश के उपरान्त सृजन—निरन्तर यही आदान-प्रदान का चक्र चलता रहता है।

(१) 'एक छवि "स्पन्दन'—जायसी ने भी यही बात कही है—

"जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥"

(२) 'उभय सहार'—प्रसाद ने 'कामायनी' मे यही भाव व्यक्त किए हैं—

"विषमता की पीडा से व्यस्त
हो रहा स्पदित विश्व महान।
वही दुख, सुख-विकास का सत्य
वही भूमा का मधुमय दान॥"

(३) साख्य शास्त्र मे ससार की उत्पत्ति सत, रज, तम—इन तीन गुणो का सम्मिलन होने पर ही मानी गई है। इसी कारण ससार त्रिगुणात्मक कहलाता है।

(४) उभय सुख-दुख, निशि भोर'—मे क्रमभग दोष है।

(३)

एक ही तो असीम ... . मधुर झकार।

शब्दार्थ—विविधाभास=अनेक रूप। हरित विलास=हरे रंग की शोभा। अम्बर=आकाश। वास=सुगन्धि। लास=लास्य, नृत्य। झकार=सगीत

भावार्थ—मूल आनन्दमय तत्व एक ब्रह्म ही है। आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही विश्व मे विविध रूपो मे प्रतिभासित होता रहता है। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म की ही आनन्दमय अभिव्यक्ति है। वही आनन्द समुद्र की चचल लहरो मे हरित आभा (हरा रग) धारण कर लेता है। वही शान्त आकाश मे नीलिमा के रूप मे उद्भासित हो उठता है। वही मानव के हृदय मे प्रेमोच्छ्वास का रूप धारण कर लेता है और वही काव्य मे रस, कुसुमो में सुगन्धि, स्थिर तारो में प्रकाश-भरा हास्य और चचल लहरो में सुन्दर नृत्य बन जाता है। इस प्रकार विश्व की विविध प्रकार की वस्तुओ मे उसी आनन्दमय ब्रह्म का मधुर सगीत विविध रूप धारण कर मुखरित हो उठता है।

(१) यहाँ सृष्टि के प्रति कवि का बदला हुआ दृष्टिकोण दिखाई पडता है। वह विश्व की उत्पत्ति 'उल्लास' से मानता है। तथा विनाश से ही नव सृष्टि के सिद्धान्त मे आस्थावान बन जाता है। यहाँ 'निष्ठुर परिवर्तन' तथा 'अनित्य जग' वाली निराशा के स्थान पर आशा का मधुर सगीत झकृत होता दिखाई पडता है। कवि के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन स्वस्थ है।

(२) इसमे वेदान्त के 'प्रतिबिम्बवाद' का स्पष्ट प्रभाव है।

(४-५)

वही प्रजा का ... वेडी का भार!

शब्दार्थ—प्रज्ञा=शुद्ध बुद्धि। प्रणय=प्रेम। लावण्य=सौन्दर्य। शिव=कल्याण। अविकार=विकार रहित, पवित्र। स्वीय=अपने,

भावार्थ—शुद्ध बुद्धि (निर्मल, शुद्ध ज्ञान) मे प्रकाशित होने वाला वह सत्त्व-तत्त्व ही हृदय मे अपार प्रेम का रूप धारण कर लेता है। वही नेत्रो मे अनुपम सौन्दर्य और लोक-सेवा मे पवित्र कल्याण बन जाता है। सगीत के स्वरो मे मुखरित होने वाले हृदय के सच्चे प्रेमोद्गार उसी सत्य स्वरूप की ही मधुर-सुकुमार अभिव्यजना बन जाती है। वही शुद्ध बुद्धि का सत्य स्वरूप अलौकिक सौन्दर्य, स्नेह की साकार प्रतिमा तथा भावनामय ससार का स्वरूप धारण —

होती है।

व्यक्ति के अपने कर्मो के अनुसार ही एक ही गुण विभिन्न रूपो मे प्रकट होता है। कही वह बहिन द्वारा भाई के हाथ मे बाँधी गई राखी का सुकुमार रूप धारण कर लेता है तथा कही अपराध करने के कारण पैर की बेडी बन जाता है। दोनो रूप एक ही गुण के हैं। कर्मानुसार उसका रूप बदल जाता है।

(१) 'भावनामय' ससार—प्रत्येक व्यक्ति अपनी भावनानुसार ही कर्म करता है। यही ससार के प्रति उसके दृष्टिकोण का मूलाधार बन जाता है।

(२) यहाँ कवि सत्य, शिव, सुन्दरम् के सामजस्य को प्रकट कर रहा है। सब मे उसी एक ही मूल तत्त्व की अभिव्यक्ति निहित रहती है। वह मूल तत्त्व सच्चिदानन्द स्वरूप है।

(३) 'गुण' में श्लेप है। इसका दूसरा अर्थ है रस्सी, बन्धन।

(६)

कामनाओं के विविध .... जीवन का मोल।

शब्दार्थ—जगती=ससार। स्फूर्ति=चेतना। पुलिन=तट, किनारा। हुलास=उल्लास, आनन्द। याम=पहर। प्रकाम=कमनीय। अभिराम=सुन्दर। अलभ=अलभ्य, अप्राप्य। इष्ट=वाछित वस्तु। जीवन का मोल=जीवन की सार्थकता।

भावार्थ—वीणा के तारो पर आघात करने से एक झकार उत्पन्न होती है। उसी प्रकार मनुष्य के हृदय मे जब विभिन्न प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न हो उसे व्याकुल बना देती हैं तो उसमे चेतना का सचार हो उठता है और वह जीवन के कर्मपथ पर आरूढ हो जाता है। भाव यह है कि कामनाएँ ही मनुष्य को निष्क्रियता को दूर कर उसे कर्मशील बना देती हैं। कर्म करने में उसे सुख और दुख दोनो का ही अनुभव होता है। सुख और दुख इस जीवन के दो किनारे हैं जिनके बीच ज्ञान रूपी अमृत की धारा छलकती प्रवाहित होती रहती है। भाव यह है कि जीवन मे सुख-दुख के द्वन्द्व से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सुख के समय अधरो पर जो हास्य क्रीडा करता रहता है वही दुख

आने पर पिघल कर नेत्रो को जीवन दान देता है—नेत्रो मे अश्रु के रूप में प्रकट हो उठता है। हमारे ये प्राण वेदना मे ही तप कर स्वर्ण के समान निर्मल, चमकीले बन उल्लास से भर उठते हैं। भाव यह है कि वेदना व्यक्ति के सम्पूर्ण कलुष को भस्म कर उसे स्वर्ण के समान निर्मल और कान्तिमान बना देती है।

हम आठो पहर अर्थात् सदैव सुख के लिए तरसते रहते हैं इसी कारण सुख हमारे लिए अत्यन्त सरस और कमनीय—आकर्षक—बन जाता है। हम विजय प्राप्त करने के लिए रात-दिन सघर्ष का कष्ट झलते हैं तब कही हमे विजय प्राप्त होती है। इसी कारण विजय हमारे लिए इतनी सुन्दर बन जाती है क्योकि वह सघर्ष के दुख के उपरान्त ही प्राप्त होती है।

हमारी मनोवांछित वस्तु हमे प्राप्त नही होती इसी कारण वह हमारे लिए अमूल्य बन जाती है। उस मनोवाछित वस्तु की प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना इसी कारण इस जीवन की सार्थकता-सफलता बन जाती है। अर्थात् जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम अपनी मनोवाछित वस्तु की प्रगति के लिए निरन्तर साधना करते रहें।

(७)

विना दुख के   क्षमा और प्यार।

भावार्थ—विना दुख के सारा सुख व्यर्थ है, सारहीन है और विना आँसू के जीवन भार बन जाता है। अर्थात् जीवन की सार्थकता दुख और वेदना से प्राप्त सुख मे ही निहित रहती है। एकरसता जीवन को भार बना देती है। इसलिए जीवन मे सुख-दुख का क्रम निरन्तर चलता रहना चाहिए। यह ससार दीन है, दुर्बल है इसीलिए इसमे क्षमा, दया और प्यार का इतना मूल्य माना जाता है। क्योकि इन्हें पाकर ससार दैन्य और दुर्बलता के कष्टो को भूल जाता है।

(८)

आज का दुख   •   •   क्रम का ह्रास।

भावार्थ—आज का दुख कल आनन्द दायक बन जाता है। दुख के

उपरान्त ही सुख की प्राप्ति होती है। और कल का सुख आज विषाद का कारण बन जाता है। यह ससार स्वप्न के समान गूढ समस्या है। अर्थात् जिस प्रकार हम रहस्यमय स्वप्नो का रहस्य समझने मे असमर्थ रहते हैं उसी प्रकार इस ससार के रहस्य को समझना असम्भव है। इस रहस्य का ज्ञान ससार को पार करने पर ही प्राप्त होता है। अर्थात् जब हम सासारिकता का मोह त्याग निर्लिप्त हो जाते हैं तभी इस ससार का रहस्य समझ में आता है। इस सासारिक जीवन का अर्थ निरन्तर विकास करते जाना है। जहाँ हमारे इस विकास की गति रुद्ध हो जाती है वही मृत्यु है।

(६)

हमारे काम न · ·· · स्वीय स्वरूप।

शब्दार्थ—उपनाम=दूसरा नाम। अपरूप=अपूर्व रूप। स्वीय=अपना।

भावार्थ—हम जो काम करते हैं वे हमारे अपने किए काम नही होते। उन्हें हमसे करवाने वाला तो कोई और ही है। जिस रूप मे हम अपने आप को जानते-मानते हैं वह हमारा वास्तविक रूप नही है। हमारा वास्तविक रूप तो कोई दूसरा ही है। हम अपनी छाया में ही अर्थात् अपने इस सासारिक रूप मे एक दूसरा नाम अपूर्व रूप-उपनाम-धारण कर छिपे हुए हैं। इस छाया द्वारा हमारे वास्तविक रूप का ज्ञान नही होता। हम इस ससार मे अज्ञात रूप से अपने आप को मिटाने के लिए आए हैं। और अपने इस सासारिक रूप को गवाँ कर ही अपने वास्तविक सच्चे रूप को प्राप्त करते हैं। भाव यह है कि हमारा वास्तविक सच्चा रूप हमारे इस सासारिक नकली रूप के भीतर ही छिपा रहता है। उसको प्राप्त करने के लिए इस नकली सासारिक रूप का विनाश आवश्यक है। तभी हमे आत्मज्ञान प्राप्त होता है और आत्मज्ञान ही हमारा सच्चा वास्तविक रूप है।

(१) इस कविता मे कवि का दार्शनिक रूप उभर कर ऊपर आया है। उसकी इस दार्शनिक चिन्तन पद्धति में यद्यपि पूर्वा पर क्रम का अभाव है परन्तु स्पष्टत उस पर वेदान्त और उपनिषदो का प्रभाव है। प्रारम्भिक छन्दो मे अद्वैत का प्रभाव दृष्टव्य है।

(२) इस कविता के अन्तिम छन्दो मे कवि की निराशा ने उसे पुनः आक्रान्त कर लिया है। "अलभ है इष्ट" आदि पक्तियाँ उसकी इसी निराशा की अभिव्यजना कर रही हैं। फिर भी मूल शक्ति के सच्चिदानन्द स्वरूप में कवि की दृढ आस्था दिखाई पडती है। इस आस्था के ही कारण कवि की निराशा 'निष्ठुर परिवर्तन' तथा 'अनित्य जग' का सा भयकर रूप नही धारण कर पाई है। इसे कवि की आशिक उपलब्धि माना जा सकता है।

१४. प्रार्थना

इस कविता में बादल के रूपक द्वारा ईश्वर की स्तुति की गई है।

जग के उर्वर ... सुख यौवन !

शब्दार्थ—उर्वर=उपजाऊ। ज्योतिर्मय जीवन=कल्याण भरा जीवन। अव्यय=अविनश्वर। मधु=पराग। स्मिति=मुस्कान।

भावार्थ—कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि—हे चिर अविनश्वर ! हे चिर नवीन ! तुम इस ससार के उपजाऊ आँगन मे मगलमय जल का रूप धारण कर बरसो। तुम ससार के छोटे-छोटे तिनको एव वृक्षो पर जीवन रूपी जल की वर्षा करो। तुम फूलो मे पराग, हृदय मे अमर प्रेम-धन, अधरो पर मुस्कान, पलको मे मधुर स्वप्न, हृदय मे सुख और अगो में यौवन बन कर बरसो।

छू छू जग के .. के सावन !

शब्दार्थ—मृण्मरण=मिट्टी सी मृत्यु। सुखमा=सुख-सौन्दर्य। ससृति=ससार।

भावार्थ—हे भगवान ! तुम ससार के जीवन हीन मिट्टी के समान बीज रूपी रज कणो का अपनी कृपा रूपी वर्षा जल से सिंचित कर उन्हें हरियाली और वृक्षो के रूप मे नव जीवन प्रदान कर दो। अर्थात् क्षुद्र से क्षुद्र निर्जीव से निर्जीव प्राणियो मे भी गौरव-भावना का सचार कर दो। सब मे प्राणशक्ति भर दो। मिट्टी सी निर्जीव मृत्यु को समाप्त कर उन्हे प्राणो का आलिगन करा उनमे नई चेतना उत्पन्न कर दो। हे ससार के जीवन के धन ! अर्थात् ससार को जीवन देने वाले भगवान ! तुम सुख और समृद्धि का रूप धारण कर

क्षरण-क्षरण में प्रत्येक दिशा मे बरसो, सर्वत्र सुख-समृद्धि का साम्राज्य फैला दो। जिस प्रकार सावन का महीना जल की वर्षा कर ससार मे नव-जीवन का सचार कर देता है उसी प्रकार तुम इस ससार के लिए सावन बन प्रतिपल जीवन की वर्षा करो।

(१) 'जीवन'—में श्लेष है।

(२) मेघो का बरसना व्यग्य अप्रस्तुत है जिसका कवि ने अन्त तक सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

१५. एक तारा

इस कविता मे सन्ध्या के एकाकी प्रथम तारे के माध्यम से कवि ने अद्वैत भावना का काव्यात्मक अङ्कन किया है।

नीरव सध्या मे . . . . हो आर-पार।

शब्दार्थ—प्रशान्त=पूर्ण रूप से निस्तब्ध। आनत=झुके हुए। निखिल=सम्पूर्ण। खग-कूजन=पक्षियो का कलरव। गोपथ=गायो के चलने का मार्ग। धूमर=मटमैला। जिह्म=टेढ़ा। क्षीण=पतला। प्रशान्ति=शान्ति।

भावार्थ—नीरव सन्ध्या के निस्तब्ध वातावरण मे सारा गाँव डूबा हुआ है। जिस प्रकार वीणा के तारो के गतिहीन हो जाने पर वीणा के स्वर उन्ही तारो मे समा जाते हैं उसी प्रकार वृक्षो के नीचे झुके पत्तो रूपी अधरों में समस्त वन की मर्मर ध्वनि समा गई है। अर्थात् वायु न चलने के कारण पत्तो का हिलना बन्द हो जाता है, वे नीचे की ओर झुक गए हैं इसलिए अब उनके हिलने से उत्पन्न होने वाली मर्मर ध्वनि शान्त है। पक्षियो की कलरव ध्वनि भी अब शान्त होती जा रही है। गाँव के पशुओ के चलने के मार्ग पर अब धूल नही उड रही है। अर्थात् सारे पशु चरागाहो से लौट आये हैं और अब उस मार्ग पर कोई भी नही चल रहा। अब वह मार्ग मटमैले, टेढे, पतले सर्प के समान निश्चल पडा दिखाई पड रहा है।

अब सन्ध्या की उस निस्तब्धता को केवल झींगुरो की तीखी झनकार

भङ्ग कर रही है। इस झनकार के कारण सन्ध्या की निस्तब्धता और भी अधिक गहरी हो उठी है। झीगुरो की यह झनकार उस पूर्ण निस्तब्ध वातावरण के उदार हृदय को इस प्रकार बेध रही थी मानो परम शान्ति के प्रतीक ब्रह्म के पूर्ण शान्त हृदय मे सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हो उसे व्याकुल बना रही हो।

(१) यहा झीगुर की झनकार ब्रह्म के हृदय मे उठने वाली सृजन को कामना तथा ग्रामीण शान्त वातावरण ब्रह्म की कामना ही शान्त हृदय का प्रतीक है। यहाँ कवि एक से अनेक की उत्पत्ति वाले अद्वैतवादी सिद्धान्त की ओर सकेत कर रहा है।

(२) प्रथम दो पक्तियो मे दीर्घ स्वर की प्रधानता के कारण वातावरण की निस्तब्धता और गम्भीरता को व्यक्त किया गया है।

(३) पृष्ठभूमि के रूप मे सन्ध्या का निस्तब्ध वातावरण है।

(४) उपमाएँ नूतन और सुन्दर हैं।

अब हुआ सान्ध्य .... तम श्यामल।

शब्दार्थ—स्वर्णाभ=सुनहली आभा। वर्ण=रग। चल-जल=बहता जल। रक्तोत्पल=लाल कमल। दल=पखुडियाँ। अरुणाई=लालिमा। प्रखर-शिशिर=कडाके की ठड। स्वर्ण-विहग=सुनहला पक्षी, सूर्य। सुभग=सुन्दर। गुहा-नीड=गुफा रूपी घोसला।

भावार्थ—अब सन्ध्या की सुनहली आभा समाप्त हो गई है। विश्व की सारी वस्तुएँ और रग अपना स्वरूप खो गहरे अन्धकार मे विलीन हो गई हैं। अर्थात् अन्धकार के कारण वस्तुओ का रूप-रग दिखाई नही पडता। गगा के बहते निर्मल जल मे सूर्य की किरणो न उत्पन्न लाल कमल ने अब अपनी कोमल पखुडियों को बन्द कर लिया है। भाव यह है कि गगा के जल में पडता डूबते हुए लाल सूय का प्रतिबिम्ब लाल कमल सा लग रहा था। अब सूर्य के डूब जाने से वह प्रतिबिम्ब गायब हो चुका है और ऐसा लगता है मानो वह लाल कमल मुँद गया हो। (सन्ध्या-समय कमल बन्द हो जाते हैं।)

जिस प्रकार तेज ठड के कारण अधरो पर छाई लालिमा नीली पड जाती है, अधर नीले पड जाते हैं, उसी प्रकार गगा की लहरो पर डूबते सूय की लाल

किरणो पड़ने से जो लालिमा छा रही थी वह अब सूर्यास्त हो जाने से नीली पड गई है। डूबते सूर्य की सुनहली किरणों वृक्षा की चोटियो पर पड रही थी। वे अब गायब हो चुकी हैं। यह देख कवि जिज्ञासा करता है कि वृक्षो की चोटियों पर बैठा वह सुनहला पक्षी (सूर्य-किरणो) अपने सुन्दर पख खोल न जाने किस मार्ग से अपने गुफा रूपी घोसले मे जाने के लिए उड गया है।

अब सारे वन में नीला-कोमल अन्धकार छा गया है। यह नीला अन्धकार अपने आँचल मे मीठे-मीठे स्वप्नो को भर कर लाया है। (मनुष्य रात्रि मे सोते समय मधुर स्वप्न देखता है।)

(१) 'गुहा-नीड'—सन्ध्या समय पक्षी अपने घोसलो मे जा छिपते हैं। यहाँ सूर्य रूपी सुनहला पक्षी पर्वत रूपी घोसले की गुफा मे जा छिपा है। सूर्य पर्वत के पीछे छिप गया है इसलिए पर्वत को उसका नीड कहा है।

(२) गगा के मृदु दल'—मे प्रस्तुत सूर्य और अप्रस्तुत कमल का सुन्दर समन्वय हुआ है।

(३) प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्रण हुआ है।

पश्चिम नभ में . इच्छा से निर्धन।

शब्दार्थ—अमन्द=ज्योतित, प्रकाशमान। अकलुष=पवित्र। अनिन्द्य=वन्दना योग्य। विवेक=ज्ञान। दीपित=प्रकाशित। अमर टेक=अमर-साधना का सकल्प। प्रदीप=दीपक। मुक्तालोकित=मुक्ता+आलोकित=मोती की आभा से आलोकित। रजत सीप=चाँदी की सीप। अपमान=आत्मज्ञान।

भावार्थ—यहाँ मे कवि पृष्ठभूमि के रूप मे प्रकृति का चित्रण करना समाप्त कर सन्ध्याकाश मे स्थित एकाकी तारे का वर्णन प्रारम्भ करता है।

कवि कहता है कि मैं पश्चिमी प्रकाश मे एक शुभ्र, निरन्तर प्रकाशमान नक्षत्र को देख रहा हूँ। वह एकाकी तारा पवित्र और वन्दनीय है। मानो स्वय 'ज्ञान' मूर्ति धारण कर प्रकाशित हो रहा हो जो अपने हृदय मे अमर-साधना (ब्रह्मज्ञान) का दृढ सकल्प धारण किए हुए हो। (यहाँ कवि 'ज्योतित विवेक' द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के निमित्त, साधना के तेज से उद्दीप्त योगी की ओर सकेत कर रहा है जो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अखड साधना मे

समाधिस्थ बैठा हो। उस एकाकी नक्षत्र के हृदय मे भी उस योगी के समान अमर-पद प्राप्त करने की आकांक्षा हो।)

कवि जिज्ञासा करता है कि वह ऐसी कौन सी स्वर्णिम आकाक्षा का दीपक लिए किस आराध्य के सम्मुख बैठा आराधना कर रहा है ? वह तारा निर्मल आकाश मे प्रकाशित ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चाँदी जैसी चमकीली सफेद सीप अपने भीतर स्थित मोती के प्रकाश से प्रकाशित हो रही हो। (यहाँ चाँदी जैसी सीप तारे के निर्मल हृदय की, तथा मोती उसकी उस अमर-आकाक्षा का प्रतीक है जिसके प्रकाश से उसका हृदय प्रकाशित हो रहा है।)

क्या एकटक देखते उसके नयनो का चिन्तन (आत्म-चिन्तन) ही उसी आत्मा का अक्षय दान है ? क्या वह योगी के समान ही आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है । (यहाँ कवि ने एकाकी स्थिर नक्षत्र को समाधिस्थ आत्म चिन्तन मे लीन योगी के समान माना है।) किन्तु आत्मज्ञान प्राप्त करना तो अत्यन्त दुर्लभ है। और जब आत्मज्ञान प्राप्त नही हो पाता तो यह सारा विश्व उसे निर्जन सा प्रतीत होने लगता है। वह अपनी इच्छा के पूर्ण न होने से निर्धन के समान असहाय और अकिंचन बन जाता है। अर्थात् इच्छाएँ कभी पूर्ण नही हो पाती इसीलिए जीवन नीरस और उदास प्रतीत होने लगता है।

(१) यहाँ तारे का योगी के रूप में मानवीकरण किया गया है।

(२) उत्प्रेक्षा और उपमा अलकार हैं।

आकाक्षा का ... रे न पार !

शब्दार्थ—उच्छ्‌वसित = उद्वेलित प्रखर। अहरह = निरन्तर। हहर = हहराती हुई। अविरत = निरन्तर। उडगण = तारागण। दुस्तर = न कटने वाला। निसग = एकाकी।

भावार्थ—आकाक्षा का प्रखर वेग किसी भी प्रकार के वन्धन को स्वीकार नही करता, सारे वन्धन उसके सम्मुख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। और न वह विवेक को ही स्वीकार करता है। अर्थात् आकाक्षा जब तीव्र रूप से मन मे उठती है तो मानव भलाई बुराई का ज्ञान भूल जाता है। सागर (चन्द्रमा

से मिलने की) अपनी अनादि काल से चली आ रही इच्छा के ही कारण निरन्तर उद्वेलित होता रहता है। उसकी एक के बाद दूसरी उठने वाली लहरें निरन्तर उमडती रहती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण अपनी निरन्तर बनी रहने वाली इच्छा के ही कारण अबाध रूप से नाचते फिरते हैं, भटकते रहते हैं। आकांक्षा का यह बन्धन इतना दृढ होता है कि इससे मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है।

कवि उस एकाकी तारे को सम्बोधन कर पूछता है कि रे तारे! क्या तेरे प्राण भी उसी निरन्तर बनी रहने वाली इच्छा के कारण व्याकुल हैं? क्या उसी के कारण तेरे मूक नेत्र सदैव सजल बने रहते हैं। (नेत्रो मे आँसू आ जाने पर पलकें बार-बार झपकने लगती हैं। यहाँ तारे का टिमटिमाना देख कवि उसे सजल नयन मानता है।) एकाकी जीवन व्यर्थ और निष्फल होता है। एकाकीपन का अन्धकार बडा भयानक होता है। इसके मूक-भार को सहन करना कठिन है। (एकाकी व्यक्ति मूक बना रहता है।) इसके दुख का कोई ओर-छोर नही होता। अर्थात् एकाकी व्यक्ति सदैव दुखी रहता है।

(१) यहाँ कवि आकांक्षा के प्रबल वेग और विश्व व्यापी प्रभाव को दिखा रहा है।

(२) 'मूक-भार' में विशेषण विपर्यय है।

(३) ध्वन्यात्मक शब्द चित्र मनोरम हैं।

चिर अविचल पर .. वह सम।

शब्दार्थ—अविचल=स्थिर। छन्द-बन्ध=नियमो के बन्धन। अनन्त=आकाश। मुक्त मीन=स्वच्छन्द मछली। असग=निष्काम। निष्कम्प=अचल, स्थिर। प्रबुद्ध=ज्ञानी, विवेकी, चेतन। शुक्र=शुक्र तारा। सम=समरस।

भावार्थ—सदैव स्थिर रहने वाले आकाश पर स्थित वह तारा निरन्तर प्रकाशित होता रहता है। वह किसी भी प्रकार के नियमो के बन्धनो को नहीं मानता अर्थात् समाधिस्थ योगी के समान सांसारिक बन्धनो से सदैव मुक्त रहता है। वह इस अनन्त आकाश रूपी समुद्र की मुक्त मछली के

समान है। वह निष्काम भाव मे अपने ही मुग्न मे डूबा रहता है। वह अपने इग स्वरूप मे स्थिर रहता हुआ भी चिर नवीन रहता है। वह दीपक की अचल शिखा (लौ) के समान अनुपम स्वरूप वाला है और ससार के जीवन के अन्धकार का भेद उसे नष्ट करता रहता है। वह शुद्ध स्वरूप, चेतन और समरसता की अवस्था को प्राप्त शुक्र तारा है।

(१) 'निष्कम्प तम' जिस प्रकार दीपक का प्रकाश अन्धकार को नष्ट कर डालता है उसी प्रकार इस तारे रूपी योगी ने अपनी अखड-साधना द्वारा अज्ञान के पाश को छिन्न-भिन्न कर डाला है। जिस प्रकार मुक्त पुरुष (योगी) सासारिक विधानो से ऊपर उठ स्वय को अनन्त ब्रह्म में लीन कर देता है और चेतन, शुद्ध स्वरूप बन जाता है वही स्थिति इस तारे की है।

गुञ्जित अलि सा यह जग-दर्शन।

शब्दार्थ—अलि = भ्रमर। मधुमय = मधुर। आत्म = आत्म स्वरूप ब्रह्म।

भावार्थ—अपार, निर्जन, निस्तब्ध वातावरण में गु जार करते भ्रमर की गु जार का सा हल्का-धीमा स्वर गूँज रहा है। अब यह सघन अन्धकार भी मधुर (आकर्षक) प्रतीत होने लगता है। और एकाकीपन के दुख का भार हल्का हो गया है। आकाश का आँगन जगमगाती हुई कुन्द (एक प्रकार का सफेद फूल) की सघन कलियो से भर जगमगा रहा है। अर्थात् सारे आकाश मे कुन्द-कलियो के समान सफेद तारे छा रहे हैं। वह शुक्र तारा आत्म-स्वरूप ब्रह्म है और ये दूसरे असख्य तारे सृष्टि की उत्पत्ति के समान हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार एकाकी ब्रह्म इस अनन्त सृष्टि का सृजन करता है उसी प्रकार उस शुक्र तारे ने इन असख्य तारो रूपी सृष्टि का सृजन कर अपने एकाकीपन की व्यथा को दूर कर लिया है।

(१) अन्तिम पक्ति इस सम्पूर्ण कविता को अन्योक्ति का रूप प्रदान कर रही है।

(२) भ्रमर की गु जार अनहद नाद की प्रतीक है।

(३) पृष्ठभूमि के रूप मे प्रकृति का चित्रण कर कवि ने अद्वैतवादी दर्शन के चिन्तन को प्रस्तुत किया है। इस कारण कविता नीरस और बोझिल होने से बहुत कुछ बच गई है।

(४) इसमे कवि का दार्शनिक पक्ष अधिक निखर कर सामने आया है।

(५) शब्द योजना सघन और सशक्त है। नवीन उपमाएं और कल्पनाएं कविता मे एक अद्भुत आकर्षण और सौन्दर्य उत्पन्न करने वाली हैं।

१६ नौका विहार

मृदुल, लहर।

शान्त, स्निग्ध

शब्दार्थ—ज्योत्सना=चाँदनी। अपलक=शान्त। अनन्त=आकाश। सैकत-शय्या=वालू की शय्या। धवल=सफेद। तन्वगी=छरहरे शरीर वाली, कृशागी। विरल=दुर्बल। श्रान्त=थकी हुई। क्लान्त=व्यथित। तापस-वाला=तपस्वी की कन्या। दीपित=प्रकाशित। करतल=हथेली। तार-तरल=तारागण से शोभित। कुन्तल=केश। नीलाम्बर=नीला आकाश। विमा=प्रकाश। वर्तुल=अर्द्ध गोलाकार।

भावार्थ—कवि चाँदनी रात्रि मे ग्रीष्मकालीन पतली धार वाली गगा का चित्र प्रस्तुत कर रहा है।

रात्रि का समय है। चारो ओर शान्त, कोमल, उज्जवल, चाँदनी छिटक रही है। आकाश शान्त है अर्थात् उसमे मेघो का कही नाम निशान तक नही दिखाई दे रहा है। (आकाश मेघ छा जाने पर ही आन्दोलित दिखाई पडता है अन्यथा सदैव शान्त रहता है।) पृथ्वी नीरव है—कही भी हलचल नही दिखाई पडती। चतुर्दिक व्याप्त ऐसे शान्त वातावरण मे ग्रीष्म के कारण दुर्बल बनी (पतली धार वाली) दुग्ध के समान श्वेत वर्ण वाली गगा (गगा का जल सफेद होता है) कृशागी (छरहरे शरीर वाली नायिका के समान थकित, व्यथित और निश्चल हो वालू की शय्या पर लेटी हुई है।

वह गगा तापस-वाला के समान पावन है। उसके जल में प्रतिविम्बित चन्द्रमा ही उनका मुख है जिससे उनका हथेली रुपी तल प्रतिभासित हो रहा है। हस्य यह है कि तन्वगी नायिका गगा अपनी हथेली पर मुख रखे करवट लिए शान्त लेटी हुई है। उमके चन्द्रमुख के प्रकाश से उसकी हथेली भी प्रकाशित हो रही है। अर्थात् गगा के जल मे जिस स्थान पर चन्द्रमा प्रतिविम्बित हो

रहा है उसके ठीक नीचे वाला तल भी उसके प्रकाश से प्रकाशित हो चमक सा रहा है। गगा के निर्मल जल को वेध कर चन्द्रमा का प्रकाश उसके तल तक को प्रकाशित कर रहा है। गगा के वक्ष पर हल्की-हल्की सी लहरे उठ रही हैं मानो नायिका के वक्ष पर बिखेर कोमल केश वायु के हल्के स्पर्श से मन्द-मन्द लहरा रहे हो।

गगा रूपी उस नायिका के गोरे अगो पर, उसके शरीर के स्पश के कारण सिहर-सिहर कर तारो से खचित नीले आकाश का प्रतिविम्ब रूपी नीला अचल चचल गति से लहरा रहा है। भाव यह है कि गगा का जल निर्मल है जो उसके गोरे अगो का प्रतीक है। उस जल मे तारो से खचित नीले आकाश का प्रतिविम्ब पड रहा है। यही प्रतिविम्ब मानो तारो से जडी नीली रेशमी साडी है जो लहरो के रूप मे धीरे-धीरे लहरा रही है।

सोते समय रेशमी साडी मे सिकुडनें पड जाती है और जहाँ-जहाँ सिकुडनें पडती है उनके किनारे चमकने लगते हैं। गगा मे मन्द-मन्द लहरें उठ रही है। उन लहरो पर चन्द्रमा की चाँदनी पड रही है जिससे वे चमक उठती है। लहरें गोलाकार उठ रही है। नायिका के सुडौल अगो के कारण साडी मे पडी सिकुडनें इसी कारण गोलाकार है। दृश्य यह है कि गगा रूपी नायिका रेशमी साडी पहने लेटी है जिसमे गोलाकार सिकुडनें पड गई है और साडी रेशमी है इसलिए वे सिकुडनें चमक रही है। लहरें अबाध गति से उठ रही है इसलिए सिकुडनें स्थायी सी प्रतीत होती है।

(१) इस चित्र मे गगा का नायिका के रूप मे मानवीकरण किया गया है।

(२) नायिका गर्मी के कारण क्लान्त हो चुपचाप हथेली पर मुख रखे लेटी है। यह दृश्य वहुत ही मनोरम वन पडा है।

(३) चतुर्दिक व्याप्त रात्रिकालीन शान्त, निस्तव्ध वातावरण नायिका की मानसिक पृष्ठभूमि का वहुत ही सुन्दर आधार प्रस्तुत कर रहा है।

चाँदनी रात का ... वैभव-स्वप्न सघन।

शब्दार्थ—सत्वर = शीघ्र। सिकता = वालू। सस्मित = हँसती हुई, खुली हुई। तरणि = नाव। तिर = तैर। शुचि = निर्मल। रजत-पुलित = चाँदी से चमकते किनारे। निर्भर = पूर्ण। प्रमन = प्रमुदित, प्रसन्न मन।

भावार्थ—रात्रिकालीन निस्तब्ध वातावरण मे गगा का अपरूप सौन्दर्य-चित्र अकित करने के उपरान्त कवि गगा के वक्ष पर अपने नौका-भ्रमण का वर्णन करता है।

चाँदनी रात का पहला प्रहर था। हम नाव लेकर शीघ्र ही घूमने के लिए चल पडे। सफेद चमकती बालू पर पडती चाँदनी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो खुली हुई सीपी के भीतर से मोती की मन्द-मन्द उज्ज्वल आभा चारो ओर विकीर्ण हो रही हो। यहाँ मफेद चमकती बालू खिली सीप के और चाँदनी का प्रकाश मोती की मन्द-मन्द उज्ज्वल आभा के समान है। अब नाव की पालें चढा दी गई और लगर उठा दिया गया। हमारी वह छोटी सी नाव अपने पाल खोले गगा के वक्ष पर धीरे-धीरे आगे बढती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो कोई सुन्दर हसिनी अपने सफेद पख खोले जल पर धीरे-धीरे तैरती बढी जा रही हो।

गगा के शान्त निर्मल जल रूपी दर्पण मे उसके दोनो चाँदी के समान सफेद चमकते किनारों का पूरा प्रतिविम्ब पड रहा था। इस प्रतिविम्ब के कारण वे किनारे क्षण भर के लिए दुगुने ऊँचे से दिखाई पडते थे। गगा के तट पर स्थित कालाकाँकर के राजभवन का शान्त प्रतिबिम्ब पड रहा था जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह राजभवन स्वप्न मे अपने अतुल वैभव का रूप छिपाए प्रसन्न मन से गहरी नीद में सोया पडा हो।

(१) पन्त जी कालाकाँकर के राजा के यहाँ रहते थे। उन्होंने इस दृश्य को वहीं देखा था।

(२) कलाकाँकर के राजमहल का मानवीकरण सुन्दर है। 'सघन वैभव-स्वप्न' उस राजमहल के निवासियो के सुख, समृद्धि और वैभव का सकेत दे रहे हैं।

(३) जल मे प्रतिविम्ब किनारो का दुहरा ऊँचा लगना कवि सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति एव सौन्दर्य, भावना का परिचायक है।

(४ चित्र मे गतिशीलता है। 'मृदु' मयर' में सगीत और गति दोनो ही गुण अपनी चरम सीमा पर दिखाई पडते है।

(५) भाषा कोमल, चित्रात्मक और सौन्दर्यमयी है। 'निष्ठुर परिवतन' कविता की भाषा से इसकी तुलना द्रष्टव्य है।

नौका से उठती .. .. . सा रुक-रुक।

शब्दार्थ—विस्फारित = खुली हुई। तारक दल = तारागणो के समूह। ज्योतित = प्रकाशित। अन्तस्तल = भीतरी भाग। अविरल = निरन्तर। शुक्र = शुक्र तारा। रुपहरे = रुपहले, चांदी के रंग वाले। कचो = केशो। ओझल = गायब। तिर्यक् = तिरछा। मुग्धा = मुग्धा नायिका।

भावार्थ—नाव के चलने से जल में हिलोरें उठ रही थी। लहरो के कम्पन के साथ जल मे प्रतिविम्बत सारा आकाश भी हिल उठता था। तारो का जल मे पडता प्रतिम्बिम्ब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे आँखें फाडे अपने आकाश से जल के भीतरी भाग को आलोकित कर वहाँ चुपचाप कुछ खोज रहे हों।

लहरें उन तारो रूपी नन्हें दीपको को अपने लहराते अचल की ओट मे छिपाए मानो क्षण-क्षण पर लुका-छिपी का खेल खेल रही थो। (लहरो की चचलता के कारण तारे कभी छिप जाते थे और फिर प्रकट हो जाते थे।) जल मे सामने शुक्र तारे की छवि झलमला रही थी जो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो जल मे कोई सुन्दर परी तैर रही हो जिनकी मुख छवि लहरो रूपी सफेद चाँदी से वालो के वीच रह-रह कर छिप जाती हो और फिर प्रकट हो जाती हो। अर्थात् शुक्र तारा कभी छिप जाता था और फिर दिखाई पडने लगता था। उठती लहरो मे दशमी का आधा चाँद कभी प्रकट हो जाता था और कभी छिप जाता था। चाँद का यह दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई मुग्धा नायिका घूँघट मे से कभी अपने मुख के आधे-तिरछे भाग की एक झलक दिखा देती थी और पुन उसे घूँघट मे छिपा लेती थी।

(१) इस छन्द मे सर्वत्र मानवीकरण है।

अब पहुँची चपला को विलोक।

शब्दार्थ—चपला = चचल नाव। कगार = किनारा, तट। दूरस्थ = दूर पर स्थित। विटप माल = वृक्षो की पक्ति। भ्रू-रेखा = भौंह। अराल = तिरछी। ऊर्मिल = लहरो से भरे। प्रतीप = उल्टा लौटा कर। विहग = पक्षी। कोक = चकवा। कोकी = चकवी। विलोक = देख कर।

भावार्थ—अब हमारी चचल नौका गगा की बीच धारा मे पहुँच गई। बीच धारा मे पहुँच जाने से दोनो ओर पहले दिखाई पडने वाले चाँदो से सफेद किनारो का प्रतिबिम्ब दिखाई पडना बन्द हो गया। दूर पर स्थित गगा के दोनो किनारे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो नायक की विशाल भुजाए धारा के पतले, कोमल शरीर को अपने आलिंगन में बांध लेने के लिए अधीर हो रही हो। अत्यन्त दूर क्षितिज पर स्थित वृक्षो की पक्ति उस नायक की तिरछी भौंहो के समान तथा निस्तब्ध नीला गगन उसके विशाल खुले नीले नयन के समान प्रतीत हो रहा था।

धारा के बीच पास ही एक द्वीप था जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो माँ के वक्ष पर कोई बच्चा सो रहा हो। गगा की लहरें उस द्वीप से टकरा-टकरा कर पीछे की ओर लौट जाती थी। इतने में अचानक कोई पक्षी उडा। उसे देख कवि शका करता है कि क्या कोई चकवा जल में पडते अपने प्रतिबिम्ब को भ्रम से चकवी समझ, उसके विरह के कारण उत्पन्न अपने दुख को दूर करने के लिए उससे मिलने उडा है?

(१) यहाँ पक्षी के उडने से वातावरण की निस्तब्धता भग हो जाती है और उस चित्र का प्रभाव कम होने लगता है। दृश्य की मोहकता की समाप्ति निकट है।

पतवार घुमा .... सहोत्साह।

शब्दार्थ—प्रतनु-भार=हल्की। विपरीत धार=धारा की उल्टी तरफ। चल=चचल। करतल=हथेली। मुक्ताफल=मोती के समान फल। फेन-स्फाट=झागो से भरे। तार-हार=तारों का हार। रश्मियाँ=किरणें। लतिकाओ=लताओ। उडु=तारे। फेनिल=झाग भरे। लग्गा=लम्बा बाँस। सहोत्साह=उत्साह सहित।

भावार्थ—अब नाव का पतवार घुमा दिया गया और हल्की नौका घूम कर धार की उल्टी दिशा की ओर मुड गई। वह नौका अपनी डाँडो रूपा हथेलियाँ फैला कर उनमे मोपिया के समान झागो से उत्पन्न बुदबुदो को भर-भर कर जल में उन्हें इस तरह बिखराने लगी मानो कोई चचल बालिका तारो के हार

को तोड कर उन्हे बिखरा रहो हो। (यहाँ बुदबुदों पर पडता तारों का प्रतिविम्ब उन्हे तारो के हार का सा स्वरूप प्रदान कर रहा है।)

नीचे जल मे चन्द्रमा की किरणो की लहरो के कारण चचल छाया चाँदी के सर्पों के समान नाच रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो असख्य चाँदी के सर्प आपस मे एक दूसरे के ऊपर फिसल रहे हो। चाँदनी की किरणो का वह प्रतिविम्ब चचल सुन्दर रेखाओ के रूप मे प्रतिभासित हो रहा था। इसीलिए उसे चाँदी के सर्पो के समान कहा गया है। झागो से भरे जल में चन्द्रमा और तारो की असख्य परछाइयाँ ऐसी लग रही थी मानो लहरो रूपी लताओ मे चन्द्रमा और तारो रूपी असख्य पुष्प झिलमिलाते हुए इधर-उधर फूले हुए बिखर रहे हो।

अब नदी का प्रवाह उथला हो गया। अर्थात् किनारा समीप आ गया। हम लोग लग्गी से जल की गहराई की थाह लेते हुए उत्साह के साथ घाट की ओर बढ़े।

ज्यों-ज्यों लगती • ••• अमरत्व-दान।

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित, उत्पन्न। शाश्वत=सनातन। सगम=मिलन। रजत-हास=चाँदी के समान उज्ज्वल चाँदनी। अस्तित्व-ज्ञान=आत्म ज्ञान। अमरत्व=अमरता।

भावार्थ—जैसे-जैसे नाव किनारे की ओर बढती जाती है, हृदय मे सैकड़ों विचार उत्पन्न होते जाते हैं। इस ससार की गति भी इस धारा के समान सदैव गतिशील रहती है। जिस प्रकार इस धारा के जल का उद्गम सनातन काल से चला आ रहा है, इसकी गति भी सनातन काल से इसी प्रकार अभग रही है और यह अनन्त काल से इसी प्रकार समुद्र मे जाकर मिलता रहा है वैसी ही स्थिति इस जीवन की है। यह अनादि काल से मूल शक्ति से उत्पन्न होता रहा है, सदैव क्रियाशील रहता रहा है और अन्त में अपने उसी मूल उद्गम विराट ब्रह्म में विलीन होता रहा है।

आकाश की नीलिमा सनातन काल से इसी प्रकार चली आ रही है, उसी प्रकार जीवन का विकास भी इसी आकाश के समान सदैव विस्तृत रहा है।

चन्द्रमा की चाँदी के समान उज्ज्वल यह चाँदनी अनादि काल से ऐसी ही रही है उसी प्रकार यह जीवन भी अनादि काल से आनन्द और उल्लास से भरा रहा है। जल की लहरें सनातन युग से इसी प्रकार क्रीडा करती आ रही हैं उसी प्रकार यह जीवन भी अनादि काल से अपनी क्रीडाओं मे व्यस्त रहा है।

हे जगत के जीवन के कर्णधार! जन्म और मरण रूपी दो किनारो के बीच जीवन-नौका का यह विहार सनातन काल से इसी प्रकार होता चला आया है। मैं अपने आत्मज्ञान को—अपनी वास्तविक सत्ता को भूल गया था। जल के समान ही जीवन का यह सनातन प्रमाण अब मुझे अपनी अमरता का ज्ञान प्रदान कर रहा है। अर्थात् मैं भी इस जल के समान ही सदैव अमर रहने वाला हूँ।

(१) इस अन्तिम छन्द मे उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ कवि ने जीवन के अमरत्व के प्रति अपनी दृढ आस्था प्रकट की है जो 'परिवर्तन' वाली आस्था से नितान्त भिन्न, शक्तिदायिनी और उल्लास-प्रदायक है।

(२) सम्पूर्ण कविता में प्रकृति के अनेक संश्लिष्ट मनोरम चित्र हैं।

(३) अन्तिम छन्द पाठक को प्रकृति के उस मनोरम प्रागण से दूर भटका कर आध्यात्मिक की गहन-वीथियो में भटका देता है। यदि इस कविता में से इस अन्तिम छन्द को हटा दिया जाय तो यह कविता अपनी उत्कृष्ट कला एव प्रकृति के संश्लिष्ट मनोरम चित्रों के कारण विश्व की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में स्थान पाने की पूर्ण अधिकारिणी बन जायेगी। यह आध्यात्मिक चिन्तन पाठक की प्रारम्भिक सम्पूर्ण रसानुभूति में भयङ्कर व्याघात उत्पन्न करने वाला है।

१७. अप्सरा

इस कविता में कवि ने अप्सरा सम्बन्धी विभिन्न कल्पनाओं का अत्यन्त कलापूर्ण अंकन किया है।

निखिल कल्पनामयि .... विचित्र अपार!

शब्दार्थ—विस्मयाकार=साकार आश्चर्य। अकथ=अवर्णनीय । गूढ= रहस्यमयी। निरर्थ=अर्थहीन । कुहकिनी=मायाविनी । विभ्रममयि=भ्रम उत्पन्न करने वाली।

भावार्थ—कवि अप्सरा को सम्बोधन कर कह रहा है कि—

हे अप्सरा ! तुम सम्पूर्ण कल्पनाओ से परिपूर्ण और समस्त आश्चर्यों का साकार सा रूप हो। तुम्हारा रूप अवर्णनीय, अलौकिक, अमर, अदृश्य और मानव की सम्पूर्ण भावनाओ का आधार है। तुम रहस्यमय, अर्थहीन, असम्भव और अस्पष्ट भेदो की शृगार हो। अर्थात् ससार के जितने भी ऐसे रहस्य हैं उनके द्वारा तुम्हारा निर्माण हुआ है। तुम मे ये सारी विशेषताए मिलती हैं।

(१) अप्सरा युग-युगान्तरो से चली आती हुई कवियो की मनोहर कल्पनाओ का साकार समष्टि रूप है। कवियो ने सौन्दर्य के सम्पूर्ण ज्ञात-अज्ञात रहस्यो द्वारा अप्सरा की काल्पनिक सृष्टि की है।

शैशव की तुम - नीरव गान !

शब्दार्थ—सहचरि=साथिन।

भावार्थ—तुम वच्चो को जानी-पहिचानी हुई सगिनि हो। अर्थात् वच्चे तुमसे परिचित होते हैं। (वच्चो को परियो की कहानियाँ वचपन से ही सुनने को मिलती हैं इसलिए अप्सरा—परी—वच्चो की परिचित साथिन वन जाती है।) ससार के छल-छन्दों से पूर्ण रूपेण अनजान दुधमुँहे वच्चे के साथ तुम छिप-छिप कर सदैव रहती हो। माँ का अनुमान यह है कि परियाँ दुधमुँहे वच्चो की देखभाल करती रहती हैं। वच्चा जव मुँह में अपना अँगूठा डाल कर चूसता है तो तुम उस अँगूठे के रूप में अपना स्तन उसके मुँह मे देकर उसे अमृत का पान कराती हो और मौन रूप से गीत गा-गाकर, अज्ञात रूप से थपकी दे-देकर उसे सुलाती हो।

तन्द्रा के छाया पथ . . रूपाभास !

शब्दार्थ—तन्द्रा=नीद। सविलास=क्रीडा पूवक। रूपाभास=रूप का आभास, कल्पना।

भावार्थ—जब बच्चे सोते हैं उस समय तुम निद्रा के छाया के समान अस्पष्ट पथ से क्रीडापूर्वक उनके हृदय में प्रवेश कर उनके अध खुले फूल जैसे अधरो पर रगीन स्वप्नों का हास्य बिखेर देती हो। (छोटे बच्चे सोते-समय मन्द-मन्द मुस्काने लगते हैं।) अबोध छोटे बच्चे युगों से चली आ रही दन्त कथाओ के रूप मे तुम्हारा विचित्र इतिहास सुन-सुन कर (परियो की कहानियाँ सुन-सुन कर) अपने भोले नेत्रों में नित्य कल्पना द्वारा तुम्हारे रूप की रचना करते रहते हैं। अर्थात् तुम्हारे रूप के सम्बन्ध मे नित्य नई-नई कल्पनाएं किया करते हैं।

प्रथम रूप .... . द्युति स्फार।

शब्दार्थ—उन्मद = उन्मत्त। उद्दाम = प्रखर। अभिराम = सुन्दर। प्रतियाम = पतिपल। छवि धाम = सौन्दर्य का आगार। तड़ित = बिजली। सुर-सभा = इन्द्र सभा। सुरधनु = इन्द्रधनुष। छायापट = वस्त्र। द्युति = कान्ति।

भावार्थ—यौवन के आगमन पर रूप रूपी मदिरा के नशे से उन्मत्त बनी प्रियतमा के हृदय में यौवन प्रबल वेग से लहराने लगता है उस समय तुम उसके अग-प्रत्यग से लिपटी हुई सुन्दर लगती हो। अर्थात् यौवनागम के समान प्रियतमा के अग-प्रत्यग सुन बन उसे अप्सरा का रूप प्रदान कर देते हैं। तुम युवतियों के हृदय मे रहस्य का रूप धारण कर प्रतिपल उसके मन को हरती रहती हो। अर्थात् युवतियाँ तुम्हारे रहस्यमय सौन्दर्य की कल्पना कर सदैव तुम्हारा ध्यान करती रहती हैं कि काश वे तुम्हारे ही समान सुन्दर हो। तुम्हारी कल्पना कर वे पुलक से भर उठती हैं और उनकी लता जैसी छरहरी कोमल देह अग-प्रत्यग रूपी कोमल पुष्पो से लद कर सौन्दर्य की साकार प्रतिमा बन जाती है। अर्थात् तुम्हारी कल्पना ही उनमे सौन्दर्य का स्फुरण करती है। तुम इन्द्रलोक (स्वर्ग) मे पुलकित होकर अपने नन्हे से हल्के पगो से नृत्य करती हो और अपनी बिजली के समान एकाएक चमक उठने वाली आश्चयपूर्ण चितवन से देवताओ की ओर दृष्टिपात कर सारी देव-सभा को चचल बना देती हो। अर्थात् तुम्हारे बिजली के समान कटाक्षो से सारी देव-सभा व्याकुल हो उठती है। तुम अपनी नगी देह कर इन्द्रधनुष

के से चमकीले रंगों वाला झीना कोमल वस्त्र धारण कर अपनी वेणी में कुन्द का उज्ज्वल कान्ति वाला फूल खोस लेती हो। मानो आकाश रूपी नीली वेणी में चन्द्रमा रूपी उज्ज्वल कान्ति वाला कुन्द का पुष्प लगा हुआ हो।

स्वर्गंगा में जल . सरसिज माल!

शब्दार्थ—मृणाल=कमल नाल। मराल=हंस। उडु-बाल=तारो के बच्चे। द्युति=कान्ति। सरसिज माल=कमलो की माला।

भावार्थ—हे मृणाल जैसी सुन्दर बाहुओ वाली! जब तुम स्वर्ग की गंगा (आकाश गंगा) में जल-क्रीडा करती हो, स्नान करती हो तो ऐसा प्रतीत होता है मानो जल की लहरो मे चन्द्रमा के सैकडो प्रतिबिम्ब रूपी रुपहले हंस तुम्हारी उन मृणाल सदृश्य भुजाओ को पकड कर तैर रहे हो। (यहाँ चन्द्रमा के सैकडो प्रतिबिम्ब सफेद हंसो के समान है।) जब तुम अपनी मृणाल बाहुओ से जल मे हलचल मचाती हो और उससे जो झाग उत्पन्न होते हैं वही मानो आकाश मे उड-उड कर नन्हें तारे बन जाते है। तुम्हारी सुन्दर देह की कान्ति ही मानो चंचल लहरो मे लहराती हुई कमलो की माला का रूप धारण कर लेती है।

रवि छवि चुम्बित हो नित पार!

शब्दार्थ—रवि छवि=सूर्य किरण। अंक=हृदय। तडित=बिजली। नागदन्त=सर्प दन्त। नत=झुका हुआ।

भावार्थ—तुम सूर्य किरणो से प्रकाशित चंचल बादलो पर, आकाश के दूसरी ओर, बिजली की कडक से हिरण के कोमल बच्चे के समान भयभीत चन्द्रमा को अपने हृदय से लगा लेती हो और आकाश मे चंचल तारो के रूप मे अपने चरणों पर हल्का भार देती हुई चल कर अपने पग-चिह्नो को छोड, सर्पदन्त के समान नीचे झुके इन्द्रधनुष रूपी पुल को नित्य पार करती हो। (सर्पदन्त धनुष के समान वक्राकार होता है।)

कभी स्वर्ग की कला अराल!

शब्दार्थ—वसुधा=पृथ्वी। प्रवाल=मूंगा। सरसी=सरोवर, बावडी। मनोज=कामदेव, सुन्दर। मराल=हंस। अराल=तिरछी।

भावार्थ—हे अप्सरा ! पहले कभी तुम स्वर्ग की निवासिनी ही मानी जाती थी। परन्तु अब इस धरती पर बालिकाओ के रूप मे उतर आई हो। (छोटी-छोटी बालिकाएँ परियो सी प्रतीत होती हैं। कभी-कभी सुन्दरी नारियो को भी अप्सरा कह दिया जाता है।) भाव यह है कि अब तुम इस धरती पर सुन्दर बालिकाओ और नारियो का रूप धारण कर उतर आई हो। जैसे किसी अद्भुत वस्तु को देख बच्चों के नेत्र आश्चर्य से खुले रह जाते हैं उसी प्रकार सारा संसार तुम्हारे इस मानवी सुन्दर रूप को देख विस्मय भर मूँगे के समान आँखें फाडे देखता रह जाता है। तुम बाल-युवतियो अर्थात् वयः सन्धि की अवस्था वाली युवतियो के हृदय रूपी सरोवर मे कामदेव रूपी हस को चुगा देकर अर्थात् काम-भावना उत्पन्न कर उन्हें रोमाचित हो मधुर रूप से हँसना तथा चितवन को तिरछी कर कटाक्ष करने की कला सिखलाती हो। (यौवन का उदय होते ही युवतियाँ रोमाचित होना, आकर्षक रूप मे हँसना तथा कटाक्ष करना सीख जाती है।)

तुम्हें खोजते छाया .. कवि भ्रात।

शब्दार्थ—तपक = तपाक से। इगित = सकेत। मधुप = भ्रमर। भ्रात = भाई।

भावार्थ—अब भी प्रसिद्ध कवि गण तुम्हे अपनी कल्पनाओ के छाया के समान अस्पष्ट वनो मे खोजते हैं। अर्थात् अस्पष्ट मधुर कल्पनाओ द्वारा तुम्हारे रूप का अकन करते हैं। जब रात्रि के प्रहरी जुगनूँ रात भर जग-जग कर पहरा देने के बाद प्रात होने पर सदैव के समान सो जाते हैं उस समय लहर प्रात कालीन पवन से सिहर कर, चचल होकर और वृक्ष मर्मर ध्वनि कर अचानक, अज्ञात रूप से चमक उठने वाली बिजली के समान चचल हो उठते हैं। उस समय अब भी सहयोगी कवियो के समान भ्रमर अपनी गुंजार द्वारा तुम्हारे आगमन का सकेत देते हैं।

(१) अप्सरा सौन्दर्य और जीवन की प्रतीक मानी गई है। प्रात कालीन उत्पन्न नवजीवन की लहर और सौन्दर्य का साम्राज्य इसी कारण अप्सरा की ओर सकेत करता प्रतीत होता है।

गौर श्याम तन · · ·· सिराती गात !

शब्दार्थ—गौर-श्याम=गोरा सांवला। प्रभा-तम=प्रकाश और अन्धकार। भगिनी-भ्रात=बहन-भाई। सजात=एक ही वंश के। मसृण=चिकना। छायाचल=छाया के समान झीना, अस्पष्ट वस्त्र। तन्वि=छरहरे शरीर वाली। सूत्र=डोरा, धागा। कंचु=कंचुकी, चोली। सिराती=शीतल करती।

भावार्थ—गोरे और सांवले सगे भाई-बहन के समान प्रकाश और अन्धकार रूपी दिन और रात तुम्हारे छरहरे शरीर के लिए कोमल, रेशमी झीना वस्त्र तैयार करते हैं। अर्थात् तुम्हारा वस्त्र सफेद और काले रंग के कोमल रेशमी धागो द्वारा बुना हुआ और अत्यन्त झीना-पतला है। दिन और रात का प्रकाश और अन्धकार ही तुम्हारा झीना रेशमी वस्त्र है। प्रातःकाल अपनी सुनहरी आभा रूपी धागों (सूर्य किरणो) से रुपहली चंचल रेखाएँ खींच-खींच कर (उज्ज्वल सफेद प्रकाश विकीर्ण कर) तुम्हारे लिए कंचुकी काढती हैं। अर्थात् उस पर सुनहरी और रुपहली काम करती हैं। तितलियाँ अपने रंग-बिरंगे रेशम जैसे कोमल पंखो को डुला-डुला कर तुम्हारे शरीर को शीतलता प्रदान करती हैं।

तुहिन बिन्दु में · मौनालाप !

शब्दार्थ—तुहिन बिन्दु=ओस की बूँदें। रश्मि=किरण। मुकुल=पुष्प। चटुल=चंचल। मलय=मलयानिल। जलजो=कमलो।

भावार्थ—तुम ओस की बूँदो मे चन्द्र-किरण के समान चुपचाप सोती रहती हो। तुम पुष्पो की शय्या पर निद्रामग्न हो स्वयं ही अपनी अनुपम छवि का स्वप्न देखती रहती हो। चंचल लहरो का स्पर्श कर चंचल बना हुआ मलय-पवन मन्द-मन्द पग रखता हुआ, मधुर स्वर के साथ प्रवाहित होता रहता है। तुम उसी के रूप मे कमल-कोश मे सोए भ्रमरो के साथ मौन भाषा मे वार्तालाप करती हो। प्रातः मलय पवन चलने लगता है और कमल-कोश में निद्रित भ्रमरो को चुपचाप जाग्रत होने का मूक सन्देश देता है।)

नील रेशमी तम . .... सी सुकुमार !

शब्दार्थ—कचभार=बालो का जूडा । विकच=खिले हुए । शशिकर=चन्द्रकिरण । सरसी=बावडी । अभिसार=प्रणय-क्रीडा । शारद=शरद ऋतु की । ज्योत्स्ना=चाँदनी ।

भावार्थ—तुम नीले रेशमी अन्धकार रूपी कोमल सुन्दर बालो का जूडा खोल कर चचल तारो से अकित अपने आँचल को लहरा-लहरा कर और खिले या साकार स्वप्नो के समान अपने उन्मुक्त स्तनो पर तारो का सुन्दर हार लहराती हुई चन्द्र किरण के समान अपने नन्हे कोमल पग रखती आकाश रूपी बावडी मे प्रणय-क्रीडा करती हो । वह तुम्हारा रूप शरद पूर्णिमा की ज्योत्स्ना मे दूध के झाग के समान सुकुमार चाँदनी के समान प्रतीत होता है ।

मेहदी युत मृदु . .. .. दिशि वात !

शब्दार्थ—करतल=हथेली । कुसुमित=फूली हुई, सुगन्धित । गौर=गोरी । साभार=आभार सहित । शशि स्मित=चन्द्र की मुस्कान, चाँदनी । उर स्पन्दन=हृदय की फडकन । वीचि=लहर । पदचार=पद सचरण । विकच=खिले । पद्म=कमल । नवजात=शिशु । भृ गो=भौरो । जगज्जलधि=ससार-सागर । हिल्लोल=विशाल लहरें । विलोडित=उमडता हुआ । वात=पवन ।

भावार्थ—मेहदी से शोभित तुम्हारी कोमल हथेलियो से ससार का सम्पूर्ण शृगार सुगंधित और सौन्दर्यशाली है । तुम्हारे गोरे शरीर की कान्ति आभार सा प्रकट करती हुई बर्फ मे मडित पर्वत शिखरो पर बरसती रहती है । अर्थात् हिम-मडित पर्वत शिखर तुम्हारे गौर वर्ण से ही सुशोभित हैं । तुम्हारे तलवों की लालिमा ही उषा है । तुम्हारी पुलक भरी मुस्कान ही चन्द्रमा की चाँदनी बन बादलों को प्रकाशित करती है । तुम्हारे हृदय की मन्द-मन्द कोमल धडकन ही तारों का कम्पन अथवा झिलमिलाना है । तुम्हारे चरणो का नृत्य ही चचल लहरो का नृत्य है । तुम्हारे हृदय मे उठने वाले सैकडो भावो रूपी पखुडियो से शोभित प्रभात एक कमल पुष्प के समान है । तुम इस ससार मे ताजे खिले प्रथम सौन्दर्य के कमल के समान हो । अर्थात् तुम इस ससार में

सौन्दर्य उत्पन्न करने वाली हो। जिस प्रकार कमल खिलने पर असख्य भौंरे उस पर मँडराने और गूँजने लगते हैं उसी प्रकार तुम्हारे सौन्दर्य रूपी कमल पर असख्य सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि रूपी भ्रमर अज्ञात रूप मे गूँजते रहते हैं। तुम्हारे चन्द्रमा के समान मादक सौन्दर्य से इस सनार रूपी सागर में भयकर लहरें उमडने लगती है। सारी दिशाएँ और पवन तुम्हारी सुगन्धि से पागल हो जाते है। अर्थात् तुम्हारे रूप की गन्ध सवको मदमस्त वना देती है।

(१) यहाँ कवि प्रकृति के सम्पूरा रूपो में अप्सरा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य का ही प्रतिबिम्व देख रहा है। सौन्दर्य की यह व्यापकता अद्भुत है। यह नैसर्गिक सौदर्य ही जगत के सौन्दर्य का मूल है।

जगती के अनिमिष · दिनमान।

शब्दार्थ—अनिमिष = खुले। अम्लान = निर्मल, उज्जवल। विहान = प्रभात। दिनमान = सूर्य।

भावार्थ—तुम ससार के खुले पलको पर सुनहरी स्वप्न के समान अक्षय और सदैव उज्जवल वने रहने वाले यौवन के समान उदित हुई थी। भाव यह है कि जिस प्रकार हम जागते हुए भी किसी मधुर कल्पना मे डूब स्वप्न सा देखने लग जाते हैं, ससार ने तुम्हारी मधुर कल्पना उसी मानसिक स्थिति में की थी। साथ ही तुम अक्षय यौवन के समान सदैव निर्मल वनी रहने वाली हो। तुम्हारा रूप-यौवन कभी भी मलिन नही होता। तुम अपने चचल अचल (ब्राह्म मुहूर्त मे चलने वाली वायु से अभिप्राय है) को फहरा कर आगे आने वाले सुनहरे प्रभात की सूचना देती हो और तुम्हारे मुस्कान भरे मुख पर नवोदित सूर्य की नई प्रकाश भरी किरणें खेलने लगती हैं। अर्थात् तुम्हारी मुस्कान ही वाल-रवि की किरणो का उज्जवल प्रकाश है।

सखि! मानस के · भर मे लीन!

शब्दार्थ—मानस = मन। सुखमा = सौन्दर्य। ईप्सित = इच्छित।

भावार्थ—हे सखि! तुम सव के स्वर्ग के समान सुन्दर मन रूपी स्थान पर अपने शाश्वत सुख मे डूबी आसीन रहती हो। अर्थात् मानव अपने मन मे सदैव तुम्हारी सुखद कल्पना करता रहता है। तुम अपने ही सौन्दर्य मे अनुपम

हो अर्थात् तुम्हारा सौंदर्य अतुलनीय है और तुम अपने मन की रानी हो अर्थात् जो चाहती हो सो करती हो। हे रंगीली ! तुम प्रत्येक युग मे नए-नए रूप धारण कर सदैव आती रहती हो। अर्थात् प्रत्येक युग मे नए-नए प्रकार से तुम्हारी कल्पना की जाती रही है। हे अप्सरा ! देवता, मानव, मुनि आदि सभी तुम्हें प्राप्त करने की कामना करते रहे हैं। तुम तीनों लोकों मे व्याप्त हो।

अंग अंग अभिनव .. . ... पदचार।

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन। भृंगो=भ्रमरो। पृथु=पुष्ट। पदचार=नृत्य।

भावार्थ—तुम्हारा एक-एक अंग नए वसन्त के समान सुन्दर नवीन रूप मे शोभित और सुकुमार है तुम्हारी भृकुटियों की प्रत्येक भंगिमा नई-नई इच्छाओ रूपी भ्रमरो की गुंजार है। तुम्हारा पुष्ट वक्ष सैंकड़ो मधुर आकांक्षाओ के भार से धड़कता रहता है। तुम्हारा मन्द-मन्द नृत्य नवीन आशाओ रूपी कोमल पुष्पो मे चुम्बित है। अथवा जब तुम मन्द गति से चलती हो तब नवीन आशाओ रूपी कोमल पुष्प तुम्हारे चरणो का चुम्बन करते चलते हैं। अर्थात् तुम कोमल नवीन आशाओ का सृजन करती चलती हो।

निखिल विश्व ने . सुख में तल्लीन।

शब्दार्थ—निखिल=सम्पूर्ण। परिधान=वस्त्र, धारण। जरा=वृद्धावस्था। वारिधि=समुद्र। अतल=अथाह। मज्जित=स्नान करती। मीन=मछली। अपलक=तल्लीन।

भावार्थ—हे अप्सरा ! सम्पूर्ण विश्व ने अपना गौरव, महिमा और सुख-सौन्दर्य का दान कर तथा अपने तल्लीन हृदय की मधुर कल्पनाओ रूपी स्वप्नों से तुम्हारी प्रतिमा का निर्माण किया है। अर्थात् संसार ने अपनी सम्पूर्ण मधुर कल्पनाओ द्वारा तुम्हारा निर्माण कर तुम्हारे व्यक्तित्व मे अपूर्व गौरव, महिमा और सुख-सौंदर्य का समावेश कर दिया है। (अप्सरा वास्तविक न होकर कवियों की काल्पनिक सृष्टि है।) विश्व मे प्रति क्षण जितने भी विस्मय कारक कार्य होते रहते हैं और सम्पूर्ण दिशाओ मे जितनी भी प्रतिभा बिखरी पड़ी है, उन सबके सहयोग से तुम्हे सजाया गया है। अर्थात् सम्पूर्ण विस्मय और प्रतिभा द्वारा तुम्हे सजाया है। और इस प्रकार अपनी कल्पना और रहस्य

के आवरण मे तुम्हें अनायास ही छिपा दिया है। अर्थात् तुम्हारा रूप और व्यक्तित्व पूर्ण कल्पित और रहस्यमय वन गया है।

तुम ससार के सुख-दुख, पापो की गर्मी और इच्छाओ की ज्वाला से मुक्त हो। अर्थात् ये भावनाएँ तुम्हारे ऊपर अपना प्रभाव नही डाल पाती। तुम वीतराग हो, सासारिकता से पूर्णत मुक्त हो। वृद्धावस्था, जन्म, भय, मरण से तुम शून्य अर्थात् मुक्त हो। तुम्हारे ऊपर इनका कोई प्रभाव नही पडता। तुम सदैव नवीन यौवन से परिपूर्ण रहती हो, चिर यौवन की अधिकारिणी और भोक्ता हो। तुम इस विश्व रूपी सौन्दर्य के अथाह सागर मे स्नान करने वाली जीवन रूपी मछली के समान हो। अर्थात् सम्पूर्ण सौन्दर्य का उपभोग करने वाली हो। तुम अदृश्य और अस्पृश्य हो। अर्थात् निराकार स्वरूप हो। न तुम्हे कोई देख ही सकता है और न तुम्हारा स्पर्श ही कर सकता है। तुम सदव अपने सुख मे निमग्न बनी रहती हो।

(१) इस कविता मे कवि ने अप्सरा को पूर्णत काल्पनिक सृष्टि माना है। युगो से कवि अप्सरा के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते आए है। अप्सरा पूर्ण नारी सौन्दय की प्रतीक वन गई है। कवियो ने सौन्दर्य-विषयक अपनी सम्पूर्ण कल्पनाओ का उपयोग कर उसके काल्पनिक व्यक्तित्व ने ससार के समस्त सौन्दय को समाविष्ट कर दिया है। इसी कारण कवि उसके रूप सौन्दर्य को विश्व-व्यापी वना समार के सम्पूर्ण सौन्दर्य की जननी उसे ही मानता है। परन्तु वस्तुन वह पूर्ण काल्पनिक सृष्टि ही। एक प्रकार से कवि अप्सरा को अखिल सौन्दर्यमय निराकार ब्रह्म ही घोपित कर रहा है।

(२) इस कविता में कवि की सौन्दर्य-सम्वन्धी समस्त कल्पनाएँ अत्यन्त कलात्मक रूप धारण कर अभिव्यक्त हुई हैं। छायावादी काव्य-कला का पूर्ण निखार इस कविता मे दिखाई पडता है जो अत्यन्त मनोरम, प्रभावक और रजक है।

(३) यह कविता सन् १६३२ की रचना है। इस समय तक कवि पर छायावादी कला का पूर्ण प्रभाव रहा है। परन्तु इससे आगे को कविताएँ कवि के दृष्टिकोण मे एक नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन का पूर्वाभास देती है। कवि

छायावादी कल्पना के मनोरम काल्पनिक लोक से शनै शनै नीचे उतरता हुआ इस ससार के यथार्थ को अपनाता जा रहा है।

१८. पतझर

इस कविता में कवि प्राचीन रूढ़ियों तथा कुसस्कारो का विनाश कर प्रगति के नव-जीवन का आह्वान कर रहा है।

द्रुत झरो जगत के ... . में हो विलीन !

शब्दार्थ—द्रुत=शीघ्र । जीर्ण=सूखे, मुरझाए । त्रस्त-ध्वस्त=नष्ट-भ्रष्ट । शीर्ण=टूटे-फटे । पीत=पीले । मधुवात=वसन्त ऋतु की हवा । वीतराग=रस से विहीन, सूखे, जजर । पुराचीन=पुराने । च्युत=टूटे हुए ।

भावार्थ—कवि सूखे-मुरझाए वृक्ष के पत्तो को प्राचीन रूढियाँ और कुसस्कार मानता है। इसीलिए वह सूखे पत्तो के रूप मे इन्ही को अप्रत्यक्ष रूप से सम्बोधन कर रहा है।

हे ससार के सूखे-मुरझाए पत्तो ! तुम शीघ्र ही झड कर नीचे गिर पड़ो, नष्ट हो जाओ। तुम नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हो, तुम सूख और टूट-फूट चुके हो। तुम सर्दी और गर्मी का प्रकोप सह-सह कर पीले पड़ गए हो, तुम वसन्त ऋतु की वायु के आगमन की कल्पना कर भयभीत हो उठते हो। (वसन्त से पूर्व तेज हवा चलती है जिसमे पतझड होता है।) तुम वीतराग व्यक्ति के समान जीवन के सुख-दुख के प्रति निस्पृह बन चुके हो अर्थात् जीवन के प्रति तुम्हारी सम्पूर्ण आसक्ति समाप्त हो चुकी है। तुम्हारा रस और सौन्दर्य समाप्त हो तुम जड और पुराने पड चुके हो। इसलिए शीघ्र झड़ कर नीचे गिर पडो।

तुम भूतकाल के समान निर्जीव हो गए हो, तुम मरे हुए पक्षी के समान व्यर्थ हो। इसलिए यह ससार रूपी घोंसला तुम्हारे कलख और साँसो की गति से रहित हो शून्य बन चुका है। अर्थात् अब तुम में जीवन की शक्ति शेष नही रही है। तुम पक्षी के शरीर से गिरे हुए पखों के समान नीचे गिर-गिर कर आकाश में विलीन हो जाओ।

(१) यहाँ कवि अन्योक्ति का सहारा ले प्राचीन रूढियो को नष्ट हो जाने का सन्देश दे रहा है।

ककाल जाल . ... युग की प्याली ।

शब्दार्थ—नवल=नया । मंजरित=मजरियो से पूर्ण । पिक=कोयल ।

भावार्थ—पुराने पत्तो के झड जाने पर यह होगा कि—

वृक्षो की ककाल के समान सूनी शाखाओ में फिर नए खून का सचार होगा और लाल-लाल नए पत्ते उदय होंगे और नए पत्ते उगने पर वहाँ प्राणो के कलरव से गु जित नए जीवन की सघन मासल हरियाली छा जाएगी । (पत्तो के मर्मर सगीत से वृक्ष का जीवन पुन हरा-भरा बन जायेगा ।) भाव यह है कि पुरानी रूढियाँ नष्ट हो जाने पर ससार मे नव जीवन का नए सिरे से सचार होगा । मानव-जीवन में नई चेतना और स्फूर्ति भर उठेगी ।

ऐसा हो जाने पर जिस प्रकार वसन्तागम के साथ आम के वृक्ष मजरियो से लद जाते हैं और मतवाली कोयल पचम स्वर मे कूक उठती है उसी प्रकार विश्व नई चेतना से भर उठेगा और उसके प्राणो में नव-जीवन का मादक सगीत गूँजने लगेगा । कोयल के मादक स्वर के समान विश्व नवीन चेतना से भर जायेगा ।

(१) कवि पुराने जीवन के विनाश और नव-जीवन की कामना कर रहा है । उसका कहना है कि प्राचीन रूढ़ियाँ विश्व की प्रगति में बाधक हो रही हैं इसलिए उनका नष्ट हो जाना अच्छा है । ऐसा हो जाने पर ही ससार नव-जीवन की नवीन मान्यताओ का निर्माण कर प्रगति के पथ पर आगे बढ सकेगा ।

(२) यह कविता कवि के 'युगान्त' नायक सग्रह से ली गई है । इसमे कवि प्राचीन युग के अन्त और नवीन युग के प्रारम्भ की कामना कर रहा है । उसका स्वर प्रगतिशील है । इसी भावना का अधिक विकसित रूप हमे कवि के आगामी सग्रहो 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओ में अधिक वेग और दृढता के साथ प्रस्फुटित होता दिखाई पडता है । यही भावना हमें इस सग्रह की आगामी कविता 'गा, कोकिल' शीर्षक कविता मे अधिक प्रखर स्वर के साथ विकसित होती दिखाई पडती है ।

१६. गा, कोकिल

इस कविता मे कवि प्राचीन के ध्वस और नव-मानवता के निर्माण का कोकिल के माध्यम से आह्वान दे रहा है। वह प्राचीन से असन्तुष्ट हो एक नए ससार के निर्माण की कल्पना कर रहा है जिसमे मानव और मानवता का प्राधान्य होगा।

गा, कोकिल बरसा .. .. . नवल मानवपन !

शब्दार्थ—पावक = अग्नि। जीर्ण = सडा-गला। ध्वस भ्र श = नष्ट-भ्रष्ट।

भावार्थ—कवि काकिल को सम्बोधन कर कह रहा है कि—

हे कोकिल ! तू ऐसा गीत गा जिससे अग्नि की चिनगारियो की वर्षा हो। अग्नि की उस वर्षा से अन्ध रूढियो से ग्रस्त सडा-गला पुराना युग नष्ट-भ्रष्ट हो जाय, ससार को अपने जड बन्धन मे बाँधे रखने वाली प्राचीन मान्यताएँ समाप्त हो जाएँ। तेरे गीत की अग्नि-वर्षा से हुए विध्वस। के साथ नवीन युग पग बढ़ाए हुए आए जिससे नवीन मानवता का विकास हो।

गा, कोकिल भर स्वर .. ... . मे तत्क्षण !

शब्दार्थ—पर्ण = पत्ते। घन = सघन। नीड = घोसला। गत = विगत, रहित।

भावार्थ—हे कोकिल ! तू अपने स्वरो मे ऐसा कम्पन भर कर गा जिससे तूफान सा आ जाय और तेरे स्वरो के उस तूफान मे जाति, कुल, रग आदि रूपी सघन पत्ते झड कर नीचे गिर पड़ें। अर्थात् जाति कुल और रग के अभिमान के कारण उत्पन्न भेद-भाव की भावना पूर्णत नष्ट हो जाय। और प्राचीन रूढियो के अन्धकार से भरे घोसले (ससार) से प्राचीन रूढियाँ छन-छन कर नीचे गिर पडे, नष्ट हो जाँय। व्यक्ति और राष्ट्र राग-द्वेष और युद्ध की भावनाओ से मुक्त हो जाँय। और पुराने राग-द्वेष की भावनाओ को तुरन्त भूल परस्पर प्रेम और आनन्द से रहने लगें।

गा, कोकिल, गा, कर .... सब जन !

भावार्थ—हे कोकिल ! तू निरन्तर गाती रह। चिन्तन मत कर, सोच-विचार मत कर। तू अपने गीत से पत्तो के शरीर मे नवीन रक्त का संचार कर

और उनके जीवन में नवीन स्नेह की सुगन्धि से नव यौवन भर दे। तू ससार के इस नवीन जीवन मे नई आशाओ और मान्यताओं रूपी मजरियाँ खिला दे जिनका मधु पी-पी कर सब लोग नव-जीवन के उन्माद से भर भ्रमरो के समान गुंजार कर उठें।

गा, कोकिल नव गान .. . . जीवन यापन!

भावार्थ—हे कोकिल! तू नए गीत रच कर उन्हे गा। तू अपने इन नए गीतो द्वारा मनुष्य के कल्याण के लिए उनके मन को नवीन भावनाओ से भर दे जिससे उनकी वाणी, वेश और भाव नवीन शोभा से भर जाँय। स्नेह, सहृदयता की भावनाएँ उनकी अक्षय निधि बन जाँय अर्थात् सम्पूर्ण मानव परस्पर स्नेह और सहृदयता के साथ रहने लगें और इस प्रकार मनुष्य नया जीवन बिताने लगें।

गा, कोकिल सन्देश . हों दिशि क्षण!

शब्दार्थ—स्फुलिग = चिनगारी। नश्वर=नाशवान। मुकुलित हो=खिल उठें।

भावार्थ—हे कोकिल! तू उसी सनातन सन्देश के गीत गा कि मानव अमर है। तू यह सन्देश दे कि मानव उस दिव्य चिरन्तन ब्रह्म का ही अश है। वह रज कण के समान नष्ट हो जाने वाला यह मानव-शरीर मात्र नही है। भाव यह है कि नाशवान शरीर ही मानव का रूप नही मानव का वास्तविक रूप तो उसकी अमर आत्मा है। देश और काल के बन्धन उसकी गति को नही रोक सकते। मानव का सच्चा परिचय तो मानवता ही है। इसलिए हे कोकिल! तू ऐसे गीत गा जिसे सुनकर सारी दिशाएँ और सारे युग मानवता के रूप मे खिल उठें। अर्थात् सदैव मानवता का महत्व बना रहे।

(१) यहाँ कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण पहली बार अपने वास्तविक रूप में उभर कर आ रहा है। अभी तक वह किसी सिद्धान्त-विशेष से बँध नही पाया है इसलिए उसका स्वर उदात्त और आदर्शवादी है। वह केवल प्राचीन के विध्वस और नवीन के निर्माण द्वारा मानवता का उद्धार करने का आकाक्षी है। यह उद्धार कैसे हो सकेगा, अभी कवि इस सम्बन्ध मे मौन है। उसके स्वर मे प्रखरता आती जा रही है।

२०. सृष्टि

मिट्टी का गहरा · · ··· · सागर अपार ।

शब्दार्थ—स्कन्ध-मूल=वृक्ष का तना और जड़। हरीतिमा=हरियाली । ससृति=सृष्टि । वट=बरगद । पादप=वृक्ष ।

भावार्थ—मिट्टी के नीचे घना अन्धकार है और उस अन्धकार मे एक वीज छिपा हुआ है। वह वीज न तो उस अन्धकार मे खो पाया है—नष्ट हो पाया है और न गल कर मिट्टी ही वना है। अर्थात् पूर्ण रूप से सुरक्षित है। वह वीज कोदो (एक प्रकार का चावल जैसा अनाज जिसके दाने वहुत छोटे और गोल होते है।) और सरसों के दाने से भी बहुत छोटा है। उस वीज के छोटे से हृदय मे विशाल वृक्ष की शाखाएं, पत्ते, तना, जडें, गहरी, घनी हरियाली का एक पूरा ससार, अनेक प्रकार के रूप, रग, फूल और फल आदि छिपे हुए हैं। अर्थात् उस वीज से ही एक हरा-भरा विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है। वह वीज अपनी मुट्ठी मे वरगद के वृक्ष का विशाल आकार छिपाए हुए है। उसके भीतर हरियाली का एक पूरा ससार छिपा हुआ है, एक महान आश्चर्य छिपा हुआ है। वह वीज सचमुच अपने बूंद जैसे लघु शरीर मे हरियाली का एक अपार सागर छिपाए हुए है।

बन्दी उसमे जीवन ·· ·· ·· वह तुच्छ बीज ?

शब्दार्थ—निखिल=सम्पूर्ण । सत्व=सत्ता, आस्तित्व । सृजन रहस्य=सृष्टि, उत्पत्ति का रहस्य । पोत=निवास स्थान, घर, बच्चा ।

भावार्थ—उस वीज मे जीवन का अकुर छिपा हुआ है जो सम्पूर्ण सासारिक वन्धनो को तोड़ अपनी सत्ता—वन्धन से मुक्ति—को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। वह अपनी जड वना देने वाली निद्रा को त्याग चेतन वनने के लिए प्रयत्न कर रहा है। कवि कहता है कि अदृश्य मे छिपे हुए सृजन के इस रहस्य को कोई भी नही जान सका है। वह क्षुद्र सा वीज अनन्त सृजन-शक्ति का निवास स्थल है। अर्थात् उस नन्हे से वीज मे सृजन की अपार शक्ति भरी हुई है। वह संसार के जीवन से ओत-प्रोत है। अर्थात् उसमे निहित इस सृजन-शक्ति से ही संसार का निर्माण होता है।

मिट्टी के गहरे अन्धकार के बीच एक बीज सोया हुआ है। किन्तु उस बीज का प्रकाश अर्थात् उसकी सृजन शक्ति स्वय उसके भीतर ही छिपी हुई है। वह छोटी सी वस्तु बीज अमर है। अर्थात् उसका विनाश कभी नही होता।

(१) 'पोत'—इसका एक अर्थ बालक भी है। यह शब्द सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी उस पौराणिक कथा की ओर सकेत करता प्रतीत होता है जिसके अनुसार महर्षि माकण्डेय ने वट वृक्ष के पत्ते पर एक बालक—ब्रह्म के साकार रूप को अपने पैर का अगूठा चूमते लेटा हुआ देखा था।

(२) नन्हे से क्षुद्र बीज से विशाल वट वृक्ष के जन्म की बात कह कर कवि साकेतिक रूप से अव्यक्त ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति की ओर रहस्यात्मक सकेत करता प्रतीत हो रहा है।

(३) इस कविता का दूसरा भाव यह भी लिया जा सकता है कि ससार मे कोई भी छोटी से छोटी चीज भी क्षुद्र नही होती। ससार के कण-कण मे सृजन की अपार शक्ति ओत-प्रोत है। ससार मे न कोई छोटा अर्थात् महत्व-हीन और न कोई बडा अर्थात् महत्वशाली होता है। यहाँ कवि तथा कथित महत्वशाली शासको द्वारा साधारण मनुष्य अर्थात् जनता को क्षुद्र समझने की प्रवृत्ति की ओर सकेत कर यह कहता प्रतीत हो रहा है कि जनता के जन-जन मे सृजन की अपार शक्ति ओत-प्रोत है। अत जनता को क्षुद्र समझना भूल है।

(४) यह कविता सन् १९३५ की है जब कवि पर प्रगतिवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव पड रहा था। इसी कारण इसमे जनता में छिपी अपार शक्ति के प्रति कवि की गहरी आस्था मुखरित हो उठी है।

२१ मानव

इस कविता में कवि छायावाद के काल्पनिक लोक से नीचे उतर कर मानव के सौन्दर्य-गान मे तल्लीन दिखाई देता है। उसका दृष्टिकोण भौतिक बन गया है। उसने कल्पना के लोक मे उडना त्याग भौतिक जीवन के महत्व को समझा है।

सुन्दर हैं विहग ... . रूप-रग ।

शब्दार्थ—वेष्टित = घिरा हुआ । पुरोह = अकुर । निखिल = सम्पूर्ण ।

भावार्थ—कवि मानव की वन्दना करता हुआ कहता है—

पक्षी सुन्दर है, फूल सुन्दर है, परन्तु हे मानव ! तुम इन सबसे अधिक सुन्दर हो । ससार सम्पूर्ण सौन्दर्य का-सार लेकर तुम्हारा निर्माण किया गया है । तुम इस सम्पूर्ण सृष्टि मे अनन्य और चिर सौदर्य के अधिकारी हो । तुम्हारा शरीर अग्नि के समान शक्तिशाली यौवन से ओत-प्रोत है । तुम्हारी त्वचा (चमडी) कोमल है और तुम्हारे अग सौन्दर्य के अकुर है । अर्थात् तुम्हारे अगो से ही ससार के समस्त सौन्दर्य की उत्पत्ति हुई है । (कविगण मानव के विभिन्न अगो की उपमा ससार की सुन्दरतम् वस्तुओ से देते आए है ।) तुम्हारे इन अगो के सौन्दर्य पर समस्त प्रकृति के छाया और प्रकाश से उत्पन्न विभिन्न रूप-रगो वाले समस्त सौदर्य को न्योछावर किया जा सकता है । अर्थात् तुम समस्त प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य से भी अधिक सुन्दर हो ।

धावित कृश .. .. . नख-शिख शोभन !

शब्दार्थ—धावित = प्रवाहित । कृश = पतली । लावण्य-लोक = सौन्दर्य का ससार । निसर्ग = प्रकृति । पृथु = विशाल । उर = वक्ष । सरोज = कमल । प्रलम्ब = दीर्घ । पीनोरु = पीन + उरु = पुष्ट, मोटी जघाएं । स्कन्ध = तना । जीवन-तरु = जीवन रूपी वृक्ष ।

भावार्थ—तुम्हारी पतली नीली शिराओ (नसो) मे शराब से भी अधिक मादक—स्फूर्ति की उत्तेजना और शक्ति उत्पन्न कर देने वाला रक्त प्रवाहित हो रहा है । तुम्हारी आँखें सौन्दर्य के दो ससारो के समान सुन्दर है । तुम्हारे स्वरो मे सगीत की नैसर्गिक मधुरिमा ओतप्रोत रहती है । तुम्हारा वक्ष विशाल और पुष्ट है । (यहाँ मानव का वर्णन करते-करते कवि का ध्यान मानव से उचट कर नारी पर जा पहुँचता है और वह नारी का वर्णन करने लगता है ।) नारी के वक्ष रूपी सरोवर मे उसके दोनो उरोज (कुच) कमल के समान खिले शोभायमान है । (इसके उपरान्त कवि पुन. मानव का वर्णन करने लगता है ।) हे मानव ! तुम्हारी सशक्त लम्बी भुजाएं प्रेम के दृढ बन्धन के समान सशक्त और दीर्घ हैं । (प्रेम का बन्धन सर्वाधिक दृढ माना जाता है ।) तुम्हारी

सबल जघाएँ जीवन रूपी वृक्ष के तने के समान हैं। अर्थात् तने के समान तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर का भार सम्हाले रहती हैं। तुम्हारे हाथ, पैर, उँगलियाँ सब कुछ सुन्दर हैं। अर्थात् तुम्हारा नख से लेकर सिर तक का सौन्दर्य अपूर्व है।

यौवन की मांसल स्वभाव-पूर्ति !

शब्दार्थ—मासल=प्राणवान। युग्मो=जोडा। जीवनोत्सर्ग=जीवन का उत्सर्ग। अखिल=सम्पूर्ण। आशाभिलाषा=आशा=अभिलाषा। उद्यम=परिश्रम, प्रयत्न। अजस्र=अबाध। असद्-सद्=बुराई-भलाई, पाप-पुण्य। भूतियाँ=ऐश्वर्य। अमन्द=निर्मल, अनन्त। पार्थिव=लौकिक। स्वभाव-पूर्ति=भावो को पूर्ण करने वाली।

भावार्थ—हे मानव ! तुम्हारे शरीर मे यौवन की प्राणवान—स्फूर्ति प्रदायक—और स्वस्थ गन्ध ओतप्रोत है। इसी से आकर्षित हो नए जोडे—नव विवाहित पति-पत्नी—परस्पर एक दूसरे के लिए अपने जीवन का उत्सग कर देते हैं। तुम्हारे इस प्रथम-प्रेम के स्वर्ग के समान मधुर पारस्परिक आत्म-समर्पण मे कितना अनन्त आनन्द और समस्त मधुरिमा ओतप्रोत रहती है। तुम्हारे हृदय मे कितनी आशा-अभिलाषाएँ, उच्चाकाक्षाएँ, अबाध गति से परिश्रम करते रहने की भावना और शक्ति, विघ्नो पर विजय प्राप्त करने की दृढ़ आस्था और कामना, विश्वास, भले बुरे की पहचान करने की विवेक शक्ति, दृढ श्रद्धा और सत्य के प्रति अटूट प्रेम है। सहृदयता, त्याग, सहानुभूति की दिव्य मानसिक अनन्त विभूतियो के तुम स्वामी हो। ये ही दिव्य विभूतियाँ इस भौतिक सभ्यता की आधार-स्तम्भ है। इन्ही से स्वर्गीय सस्कृति का निर्माण होता है और ये ही मानव की सम्पूर्ण कामनाओ की पूर्ति करने वाली हैं। अर्थात् ये मानव की स्वभाव-सिद्ध सम्पत्ति हैं। (यहाँ कवि उपर्युक्त गुणो को मानव सभ्यता और सस्कृति का आधार-स्तम्भ मानता है।)

मानव का मानव पर तुम मानव।

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास। कमी=अभाव।

भावार्थ—मानव परस्पर एक दूसरे से परिचय प्राप्त कर परस्पर विश्वास रखता है। और यहाँ विश्वास मानवता के विकास का मूल रहस्य है। हे

मानव ! तुमने ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में नई खोजें की हैं और सीखा है कि सब एक हैं और सब में उसी एक दिव्य अखड सत्ता की ज्योति चेतना उत्पन्न करने वाली है। हे मानव ! तुम्हें प्रभु का अनन्त वरदान प्राप्त है। अर्थात् भगवान् ने बुद्धि के रूप में तुम्हें ऐसा वरदान दे दिया है जिसके द्वारा तुम सब शक्तिशाली बन गए हो। तुम प्रति क्षण अपने इस बुद्धि रूपी वरदान से उपलब्ध नई-नई विभूतियो का उपभोग करो। तुम्हे तीनो लोको मे किस बात की कमी रह सकती है यदि तुम मानव बने रह सको—दैत्य न बनो। भाव यह है कि यदि मनुष्य मानवता के कवि द्वारा वर्णित गुणो को सदा अपनाता रहे, सच्चे अर्थों में मानव बना रहे तो इस ससार मे उसे किसी भी बात की कमी नही रह सकती।

(१) यह कविता कवि के चिन्तन में हुए स्वस्थ परिवर्तन की परिचायक है। कवि छायावाद की काल्पनिक-दार्शनिक दुनियाँ का मोह त्याग यथार्थ जगत की अदम्य शक्ति और सौन्दर्य से प्रभावित हो उठा है। कवि के इस यथार्थवादी दृष्टिकोण ने ही उसे प्रगतिशील बनाया था। इसमे आल्हाद का स्वर अपने संपूर्ण सौन्दर्य के साथ झकृत हो रहा है। अतीत का निराशावादी कवि आशा और विश्वास से भर उद्बोधन-गीत गा उठा है।

(२) इस कविता का वास्तविक महत्व तभी समझा जा सकता है जब इसे कवि की 'वीणा-ग्रन्थि-पल्लव' युग की काल्पनिक सौन्दर्य और निराशा से भरी कविताओं के साथ रख कर पढ़ा जाय।

२२ ताज

इस कविता में कवि का मानवतावादी स्वर और अधिक वेग के साथ प्रस्फुटित हुआ है। सौन्दर्य का अमर प्रतीक ताज अपने समस्त सौन्दर्य की शक्ति से भी कवि को प्रभावित करने मे असमर्थ रहा है। कवि का दृष्टिकोण मार्क्स-वादी हो गया है। इसीलिए वह सामन्तशाही के प्रतीक ताजमहल को हेय दृष्टि देखता है।

हाय ! मृत्यु का ... . छाया से रति !

शब्दार्थ—अपार्थिव=अलौकिक। विषण्ण=दुखी। स्फटिक-सौध=सग-

मरमर का महल । मरण = मृत्यु । क्षुधातुर = भूख से व्याकुल । वास = निवास, घर । रति = प्रेम ।

भावार्थ—कवि एक ओर ताज के सौन्दर्य तथा दूसरी ओर भूखी, व्याकुल, दर-दर भटकती जनता की करुण दशा को देख क्षुब्ध हो पुकार उठता है—

हाय ! जब ससार के जीवित प्राणी मानव दुखी और निर्जीव पड़े हों अर्थात् जब जनता भूखी, दुखी और शक्तिहीन हो रही हो उस समय मृत्यु के ऐसे अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित दिव्य पूजा करना कितने बड़े दुख की बात है । मरे हुए मानव का तो सगमरमर के महल में रख कर उसका शृगार किया जाय अर्थात् शव को सगमरमर के महल में रख कर उसका शृगार किया जाय और जो प्राणी जीवित हैं वे नगे, भूख से व्याकुल और बिना घर के इधर-उधर भटकते फिरें । यह कहाँ का न्याय है ! रे मानव । तूने जीवन के प्रति आखिर विरक्ति की ऐसी भावना क्यो अपने मन मे उत्पन्न कर रखी है कि तू आत्मा का तो अपमान करता है और प्रेत और छाया से प्रेम । अर्थात् तू जीवित मनुष्यो की उपेक्षा कर मरे हुए प्राणियो के प्रति इतना प्रगाढ प्रेम प्रदर्शित करता है (यहाँ कवि शाहजहाँ द्वारा अपनी मृत बेगम मुमताजमहल के प्रति उसके प्रगाढ़ प्रेम तथा अपनी जनता के प्रति उसकी भयङ्कर उपेक्षा पर व्यग्य कर रहा है ।)

प्रेम-अर्चना यही **है ईश्वर !**

शब्दार्थ—अर्चना = पूजा । वरण = अपनाना । कुत्सित = घिनौना । मोहान्ध = मोह से अन्धे बने । अनश्वर = अमर, शाश्वत ।

भावार्थ—कवि प्रश्न करता है कि क्या प्रेम की पूजा इसी को कहते हैं कि हम मृत्यु को तो अपने हृदय से लगा लें—मरे हुओ की पूजा करें और और जीवित मनुष्यो का शोषण कर, उन्हें ककाल सा बना सारे ससार को उनसे भर दें ? हम शव का शृगार कर उसे रूप-रङ्ग दे सुन्दर बना दें और उसे जीवित-मनुष्य का सा आदर प्रदान करें ? और दूसरी ओर जीवित मनुष्यो को शव का सा घिनौना रूप प्रदान करें । अर्थात् जीवित मनुष्यो का शोषण कर उन्हें चलता-फिरती लाश के समान घिनौना बना दें ।

हे बीते हुए युग की सडी-गली रूढियो के प्रतीक सुन्दर ताजमहल ! तुम

मोह से अन्धे बने मनुष्य के हृदय मे अपना स्थान बनाए हुए हो। अर्थात् व्यक्ति मोह मे अन्धा होकर आज भी तुम्हें आदर्श प्रेम का प्रतीक मान तुम्हारे प्रति आकर्षित होता है। इस स्थिति को देख ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के इस अमर सन्देश को भूल गए है कि मरे हुए व्यक्तियो का सम्बन्ध तो मरे हुए व्यक्तियो से ही रहता है और जीवित मनुष्यो का सम्बन्ध ईश्वर से रहता है। अर्थात् मरे हुए व्यक्तियो की उपासना केवल वही लोग करते हैं जो स्वय मृतक के समान हैं। जीवित मानव तो सदैव जीवन और प्रगति के प्रतीक ईश्वर की ही उपासना करते हैं।

(१) कवि ताजमहल को मानव द्वारा किए गए मानव के शोषण का प्रतीक मानता है न कि अमर प्रेम का। उसकी धारणा है कि बादशाह शाहजहाँ द्वारा असख्य मजदूरों का शोषण कर इस ताजमहल का निर्माण किया गया था। जनता का पेट काट कर इस सुन्दर इमारत के निर्माण पर असख्य धनराशि व्यय की गई थी। एक मरे हुए प्राणी की स्मृति को अमर करने के लिए असख्य जीवित प्राणियो का सुख चन, धन-दौलत न्योछावर कर दी गई थी। यह अन्याय था। इसी कारण ताजमहल का सौन्दर्य कवि को आकर्षित करने मे असमर्थ रहा है। इसके निर्माण की वीभत्स कथा की ओर ही कवि की दृष्टि गई है। यह कवि का अति-यथार्थवादी दृष्टिकोण है।

२३. दो लड़के

मेरे आँगन में ·· · · हो-हो अन्दर से।

शब्दार्थ—गदबदे=भरे स्वस्थ शरीर। कवरों=आवरण पृष्ठो।

भावार्थ—कवि कहता है कि मेरा घर—जो टीले पर बना है—के आँगन में प्राय दो छोटे से लडके आ जाते हैं। उनके शरीर नगे रहते हैं, शरीर स्वस्थ भरा हुआ, रग साँवला और सहज रूप से सुन्दर हैं। वे मिट्टी के मट-मैले रग के पुतले से दिखाई पडते हैं परन्तु बहुत फुर्तीले—चचल हैं। वे जल्दी से टीले के नीचे उस तरफ उतर कर कूडे के ढेर मे से अपने लिए अत्यन्त कीमती चीजें चुन ले जाते हैं। इन कीमती चीजो में सिगरेट के खाली डिब्बे, उनकी चमकीली पन्नियाँ, फीतो के टुकडे, मासिक पत्रिकाओ के आवरण पृष्ठो

पर छपी नीले-पीले रङ्ग की तस्वीर आदि चीजें होती हैं। वे इन चीजों को पाकर हृदय से अत्यन्त प्रसन्न हो-होकर बन्दरो की तरफ किलकारियाँ भरते हैं। अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

दौड कर आँगन . ढाले सच्चे।

भावार्थ—उन चीजो को चुन कर वे छ सात साल के गदबदे शरीर वाले नाटे मे लडके दौड कर फिर आँगन के पार चले जाते हैं और गायब हो जाते हैं। उनके नगे शरीर देखने में सुन्दर लगते हैं और मन और नेत्रो को मोह लेते हैं। यह सोच कर कि ये भी मनुष्य के बच्चे हैं, उनके प्रति मन मे ममत्व की भावना उमडने लगती है। ये पासी (एक निम्न वर्ग की जाति विशेष) मानव के ही बालक हैं। इनका रोम-रोम सच्चे मानव के रूप मे ढला हुआ है। अर्थात् ये सच्चे अर्थों मे मानव-पुत्र है।

अस्थि मांस के मनुजोचित साधन।

शब्दार्थ—अस्थि=हड्डी। अधिवास=निवास स्थान। अनश्वर=अमर। नश्वर=नाशवान। वह्नि=अग्नि। उल्का=टूट कर गिरने वाले तारे, वज्र-पात। झझा=तूफान। कलेवर=शरीर। भगुर=नाशवान। मनूजोचित= मनुष्य के लिए उचित।

भावार्थ—यह ससार हड्डी और मांस से बने इही प्राणियों का ही घर है। यह आत्मा का निवास-स्थान नही है क्योकि आत्मा तो सूक्ष्म—आकारहीन और अमर होती है। परन्तु नष्ट हो जाने वाले रक्त और मांस से निर्मित इस मानव शरीर पर उस अमर और सूक्ष्म आत्मा को न्योछावर किया जा सकता है। भाव यह है कि आत्मा से शरीर का महत्व बहुत अधिक है। इस ससार मे रहने का सच्चा अधिकारी वही है जो सबसे दुर्बल है। अग्नि, बाढ, उल्का-पात तथा तूफान से भरी इस भयकर पृथ्वी पर कोमल शरीर वाला मानव कैसे सुरक्षित रह सकता है। प्रकृति बडी निष्ठुर है और जीवन धारण करने वाले मनुष्य सहज ही नष्ट हो जाने वाले हैं। इसलिए यहाँ इस ससार में रहने के लिए मनुष्य को मनुष्य के लिए उपयुक्त साधनो की आवश्यकता है।

भाव यह है कि कोमल शरीर वाला मानव भयकर विपत्तियो से भरे इस ससार मे सुरक्षित नही रह सकता। इसलिए मनुष्य को अपनी रक्षा के लिए

उन साधनो को अपनाना चाहिए जो प्रकृति के प्रकोपो से उसकी रक्षा कर सकें। सभ्यता के उपकरण जुटाने पर ही मनुष्य को त्राण मिल सकता है।

क्यों न एक ही .... तुझे धरा पर ?

शब्दार्थ—लोकोत्तर=अलौकिक । प्रासाद=महल। क्षण-धूलि=क्षण भर में नष्ट हो जाने वाला मिट्टी से भरा शरीर। पूरित=पूर्ण।

भावार्थ—इसके लिए एक ही उपाय है कि सभी मनुष्य परस्पर सघठित होकर इस ससार मे अलौकिक मानवता का निर्माण करें। इस पृथ्वी पर जीवन का गौरवशाली प्रासाद खड़ा हो जाये। निश्चित रूप से मानव का हित करने के लिए मानव का एक साम्राज्य बन जाये। एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो जिसमे मानव का सहज ही नष्ट हो जाने वाला यह मिट्टी का सा शरीर सुरक्षित रह सके और उसकी सारी शारीरिक इच्छाएं पूर्ण हो सकें। अर्थात् जीवन मे उसे किसी भी प्रकार का अभाव न सताए। जहाँ सारे मनुष्य परस्पर प्रेम मे रह सकें। हे मानव ! तुम ईश्वर हो अर्थात् ईश्वर के समान अपनी सुख-सुविधा के साधनो का स्वय निर्माण करने मे समर्थ हो। ऐसा हो जाने पर तुम्हें इस पृथ्वी पर रहते हुए अन्य किस स्वर्ग की कामना रह जायेगी। अर्थात् मानव के प्रयत्नो से यह पृथ्वी ही स्वर्ग बन जायेगी।

(१) यहाँ मानव की शक्ति पर कवि का अटूट विश्वास है। मानव स्वय सुख-शान्ति का स्वामी है। उसमे ईश्वर की सी निर्माण करने की शक्ति है। इसलिए वह ईश्वर के समान शक्तिशाली है।

२४. झंझा मे नीम

इस कविता मे कवि ने तूफान में लहराते और शोर मचाते हुए एक नीम के वृक्ष का ध्वन्यात्मक रूप-चित्र अकित किया है।

सर् सर् .. ... अर।

शब्दार्थ—झंझा=तूफान। रेशम के से स्वर=रेशम के समान कोमल। श्वसन=वायु । रोमहर्ष=रोमाचित हो उठना। मरुत=पवन । कम्प=कांपना।

भावार्थ—घने नीम के लम्बे, पतले और चचल पत्ते वायु का स्पर्श पाकर पुलक स्पर्श से उठ खड़े हुए रोमो के समान प्रति क्षण रेशम के समान कोमल स्वरो मे सर्-सर्-मर्-मर् की ध्वनि करते हुए हिल रहे हैं। उनके उस स्वर को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वृक्ष की चोटी रूपी पर्वत से सैकडो प्रकार की कल-कल ध्वनियाँ करता हुआ वायु का लहराता हुआ एक झरना फूट कर पृथ्वी की तरफ तीव्र वेग के साथ दौड रहा हो।

झूम झूम · पड़ते पल पल ?

शब्दार्थ—भीम=विशालकाय । निखिल दल=सारे पत्ते । हरित गु ज=हरियाली का समूह । धातु-पात्र=धातु के बने वर्तन । पीत=पीला । भीत=भयभीत ।

भावार्थ—विशालकाय नीम का वृक्ष झुक-झुक और झूम-झूम कर बार-बार सिहर-सिहर कर थर-थर काँप उठता है और सर्-मर्-चर्-मर् ध्वनि करता है। वायु की तेजी के कारण उसके सारे पत्ते आपस मे इस प्रकार मिल जाते हैं जिससे उनका पृथक अस्तित्व समाप्त हो वे सब हरियाली का एक समूह सा दिखाई पड़ने लगते हैं। निरन्तर तीव्र गति से चलने वाले पवन के झोको मे उन पत्तो मे से ऐसे स्वर उठते रहते हैं मानो धातु के वर्तन परस्पर टकरा-टकरा कर सुन्दर ध्वनियाँ उत्पन्न कर रहे हो। और वायु के इस प्रकोप से भयभीत हो नीम के भयभीत, पीले, सूखे और निर्बल पत्ते खिसक-खिसक कर बराबर नीचे गिरते रहते हैं।

(१) इस कविता मे ध्वन्यात्मक चित्र-भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है।

२५ बापू

यहाँ कवि महात्मा गांधी को नव-सस्कृति के दूत, मानवता के उद्धारक तथा सत्य-अहिंसा के मन्त्र-दृष्टा के रूप मे प्रस्तुत कर उनकी स्तुति कर रहा है।

किन तत्वों से · जाएगी पाशवता ?

शब्दार्थ—समरोन्मुख=युद्ध के लिए प्रस्तुत । निरस्त=शक्तिहीन । पाशवता=वर्बरता ।

भावार्थ—कवि महात्मा गाधी को सम्बोधन कर कह रहा है कि—

हे बापू ! तुम भावी मनुष्य का निर्माण किन तत्वो से कर जाओगे ? युद्ध के लिए प्रस्तुत इस विश्व को अपने किन सिद्धान्तो के प्रकाश से ओत-प्रोत कर दोगे जिससे वह युद्ध से विरत हो सके। क्या मनुष्य का मन सत्य और अहिंसा के आलोक से प्रकाशित हो उठेगा ? क्या इस ससार का जीवन अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायेगा ? अर्थात् क्या ससार मे सब परस्पर प्रेम के साथ रहते हुए इस धरती को स्वर्ग बना देंगे ? क्या नवीन मानवता आत्मा की महिमा से शोभित हो उठेगी ? अर्थात् क्या नवीन मानव आत्मा के महत्व को स्वीकार कर लेंगे ? क्या प्रेम की शक्ति से वर्बरता की भावना हमेशा के लिए निर्जीव हो जायेगी ? अर्थात् क्या मानव परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए वर्बरता को भूल जायेंगे ?

बापू ! तुमसे सुन .. तुम अनिवार्य !

शब्दार्थ—आह्वान = बुलावा, पुकार। भूतवाद = भौतिकवाद। सोपान = सीढी। समासीन = स्थित। विवर्त = परिवर्तन, क्रान्ति। जन क्षय = मनुष्यो का सहार। इष्ट = प्रिय ।

भावार्थ—हे बापू ! तुमसे यह आह्वान सुन कर कि आत्मा तेजराशि है अर्थात् शक्ति का पुंज है, मेरे रोम हर्ष से हँस उठते हैं, मैं रोमांचित हो उठता हूँ, मेरे प्राण पुलक से भर जाते हैं। भौतिकवाद तो इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का एक साधन मात्र है। अर्थात् भौतिकवाद से इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का कदम बढाया जा सकता है, उसे पूर्ण रूप से स्वर्ग का रूप नही प्रदान किया जा सकता। और वह भारत ऐसे देश मे जहाँ अनादि काल से आध्यात्मिकता अपने निर्मल स्वरूप मे स्थित रही है। अर्थात् भारत सदैव से आध्यात्मिक चिन्तन मे व्यस्त रहा है।

कवि कहता है कि मैं नही जानता कि इस युग-परिवर्तन मे कितने मनुष्यो का सहार होगा अर्थात् इस क्रान्ति मे कितना रक्तपात होगा। परन्तु इस बात का मुझे दृढ निश्चय है कि मनुष्य को सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त सदैव प्रिय बने रहेंगे। नवीन सस्कृति के दूत ! तुम निश्चित रूप से देवताओ का कार्य करने और मानव की आत्मा का उद्धार करने के लिए आए हो।

आदि) वही सच्ची हैं जो सासारिक प्रगति मे जड वन्धनो का पाश न वन जाँय। अर्थात् रीति-रिवाज ऐसे होने चाहिए जो हमारी प्रगति मे बाधक न वन सहायक बनें। कवि कामना कर रहा है कि ऐसे साधनो द्वारा इस पृथ्वी पर मानवता का पूर्ण विकास हो।

(१) इस कविता मे कवि मानव के गुणो, विचारो, साधनो आदि का वास्तविक रूप अकित कर यह कहना चाह रहा है कि मानवता का विकास तभी सम्भव है जब हम इनके वास्तविक उद्देश्यो को समझें और उन्ही के अनुसार आचरण करें। सक्षेप मे, वह ढोग और जडता भरे दृष्टिकोण का विरोध कर रहा है। यहाँ कवि का दृष्टिकोण आदर्शवादी सा अवश्य प्रतीत होता है परन्तु उसकी आधार-भूमि यह यथार्थ जगत ही है। तभी वह ललित-कला, रीति नीति आदि के सम्वन्ध मे नवीन प्रगतिशील दृष्टिकाण का समर्थन कर रहा है।

२७. रूप सत्य

इस कविता मे कवि सूक्ष्म आदर्श अथवा काल्पनिक आदर्श का विरोध कर स.कार यथार्थ का प्रतिपादन कर रहा है। वह अप्रत्यक्ष रूप से सूक्ष्म ब्रह्म का विरोध कर इस यथार्थ जगत का महत्व वता रहा है।

मुझे रूप ही . . .. रूप ही भाता।

भावार्थ—कवि अपने प्राणो को या अपनी प्राणप्रिया को सम्बोधन कर कह रहा है—

हे प्राण ! मुझे रूप ही अच्छा लगता है। अर्थात् मुझे वही वस्तु अच्छी लगती है जो अपने साकार रूप में हो क्योंकि सौन्दर्य साकार स्वरूप में ही होता है न कि निराकार-सूक्ष्म मे। यह रूप का सौन्दर्य ही मेरे हृदय मे वस मधुर भावो के रूप मे अभिव्यक्त होता है, काव्य का रूप धारण कर लेता है।

जीवन का चिर . ऐश्वर्य अपार !

भावार्थ—जीवन का शाश्वत सत्य अर्थात् निराकार ब्रह्म मुझे कभी भी

सन्तोष नही प्रदान कर सका। भाव यह है कि जीवन का सत्य ब्रह्म की प्राप्ति घोषित किया जाता रहा है परन्तु ब्रह्म की कल्पना मुझे कभी सन्तोष नही दे सकी क्योंकि ब्रह्म काल्पनिक और अयथार्थ है। मुझे सूक्ष्म ज्ञान की अपेक्षा साकार वस्तु अच्छी लगती है। मैं सूक्ष्म बीज की अपेक्षा उससे उत्पन्न लहलहाते हरे-भरे वृक्ष को देखना अधिक पसन्द करता हूँ। इसका दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि मुझे ब्रह्म अपने सूक्ष्म रूप मे आकर्षित नहीं करता। वह जब इस ससार के रूप मे व्यक्त हो उठता है तभी मुझे अच्छा लगता है। अर्थात् सूक्ष्म ब्रह्म की अपेक्षा मुझे यह साकार जगत अधिक लुभाता है।

यह सच है कि जीवन के वसन्त मे पतझड छिपा रहता है। अर्थात् जीवन के सुखो का उपभोग करने के उपरान्त मृत्यु रूपी पतझड अनिवार्य है। परन्तु इस जीवन रूपी वसन्त में विभिन्न रगो और सुगन्धियो से पूर्ण फूलो और कलियो का अपार ऐश्वर्य भरा पडा है। अर्थात् इस जीवन मे सुख और आनन्द की प्रधानता है। उसका उपभोग करने के उपरान्त आने वाली मृत्यु की इसी कारण मुझे चिन्ता नही है। मृत्यु के क्षणिक दुख से भयभीत हो मैं जीवन के विस्तृत, लम्बे सुख और आनन्द की अवहेलना क्यो करूँ।

राशि राशि · रूप ही भाता!

भावार्थ—अनन्त सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द, गुणों की रेखाओ से निर्मित रूप रग से भरा पूरा यह ससार मुझे अच्छा लगता है। अर्थात् इस ससार के इस साकार रूप मे उपर्युक्त सम्पूर्ण विशेषताएँ, इसी कारण यह मुझे अपने प्रति आकर्षित करता है। इसलिए हे प्राण! मुझे रूप ही अच्छा लगता है। रूप का सत्य इसके भीतर नही समा सकता। अर्थात् रूप का सत्य उसके भीतर रहने वाला प्राण न होकर वह रूप ही है। रूप साकार है और प्राण सूक्ष्म-निराकार। सूक्ष्म निराकार में सौन्दर्य नही होता और सौन्दर्य ही आकर्षित करता है।

भाव यह है कि सौन्दर्य का आगार यह व्यक्त ससार ही कवि को प्रिय है। ब्रह्म के इस व्यक्त स्वरूप (ससार) के अभाव मे ब्रह्म का कोई महत्व नही रह जाता। ब्रह्म के अस्तित्व की सार्थकता इन संसार के रूप में

अभिव्यक्त होने मे ही है। इसीलिए यह साकार रूप-गुण-सौन्दर्यमय जगत ही कवि को अच्छा लगता है।

२८. पलाश के प्रति

प्राप्त नहीं मानव • ... ज्योति अवदात।

मावार्थ—मर्मोज्वल=हृदय का उज्ज्वल। विलास=क्रीडा। पाश=बन्धन। हिल्लोल=लहर। लोल=सुन्दर। रक्तोज्वल=चमकीला रक्त। उद्भिज=वनस्पति। हरितान्धकार=सघन हरियाली से उत्पन्न अन्धकार। अवदात=शुभ्र।

भावार्थ—कवि पलाश के वृक्ष को सम्बोधन कर कह रहा है कि—

इस मानव-जगत को हृदय का वह उज्ज्वल उल्लास प्राप्त नही है जो तुम्हारी प्रत्येक डाल पर सहज रूप से क्रीडा करता है। अर्थात् जैसे वृक्ष का अन्तरिक उल्लास रूपी रस उसकी प्रत्येक डाल पर छायी हरियाली के रूप मे प्रस्फुटित हो उठता है। वैसा उल्लास मानव को जीवन मे प्राप्त नही हो पाता। उसका जीवन-रस सूख चुका है। आज प्रलय की ज्वाला के सारे बन्धन गल कर समाप्त हो गए है और जीवन की सुन्दर उमडती लहर आकाश छूने के लिए उठ रही है। भाव यह है कि भयकर शीत की ज्वाला मे पुराने, सूखे, पीले मुरझाए पत्ते नष्ट हो गए हैं और वृक्ष में नया जीवन लहराने लगा है। मानो विश्व की सडी-गली पुरानी मान्यताएँ नष्ट हो गई हैं और मानव जीवन नवीन मान्यताओ के नए उत्साह से भर उठा है।

आज सारी धरती की आकाक्षाएँ पूर्ण रूप से उन्मुक्त हो उठी हैं। यह उज्ज्वल नवीन, शक्तिदायक रक्त पृथ्वी के जीवन के सर्वथा उपयुक्त है। अर्थात् जिस प्रकार वसन्त मे धरती की आकाक्षाओ के रूप मे चारो ओर वनस्पतियाँ छा जाती हैं वैसा ही नया ओज और शक्ति मानव-जीवन का सचार होने लगता है उसी प्रकार वसन्तागम के साथ वनस्पतियो मे जीवन का विकास होने लगा है। आज वृक्षो की सघन हरियाली से उत्पन्न अन्धकार जीवन के प्रकाश की ज्योति से नष्ट हो शुभ्र बन गया है।

नव जीवन का ·· ··· · स्वस्थ ग्रानन्द !

भावार्थ—हे पलाश ! तुमने अपनी नसा मे नए जीवन का रक्त धारण कर तिनके और वृक्षों से भरे इस मानव-जगत मे प्रकाश भर दिया है, नए जीवन का प्रकाश विकीर्ण कर रखा है। हे सुन्दर पलाश ! तुम्हारी यह शोभा, यह शक्ति और यौवन की यह प्रखर कान्ति मन में ग्रोज भर देती है और नेत्रों को देखने मे अच्छी लगती है। कवि कामना कर रहा है कि जीवन की आकाक्षाओ के इस निर्मल सौन्दर्य का उपभोग मानव भी स्वस्थ मन से और पूर्णत मुक्त होकर कर सके। अर्थात् जिस प्रकार वसन्त ऋतु मे पलाश का वृक्ष नई हरियाली और नए रक्ताभ पुष्पो से ढक सुन्दर रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार मानव भी जीवन में उसी बन्धन-हीन मुक्त भावना, स्वस्थ ग्रानन्द और निर्मल सौन्दर्य का अधिकारी बन जाय।

२६. वाणी

कवि वाक्शक्ति की अधिष्ठात्री सरस्वती से प्रार्थना कर रहा है कि मुझे ऐसी वाणी दो जिसमे जीवन के स्वर मुखरित हो उठें।

वाणी वाणी ··· ·· मोर नाचते सुन्दर !

शब्दार्थ—वाणी=वाक्शक्ति, बोली, सरस्वती। भास्वर=प्रकाशमान। उड्चर=पक्षी। नि सृत=निकले।

भावार्थ—कवि सरस्वती से प्रार्थना कर रहा है कि मुझे जीवन को अभि-व्यक्ति प्रदान करने वाली प्रकाशमान वाणी दो। वह वाणी दो जिसमे पक्षी मौन, शान्त आकाश मे उड कर बोलते हैं, चहचहाते हैं; जिसमे मौन पर्वत से निकल कर झरने कल-कल स्वर के साथ गीत गाते हैं। जिस वाणी मे मेघ गर-जते, सागर लहराते, बिजली प्रति दिन चमकती और मोर सुन्दर नृत्य करते हैं। भाव यह है कि मुझे ऐसी वाणी दो जिसमे जीवन का उत्साह अभिव्यक्त हो उठे, जीवन खेलने लगे।

मुझे वस्तु वाणी ··· ···· ··· आते शैशव, यौवन !

भावार्थ—मुझे ऐसी वाणी दो जो इस वस्तु-जगत को अभिव्यक्ति दे सके,

ऐसी वाणी दो जो पूर्ण और शाश्वत हो। अर्थात् जो अनादि काल से इस वस्तु-जगत को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती आई हो। जिस वाणी मे मलय-पवन के समान शरीर को स्पर्श कर पुलकित कर देने की शक्ति हो, जिसमे पुष्प अपने कोमल मुख को खोलते हो और ससार का अणु-अणु नर्तन कर उठता हो। अर्थात् जिस वाणी मे जीवन मुखरित हो उठता हो। ससार के कण-कण में जीवन का सगीत गूँज उठता हो। जिस वाणी मे भूख, प्यास और काम-वासना से व्याकुल शरीर अपनी इच्छाओ को अभिव्यक्त करते हो, जिसमे सुख-दुख बोल उठते हो और बचपन और यौवन की भावनाएँ अभिव्यक्त हो उठती हो।

मुझे सृष्टि की   वाणी के स्वर!

भावार्थ—मुझे ऐसी वाणी दो जो अक्षय और अमर हो तथा सृष्टि को अभिव्यक्ति दे। जो अनेक प्रकार के रगो, सुगन्धियो और रूपो मे निरन्तर सृजन करती रहे और जिसमे इस विश्व के जड चेतन पदाथ अनुभव करते हो। जो वाणी जन्म-मरण और प्रकाश और अन्धकार से परे हो अर्थात् जिस पर इनका कोई प्रभाव न पडे ऐसी अमर वाणी हो। जो जीवन की भी जीवन और शाश्वत, सुन्दर अक्षर का रूप लिए हो। मुझे ऐसी वाणी दो जो सबकी भावनाओ को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली हो।

(१) यहाँ कवि ऐसी वाणी का वरदान माँग रहा है जो इस ससार के प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओ को अभिव्यक्त कर सके। कवि अपनी वाणी द्वारा अव्यक्त, अदृश्य ब्रह्म की अभिव्यक्ति न कर इस भौतिक जगत की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने का अभिलापी है। वह वाणी अथवा काव्य की सार्थकता इसी मे समझता है कि वह जन-जीवन का चित्रण करने वाला हो। जन-जीवन मे व्याप्त अक्षय, अमर शक्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला हो। जिसमे रुदन ही न होकर जीवन अपने पूर्ण वेग के साथ मुखरित हो उठे।

३०. ग्राम कवि

कवि पन्त ग्रामो मेरहने वाले कवि के सम्मुख भारतीय ग्रामो मे रहने वाले निर्धन दुखी लोगो की दीन दशा का चित्र प्रस्तुत कर रहे है।

यहाँ न पल्लव ... . करना सचित !

भावार्थ—कवि कहता है कि यहाँ गाँवों मे हरे-भरे पत्तो से भरे वनो मे मन्द गति से वहने वाले पवन से मरमर का सगीत नही गूँजता। यहाँ मधु (शहद) के लिए भौंरे फूलो पर गुजार करते हुए नहीं मँडराते। यहाँ तो जीवन का सगीत अतृप्त-अशान्त हृदयो का रुदन बन कर रह गया है। अर्थात् गाँवो मे कवियो को लुभाने वाले आकर्षक प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे दृश्य न होकर सर्वत्र अभाव के दुखो से उत्पन्न हाहाकार ही सुनाई पडता है।

यहाँ हमारे काल्पनिक आदर्शो की साकार प्रतिमा के कही भी दर्शन नही होते। अर्थात् ग्राम्य-जनो के सम्बन्ध मे कवि-गण जिन आदर्शो की कल्पना करते हैं वे यहाँ कही भी नही मिलते। यहाँ चित्रों तथा गीतों द्वारा सुन्दरता का अकन करना व्यर्थ है। क्योकि अभाव से पीडित ग्रामवासी उस सुन्दरता को नही समझ सकेंगे।

यहाँ धरा का .... वीणा के स्वर !

भावार्थ—यहाँ पृथ्वी का रूप अत्यन्त कुरूप है। अर्थात् यहाँ तथाकथित प्राकृतिक सौन्दर्य के कही भी दर्शन नही होते। यहाँ के लोगो का जीवन कुत्सित और घिनौना है। जहाँ पेट भूखा हो और शरीर नगा हो अर्थात् जहाँ के लोग भूखे और नगे हो वहाँ सुन्दरता का मूल्य कौन समझ सकेगा।

जहाँ गरीबो से जर्जर बने असख्य मानव पशुओ के समान जघन्य जीवन व्यतीत करते हैं, जहाँ मनुष्यो के वच्चे कीडो के समान रेंगते हैं और जहाँ यौवन असमय ही वृद्धावस्था मे बदल जाता है।

ऐसे वातावरण मे कवि को उसके सत्य-शिव-सुन्दर के दर्शन नही हो सकते। ग्रामीण जनों की इस दशा को देख-देख कर कवि का हृदय वेदना से भर जाता है और उसकी वाणी रूपी वीणा के स्वर मूर्च्छित हो जाते हैं अर्थात् वह कविता नही कर पाता।

३१. वे आँखें

अन्धकार की गुहा ... निर्मम विज्ञापन !

शब्दार्थ—गुहा = गुफा। सरीखी = समान। नैराश्य = निराशा। पाशव = पशुतापूर्ण।

भावार्थ—कवि किसी दीन-दुखी, सताए हुए व्यक्ति की दुख और वेदना के कारण भीतर को धँसी-त्रस्त आँखो को देख विचलित हो उठा है और उनका वर्णन कर रहा है।

कवि कहता है कि जिस प्रकार अँधेरी गुफा को देख मन डरता है उसी प्रकार दुख और निराशा के अन्धकार से भरी, गुफा के समान भीतर धँसी इन गहरी आँखो को देख मन भयभीत हो उठता है। इन आँखो के भीतर दूर तक भयकर गरीवी और दुख का मूक सदन भरा हुआ है। अर्थात् इन आँखो ने भयकर गरीबी और दुख उठाए हैं और खुल कर रो भी नही सकी हैं। आह ! इनमे अथाह निराशा और विवशता का भयकर सूनापन भरा हुआ है। अर्थात् ये भयकर रूप से निराश और असहाय हैं। ये आँखें इस वात का विज्ञापन कर रही हैं कि मनुष्य को पशुओ के समान कैसी भयकर यातनाएँ सहनी पडती हैं। अर्थात् समर्थ लोग गरीब और असहाय लोगो पर कितना भयकर अत्याचार करते हैं, इन आँखो को देख इसकी कल्पना की जा सकती है।

फूट रहा उनसे • जर्जर जन जीवन !

भावार्थ—इन आँखों से गहरा आतक, क्षोभ, शोषण, शका और भ्रम के भाव प्रकट हो रहे हैं। अर्थात् इन आँखो ने इन सवको सहन किया है। इनकी इस कालिमा मे डूव कर मन काँप उठता है। इनमे श्मशान का सा गहरा अन्धकार छाया हुआ है। अर्थात् ये आँखें जीवन के प्रकाश से शून्य हो चुकी हैं, मुरदे के समान वन चुकी हैं। इन आँखो की वह रहस्यमय दया की याचना करती भूखी चितवन देखने वाले को अपनी ओर खीच लेती है। अर्थात् इनमे भरी दया की याचना को देखने वाले वरवस इनकी ओर आकृष्ट हो उठता है। माया के पर्दे के समान धुँधली इन आँखो मे युग-युग से सताए गए शक्ति हीन मानव की कहानी छिपी हुई है। अर्थात् ये आँखें ये वता देती है कि युगो से उन्हे कैसे-कैसे भयकर अत्याचारो और शोषणो को झेलना पडा है।

वह स्वाधीन किसान तृन-तृन से !

भावार्थ—वह पहले अपने खेतो का मालिक स्वाधीन किसान था। उस समय उसकी आँखो मे इस वात का अभिमान भरा रहता था कि वह स्वाधीन

ग्रौर ग्रपने खेतों का मालिक है । मगर ग्राज संसार उसे भयानक विपत्तियो को मँझधार में उसी प्रकार डूबता छोड कर दूर हट गया जिस प्रकार कगार (नदी का तट) मँझधार मे डूबने वाले के पास तक नही फटकता, सदैव दूर ही रहता है । ग्रर्थात् किसी ने भी उसकी सहायता नही की । जमीदार ने उसे उसके उन खेतो से वेदखल कर दिया, उसके वे खेत छीन लिए जिनमें उगे हुरे तिनको की हरियाली के साथ उसके जीवन मे हँसी-खुशी भरी रहती थी ग्रर्थात् जो उसके सुख ग्रौर शान्ति के साधन थे । ग्राज ग्रपने वही खेत उसकी ग्रांखों में लहराते रहते हैं, वह उन्ही का सपना देखता रहता है ।

ग्रांखों ही में · ·· बरधों की जोडी ।

शब्दार्थ—कारकुनो=जमीदार के नौकर, कारिन्दे । बरधो=बैलो ।

भावार्थ—उस किसान की ग्रांखो मे उसकी ग्रांखो का तारा वह बेटा हमेशा घूमता रहता है ग्रर्थात् वह सदैव ग्रपने उस बेटे की याद करता रहता है जो जवानी मे ही जमीदार के नौकरों की लाठी से मारा गया था । (खेतो के ऊपर हुए झगडे में मारा गया था ।) साहूकार ने ग्रपने कर्ज के व्याज की एक कौडी भी उस पर नही छोडी ग्रौर कर्ज को वसूली में उसका सारा घर-द्वार बिकवा दिया । महाजन ने कर्ज की वसूली मे उस बैलो की जिस जोडी को कुर्क करवा लिया था वह ग्राज भी उसकी ग्रांखो मे कसक पैदा करती रहती है ।

उजरी उसके सिवा ·· बाद गई मर ।

शब्दार्थ—उजरी=सफेद रग की गाय । दवा-दर्पन=इलाज । स्वरग=स्वर्ग ।

भावार्थ—उसकी सफेद रग की 'उजरी' नामक गाय उसके सिवाय ग्रन्य किसी को भी दुहने के लिए ग्रपने पास तक नही ग्राने देती थी । ग्राह, उसकी वह सुख की खेती ग्रर्थात् सुखभरा जीवन सदैव उसकी ग्रांखो में नाचा करता है । यह सोच-सोच कर उसकी ग्रांखों में ग्रांसू भर ग्राते हैं पैसे पास न होने के कारण वह ग्रपनी पत्नी का इलाज नही करवा सका ग्रौर वह स्वर्ग चली गई, इलाज के ग्रभाव मे मर गई । ग्रौर पत्नी की मृत्यु के दो दिन बाद उसकी दुधमुँही बिटिया भी देख भाल न होने के कारण चल बसी ।

घर में विधवा ... ... फटती छाती !

शब्दार्थ—पतोहू=पुत्रवधू । पति घातिन=पति की हत्यारिन । जोरू= पत्नी ।

भावार्थ—उसके घर मे उसके पुत्र की विधवा पत्नी थी । वह शील, सौन्दर्य स्वभाव में लक्ष्मी जसी थी यद्यपि सब लोग उसे अपने पति की हत्यारिन कहते थे । (गाँवो मे पति के मर जाने पर घर-बाहर के लोग उसकी पत्नी के सम्बन्ध मे प्राय यह कहते रहते हैं कि यह हत्यारिन इस घर मे ऐसी आई कि अपने पति को ही खा गई ।) एक दिन कोतवाल ने उसे पकड़वा कर अपने यहाँ बुलवा लिया । अर्थात् अपने यहाँ जबरदस्ती पकड मंगवाया और उसके साथ बलात्कार किया । इस लज्जा के कारण वह भी एक दिन कुए मे डूब कर मर गई । उसने आत्म-हत्या कर ली । किसान सोचता है कि खैर, बेटे की बहू मर गई तो कोई बात नही । स्त्री तो पैर की जूती के समान है । एक मर गई तो दूसरी आ जाती । उसके बेटे का दूसरा विवाह हो जाता । पर जब जवान बेटा ही नही रहा तो इसका सोच-विचार करना बेकार है । अपने मारे गए जवान बेटे की याद कर-कर उसकी छाती पर सांप लोटने लगते हैं और भयङ्कर वेदना से उसकी छाती फटने लगती है ।

पिछले सुख की ... जीवन का आकर्षण ।

भावार्थ—जब उस किसान को अपने बीते हुए सुख भरे दिन याद आ जाते हैं तो उनकी याद कर क्षण भर के लिए उसकी आँखे चमक उठती हैं । परन्तु उसकी आँखो की यह चमक क्षण भर ही रह पाती है । तुरन्त उसकी चितवन आकाश मे जा गढती है । वह सूनी आँखो से देखता रह जाता है और पिछले सुखो की वह स्मृति उसके हृदय मे काँटे की तीखी नोंक के समान चुभ पीडा देने लगती है । तब उसकी उन आँखो मे न मनुष्य की चेतना रहती है । अर्थात् वह पागल के समान आँखें फाडे देखता रह जाता है । उसकी ऐसी मानसिक स्थिति मे उसकी आँखो में से ममता, हर्ष, शोक, अपमान, ग्लानि, दुख, दीनता आदि के मानवीय भाव तिरोहित हो जाते हैं और उसे जीवन के प्रति कोई आकर्षण नही रह जाता । भाव यह है कि वह पागल हो उठता है । और पागल मे उपर्युक्त भावनाओ का अनुभव करने की शक्ति नही रहती ।

उस अवचेतन क्षण . . . वे वातायन !

शब्दार्थ—अवचेतन क्षण = अचेतावस्था। अवलोकन = देखती। तमस = अंधकार। वर्ग सभ्यता = विभिन्न सामाजिक वर्गों की विभिन्न सभ्यताएँ। वातायान = खिड़की।

भावार्थ—वह किसान अपनी उस मानसिक अचेनावस्था मे डूब जाता है और उसकी दूर देखती सूनी आँखें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो दूर प्रकाश और अन्धकार के परदों पर युग-जीवन के बदलते हुए परदो का दृश्य देख रही हो कि भविष्य मे उस जैसे पीड़ित-प्रताड़ित व्यक्तियो के जीवन मे परिवर्तन आएगा और वे सुखी बनेंगे।

कवि कहता है कि अन्धकार से भरी अथाह गहरी गुफा जैसी किसान की उन आँखो को देख डर लगता है। उसकी वे आँखें विभिन्न वर्गों में विभक्त इस मानव-सभ्यता रूपी मन्दिर की सबसे नीची मंजिल की खिड़की के समान हैं। जिस प्रकार मन्दिर की सबसे निचली खिड़की से उस मन्दिर के भीतर का सारा दृश्य साफ-साफ दिखाई देता है उसी प्रकार मानव-सभ्यता के सबसे निचले वर्ग के सदस्य उस किसान की आँखें इस मानव-सभ्यता का वर्ग-भेदो मे परिपूर्ण वास्तविक चित्र दिखा देती हैं। भाव यह है कि सभ्य होने का दम्भ करने वाले इस मानव-समाज ने अपने भीतर कितने ऊँच-नीच के भेद स्थापित कर रखे हैं।

(१) इस कविता में कवि ने भारतीय किसानो की करुण-दीन-असहाय दशा का बड़ा मार्मिक चित्र अंकित किया है। जमींदार, साहूकार, पुलिस सभी किसान को सताते हैं। उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

(२) यह कविता इस बात का प्रमाण है कि प्रगतिवादी-काव्य मे कितनी शक्ति, संवेदनशीलता और प्रभावित करने की शक्ति है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अत्यन्त सुन्दर काव्य रचा जा सकता है।

३२. भारत माता

पन्त ने सन् १९४० मे भी 'भारत माता' शीर्षक कविता लिखी थी। प्रस्तुत कविता सन् १९५७ में लिखी थी। इन दोनो कविताओ के कुछ चित्र

एक से हैं। पहली कविता मे निराशा का गहन अन्धकार था। इसी कारण भारत माता का दुखी और खिन्न चित्र अकित हुआ था। प्रस्तुत कविता में वह खिलता है अवश्य परन्तु दृढ सकल्प और उज्ज्वल भविष्य की आशा ने इसमें एक नवीन जीवन की दीप्ति भर दी है। यही इसकी विशेषता है।

भारत माता . प्रवासिनी !

शब्दार्थ—शस्य = हरियाली, अनाज । शुचि = पवित्र। तन = नीची। स्वर्ग कला = चाँदनी ।

भावार्थ—भारत माता गाँव में रहने वाली है। अर्थात् भारत की अधिकाश जनता गाँवो में रहने वाली है। लहलहाते खेतो के रूप मे इसके नीले नेत्र फैले हुए हैं। जनता रूपी शिशु को दूध पिलाने और उसकी रक्षा करने वाला अनाज रूपी दूध से भरा इसका आँचल चारो ओर फैला है। इसके पवित्र परिश्रम का फल गगा-यमुना के जल के रूप मे सबको जीवन दान दे रहा है। ऐसी यह भारत माता शील की साकार मूर्त्ति और सुख-दुख से सर्वथा उदासीन रहने वाली है। अर्थात् यह दुख से व्याकुल नही होती और सुख में मर्यादा का उल्लघन नही करती। दोनो स्थितियो मे समरस रहती है।

यह अपने उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देखती मौन रहती है। और अपने स्वामी ईश्वर के चरणो मे अपनी नीची दृष्टि गढाए रहती है। दुखी होने पर भी इसके अधरो पर सदैव मुस्कान छाई रहती है। इसका सयम तपस्वी का सा अडिग और मन सर्वसहा धरती के समान अद्भुत रूप से सहनशील है। अर्थात् यह अपने ऊपर हुए अत्याचारो को सहती हुई कभी मार्यादा का उल्लघन नही करती। यह भारत माता ऐसी निमल, शान्ति देने वाली पवित्र और उज्ज्वल है मानो आकाश को चन्द्रिका पृथ्वी पर आकर चतुर्दिक शान्ति, निर्मलता और प्रकाश फैला रही हो।

तीस कोटि सुत शरदेन्दु हासिनी।

शब्दार्थ—प्रणत = नीचे झुका हुआ। निपट = पूर्ण रूप से। शरदेन्दु-हासिनी = शरद के चन्द्रमा की चाँदनी।

भावार्थ—इस भारत माता के तीस करोड बालक आधे नगे शरीर वाले, अन्न और वस्त्र के अभाव से पीडित और अशिक्षित हैं। इनके घर और आंगन बांस, फूस और सरकन्डों के बने हैं। अपनी सन्तान की यह दीन दशा देख भारत माता दुख और लज्जा से सिर झुकाए रहती है। यह वृक्ष के नीचे रहने वाली है। अर्थात् इसकी असख्य सन्तानो के पास रहने तक के लिए घर नही है। वे वृक्षो के नीचे रहते है। (यहां कवि आजादी के बाद भी अधिकाश भारतीय जनता की दीन दशा के प्रति अपना क्षोभ प्रकट कर रहा है।)

भारत माता के ये बालक ससार मे रात-दिन होने वाली प्रगति से सर्वथा अपरिचित हैं। अर्थात् इन्हे इस बात का पता नही है कि ससार कितनी प्रगति कर रहा है। (इसका कारण शिक्षा का अभाव है।) ये बालक आधे सभ्य अवश्य हैं परन्तु जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण सस्कृत अर्थात् उन्नत है परन्तु पुरानी सडी-गली कुरीतियो के कारण इनके विकास की गति रुक गई है। ये प्राचीनता के मोह मे ग्रस्त हैं इसलिए प्रगति नही कर पाते। इनकी यह दीन-मलीन दशा वैसी ही है मानो शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा को पकड़ कर राहु ने उसकी चांदनी को मलीन कर दिया हो। (यहां रूढियां राहु की तथा चांदनी को प्रगति की प्रतीक है।)

सदियों का खडहर . . . जीवन की विकासिनी !

शब्दार्थ—निष्क्रिय = गतिहीन । ज्ञान मूढ = ज्ञान से वचित । रत = निमग्न । श्रीहत = शोभाहीन । उद्यत = खडे ।

भावार्थ—इसका मन सदियो पुराने खडहर के समान गतिहीन और निष्क्रिय बन गया है। अर्थात् सदियो गुलामी सहते रहने के कारण इसके मन की उमंग मारी गई है। इसी कारण यह लक्ष्यहीन व्यक्ति के समान इधर-उधर भटकती फिर रही है—कोई ठोस कार्य नही कर पाती। यहां की जनता का जीवन जर्जर हो रहा है। कवि जिज्ञासा करता है कि जब भारत की जनता ऐसी निष्क्रिय और लक्ष्यहीन बन भटक रही हो उस स्थिति में नई धरती की रचना कैसे हो सकती है। अर्थात् यहां की जनता अपनी निष्क्रियता त्याग नए जीवन का कैसे निर्माण कर सकती है। सारे जगत को

गीता के कर्मयोग का ज्ञान प्रदान करने वाली भारत माता आज किंकर्त्तव्य-विमूढ बनी हुई है। उसे ज्ञान नही कि आगे कैसे विकास करे।

यह एक ओर तो पचशील के सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण रूप से अनुरक्त है, इसने विश्व-शान्ति का व्रत तो रखा है परन्तु दूसरी तरफ स्वय इसके घर आँगन शोभाहीन पडे हुए हैं। (यहाँ कवि भारत के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के विश्व-शान्ति और पचशील-सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय अथक प्रयत्नो पर व्यग्य कर रहा है। उसका अभिप्राय यह है कि हमारे नेता अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर अधिक बल देते हैं जबकि देश में अन्न-वस्त्र का अभाव और अनेक भयङ्कर समस्यायें जन-जीवन को दुखी बनाए हुए हैं।) इसी कारण भारत माता, जो सारे ससार को जीवन का निवास करने का सन्देश दे रही है, आज स्वय अपनी दीन स्थिति को देख चिन्ता मे डूबी हुई है।

उसे चाहिए .. रस विलासिनी।

भावार्थ—भारत की यह स्थिति कैसे सुधरे, इसके लिए कवि सुझाव दे रहा है कि—

इसके लिए जनता में परस्पर लोहे के समान दृढ सगठन होना चाहिए। प्रत्येक भारतवासी का शरीर स्वस्थ और सुन्दर हो तथा हरेक के हृदय मे अपने देश के प्रति अटूट श्रद्धा हो। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के मन मे इस सासारिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए अथक परिश्रम और सब कुछ न्योछावर कर देने का दृढ सकल्प हो। ऐसा होने पर ही यह भारत माता ससार को कला और आनन्द का दान देने वाली बन सकेगी। अथवा ऐसा होने पर ही भारत-वासी कला और जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

३३. कहारो का रुद्र नृत्य

प्रस्तुत कविता मे कवि ने ग्रामीण कहारो के उन्मत्त नृत्य को शिव के ताडव नृत्य के समान स्वरूप प्रदान कर उसे जन-मानस का प्रतीक माना है।

रग रग के चीरों हिला धरातल।

शब्दार्थ—चीरो=वस्त्रों। चीरवासा=शिव। अप्रतिहत=जिसे रोका न

जा सके । श्मश्रु=मूँछ। गुरियाँ=काँच के मन के । हुलस=उल्लास मे भर। ममुच्छ्वसित=उद्वेलित, आन्दोलित।

भावार्थ—कवि नृत्य करते कहारो को सम्बोधन कर कह रहा है—

तुम रंग-विरगे वस्त्रो मे अपना सारा शरीर सजा शिव के ममान नृत्य करते हो। जिस प्रकार शिव आकाश मे स्थित हो प्रलयकालीन ताडव नृत्य करते हैं उसी प्रकार तुम अपनी दीनता (गरीवी) रूपी आकाश मे जीवन का कभी न रोकी जा सकने वाली अभिलाषा से ओत-प्रोत हो नृत्य करते हो। तुम्हारे सिर पर शिव की जटाओ के ममान घडा सुशोभित रहता है। (कहारो मे घडा उनके पेशे का प्रतीक माना जाता है।) तुम्हारे मुख पर यौवन की प्रतीक मूँछे शोभा देती हैं। तुम छोटी-बडी तूँवियाँ और रग-विरगी काँच की गुरियाँ अपने शरीर पर सजा कर हृदय के उल्लास से भर नृत्य करते हो। तुम्हारे नृत्य के अभ्यस्त पग अटपटे ढग से उठते और गिरते हैं। तुम अपनी उच्छृंखल आकाक्षा से अपने नृत्य मे भयकर तेजी भर सारे लोगो का मन रूपी धरातल हिला देते हो। अर्थात् सबका हृदय उल्लास और उत्तेजना से भर आन्दोलित होने लगता है।

फडक रहे अवयव .. मन के सुखकर।

शब्दार्थ—जीवनोल्लास=जीवन का उल्लास। निर्भर=पूर्ण। वर्हभार=मोर के पखो का मुकुट। ताम्र=ताँवे का। शिवा=पार्वती। पूर से=वाढ के समान।

भावार्थ—नृत्य करते समय तुम्हारे अग-प्रत्यग फडक रहे है। तुम आवेश से भर उठे हो और जब अपने उस आवेश को रोकने मे विवश हो जाते हो तो तुम्हारी वह विवशता की मुद्राएँ तुम्हारे मुख पर अकित हो जाती हैं। जिस प्रकार तीव्र लालसा के समान शरीर काँपने लगता है उसी प्रकार तुम्हारी उँगलियाँ काँप रही हैं। तुम गरम देश के रहने वाले हो इसलिए तुम्हारे हृदय मे जलवायु की उष्णता के कारण जीवन का उल्लास पूर्ण रूपेण ओत-प्रोत हो रहा है। जिस प्रकार उन्मत्त आकाक्षाएँ प्रकट होकर भयकर रूप से लहराने लगती हैं, अभिव्यक्त हो उठती है, उसी प्रकार तुम्हारे सिर पर लगा मोर के पखो का मुकुट स्वच्छन्द गति से लहराता हुआ शोभा दे रहा है।

तुम्हारे एक हाथ मे तांबे का डमरू (डुगडुगी) है, दूसरा हाथ कहारिन रूपी पार्वती की कमर से लिपटा हुआ है। (यहां कवि शिव के ताडव-नृत्य की मुद्रा से तुलना कर रहा है। उस समय शिव के एक हाथ में डमरू रहता है तथा उनका दूसरा हाथ पार्वती की कमर पर रहता है।) इस मुद्रा मे तुम रुकी हुई बाढ के वेग के समान उफन-उफन कर नृत्य करते हो और सारे लोगो के मन को सुख प्रदान करते हो।

वाद्यों के उन्मत्त • • भावी चिन्तन पर।

शब्दार्थ—घोष = स्वर। गाढ़ = गहरा। तिग्म = तीक्ष्ण, प्रखर। स्फीत = शुभ्र।

भावार्थ—नृत्य के साथ बजते बाजो के गहरे स्वर और गीत के स्वरो से कांपते हुए लोगो की इच्छाओ का हृदय पर गहरा चित्र अकित कर तुम मेरे मन मे क्षण भर के लिए एक नए ससार की झलक दिखा गए। अर्थात् मैंने जीवन की उमग से भरा, जन-इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाला ऐसा दृश्य पहले कभी भी नही देखा था। तुमने इस नृत्य द्वारा मुझे जनता की सस्कृति के प्रखर-शुभ्र सौदर्य का एक स्वप्न सा क्षण भर के लिए दिखा दिया। अर्थात् मैंने पहली बार लोक-सस्कृति का ऐसा प्रखर-उज्ज्वल रूप देखा। मेरा हृदय विभिन्न युगो मे सत्य के जो आशिक रूप दिखाए गए थे उनके कारण बडा व्याकुल रहता था। अर्थात् मैं समझ ही नही पाता था कि सत्य क्या है। परन्तु आज मैं तुम्हारे नृत्य के रूप मे जनता के वास्तविक रूप और भावना के गौरव को देख विस्मित हो उठा हूं। और सोचने लगा हूं कि भावी सस्कृति निर्माण इसी लोक-सस्कृति द्वारा होगा।

(१) इस कविता मे कवि ने लोक-जीवन मे व्याप्त जीवन के सहज उल्लास से भरी उस सस्कृति का उद्घाटन किया है जो सशक्त, दृढ आधार पर आधारित और जनता की चेतना को प्रतीक है।

(२) प्रगतिवाद मे लोक-सस्कृति के पुनरुत्थान की मांग बुलन्द की गई थी। कवि पन्त यहां उसी लोक-सस्कृति का स्तुति-गान कर रहे है।

३४. खिड़की से

एक रात कवि ने अपनी खुली खिडकी से पृथ्वी और आकाश का दृश्य देखा और वहाँ सबको समभाव से रहते देख उनके मन मे यह प्रश्न उठा कि जब सम्पूर्ण प्रकृति समभाव से रहती है तो मानव क्यो नही रहता।

पूस. निशा का ·· ··· · जग उज्ज्वल ।

शब्दार्थ—स्तब्ध = शान्त। पूनो = पूर्णिमा। चारु = सुन्दर। चन्द्रिकातम = चाँदनी की उष्णता।

भावार्थ—पूस की रात का पहला पहर था। मैंने अपनी खुली खिडकी से देखा कि बाहर दूर क्षितिज तक आम का वन शान्त सो रहा है। पूर्णिमा की चाँदनी ने लता-वृक्षो पर चाँदी सी मढ दी है। मानो पृथ्वी को स्वप्न के समान सुन्दर बना दिया हो। चाँदनी का प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि क्षण भर के लिए यह भ्रम सा हो जाता है कि दिन का प्रकाश हो। सुन्दर-सुखद चाँदनी के शीतल आतप से सारी पृथ्वी पुलकित हो चमक रही है। चाँदनी मे डूबी पृथ्वी ऐसी चमक रही है मानो जल मे पृथ्वी का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा हो।

(१) जल में पडता प्रतिबिम्ब हल्का सा धुँधला दिखाई पडता है। यहाँ कवि चाँदनी के हल्के धुँधलेपन का सकेत कर रहा है।

स्पष्ट दीखते ··· · · खड़े मनोहर ।

शब्दार्थ—विजडित = जडे हुए। घूक = उल्लू। गेंदुर = चमगादड। कुटिया = झोपडी। श्लथ = ढीली। छाजन = छप्पर। स्फटिक = सफेद पत्थर, सगमरमर। दिगत = क्षितिज।

भावार्थ—खिडकी की जाली मे जडे हुए मे कटहल, आम, लीची के वृक्ष स्पष्ट दिखाई देते हैं। उल्लू और चमगादडो के उडने से कभी-कभी उनमे हलचल सी मच जाती है। फाटक, अहाते के खम्भे, बगिया मे बनी पगडडियाँ, कुए की आधी जगत, झोपडी पर छाया बिखरा छप्पर दिखाई देते हैं। अस्पताल का एक हिस्सा, मेहरावें, दरवाजे आदि कुछ दिन पहले की गई

सफेदी के कारण स्फटिक के समान चमक रहे हैं। और टेढी-मेढी क्षितिज-रेखा के ऊपर दो ताड के सुन्दर पेड पास-पास खडे है।

आधी खिड़की पर · सहज मनोहर।

शब्दार्थ—स्मित = खिला। हरित धरा = हरियाली से ढकी पृथ्वी। कच-पचिया, भरणी, रोहिणी, लुब्धक, मृगशिर आदि विभिन्न नक्षत्रो के नाम हैं। जुड्डुओं = जुडवाँ। लुब्ध = लालच भरी। शर = वाण।

भावार्थ—खिडकी के ऊपरी आधे भाग पर हरी पृथ्वी के ऊपर खिले हुए असख्य तारो से जडा हुआ छाया के समान अस्पष्ट नीला आकाश दिखाई देता है। सामने मोती के गुच्छे के समान सुन्दर कृत्तिका नक्षत्र शोभा दे रहा है। उसके पास ही त्रिकोण के आकार वाला सुन्दर भरणी नक्षत्र है। उसके पास ही रोहिणी नामक नक्षत्र है। वह ऐसा लग रहा है मानो कोई नायिका मस्तक पर सिन्दूर की बेंदी लगा, अपनी गोदी मे जुगनुओ को भर अपने प्रिय से मिलन के लिए आतुर हो दोनो भुजाएँ फैलाए खडी हो। उसके पास ही लुब्धक नामक नक्षत्र उसे लालच भरी दृष्टि से देख रहा है। और समीप ही मृगशिरा नामक नक्षत्र अत्यन्त सुन्दर है जो आदि काल से मृगो पर अपने वाण छोड रहा है।

उधर जडे पुखराज · · पुल सी निर्मित।

शब्दार्थ—गुरु, मगल, हस्ता, वृश्चिक, आर्द्रा आदि नक्षत्रो के नाम हैं। स्वग गा = आकाश गगा। सरसी = छोटा तालाव, वावडी। वाष्पो = भाप। रत्नप्रभ = रत्नो की आभा से आलोकित। पुखराज = पीले रग का एक रत्न। गुरु = वृहस्पति।

भावार्थ—आकाश मे उधर वृहस्पति और मगल नामक नक्षत्र पुखराज और लाल के समान साथ-साथ जडे हुए है। (वृहस्पति का रग पुखराज के समान पीला और मगल का लाल के समान रक्तवर्ण होता है।) इनमे से वृहस्पति की चमक सवसे अधिक उज्जवल है। सामने हस्ता नक्षत्र साफ दिखाई दे रहा है। परन्तु वृश्चिक नक्षत्र का मिलना कठिन है। वह शायद आर्द्रा नक्षत्र है जो अपने झिलमिलाने से यह सकेत सा कर रहा है कि ओस की बूँदो के समान झिलमिला रहा है। आकाश के वीच प्रकाश के झागो के समान आकाश-

गगा तरंगित हो रही है। वह ऐसी लग रही है मानो जादू की वावडी मे परियो की छायाएँ चमक रही हो। मानो जलते हुए तारागो के समूहो से उठी भाप के स्वर्ग गा का रूप धारण कर झिलमिला रही हो। वह नीले आकाश मे रत्नो की आभा से आलोकित पुल के समान बनी दिखाई पड़ रही है। मानो आकाश मे उज्जवल वर्ण वाले रत्नो से आकाश गगा रूपी पुल का निर्माण किया गया हो।

खोज रहा हूँ ... ... जिससे ज्योतित।

शब्दार्थ—अरुन्धती=एक तारा जो सप्तर्षि के पास उगता है। अनादि=आदि काल से। इ गित=इशारा। अविदित=अज्ञात।

भावार्थ—कवि कहता है कि मैं आकाश मे यह खोज रहा हूँ कि सप्तर्षि (सात तारो का हँसिए के आकार का समूह) अरुन्धती नामक नक्षत्र को साथ लिए, मन में विस्मय का भाव भरे कहाँ पर उदय हुए हैं। उनका रूप ऐसा है जो प्रश्न-चिन्ह (?) के समान है और जिसे अनादि काल से किसी ने आकाश पर अंकित कर रखा है। ये सप्तर्षि उत्तर दिशा मे स्थित ध्रुव तारे की ओर सदैव सकेत करते रहते हैं। (ध्रुव तारा सप्तर्षि के सबसे नीचे वाले तारे की सीध मे उत्तर दिशा मे स्थित रहता है।) वे ऐसे लगते हैं मानो ससार अज्ञात रहस्य को पूछ रहे हो कि वह ध्रुव (अटल) सत्य क्या है जिसके प्रकाश से यह गहरा आकाश प्रकाशमान है।

(१) अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ की पत्नी का नाम भी था जो अत्यन्त विदुषी महिला थी। सप्तर्षि द्वारा अरुन्धती को साथ लेकर उदय होने और ध्रुव तारे की ओर सकेत करने से यह भाव भी ध्वनित होता है कि सप्तर्षि अरुन्धती से ध्रुव सत्य का रहस्य पूछ रहे हो।

ज्योत्स्ना मे ... ... हो उज्जवल !

शब्दार्थ—सहस्रदल=हजार पंखुड़ियो वाला कमल। अम्बर=आकाश। वातायन=खिड़की।

भावार्थ—चन्द्र की ज्योत्स्ना में मानो पृथ्वी पर आकाश रूपी सहस्र-दल कमल खिल उठा हो। यह दृश्य इतना शोभायमान था जैसे अपलक नयनो मे

लावण्य (सौन्दर्य) के स्वप्न क्रीडा कर रहे हो। ऐसा दृश्य प्रतिदिन देखने को नही मिलता। आज किसी ने छल कर के इस खिडकी को खोल दिया था जिसमे होकर आज अप्सराओ का सुन्दर ससार दिखाई दे रहा है। अर्थात् यह सारा दृश्य अप्सराओ के देश जैसा मोहक और सुन्दर है। जो मेरा चिर परिचित था अर्थात् जिन्हे मैं रोज ही देखा करता था वही किसी जादू के जोर से आज अपरिचित अर्थात् नितान्त नवीन से प्रतीत हो रहे है। मानो सारा वास्तविक जगत आज वास्तविक न रह कर कल्पना द्वारा चित्रित अपरिचित सौन्दय-लोक बन गया हो। आज इस ससार से असुन्दरता और कुरूपता गायब हो गई है, कुछ भी असुन्दर या कुरूप नही रह गया है। सब कुछ सुन्दर और उज्जवल बन गया है।

एक शक्ति से विमूढ़ विभाजित !

शब्दार्थ—आत्म-पर=अपना-पराया। तारालि=तारो की पक्तियाँ।

भावार्थ—कहते है कि इस जगत का सारा प्रपच (माया जाल) एक ही शक्ति (आदि शक्ति ब्रह्म) द्वारा विकसित हुआ है। ज्योति की एक ही किरण से सम्पूर्ण जड-चेतन पदार्थों का निर्माण हुआ है। यह बात सत्य है कि सारा चराचर विश्व शक्ति के एक ही प्रकाश के बन्धन मे आबद्ध है। इसी का अनुभव कर विश्व का कण-कण आज मन को विश्व के उस आदि कारण (उत्पत्ति कर्त्ता) ब्रह्म की ओर खीचते है। आज अपने-पराये की क्षुद्र भावना को भूल ससार का अणु-अणु एक ही सूत्र में आबद्ध हो उठा है। लता-वृक्षो से लेकर तारो की पक्तियाँ यही उद्घोष कर रही हैं कि सत्य एक और अखडित है। अर्थात् आज सारा विश्व आदि शक्ति के प्रकाश के बन्धन मे आबद्ध हो अखडित सत्य का रूप धारण कर रहा है। वहाँ भेद-भाव की भावना नही रही है।

कवि प्रश्न करता है कि फिर मानव ही विश्व मे व्याप्त इस समता की भावना से क्यो वचित हो रहा है अर्थात् मानवो मे परस्पर इतना विद्वेष क्यो है? मानव ज्ञान के प्रकाश से भयभीत, युग-युग से अज्ञान के अन्धकार मे डूबा विमूढ़ और वर्गों मे विभाजित हो रहा है। इसका कारण क्या है?

३५. संस्कृति का प्रश्न

इस कविता में कवि का कहना यह है कि आज विश्व के सम्मुख राजनीति की समस्या प्रमुख न होकर एक विश्व-संस्कृति की स्थापना करने की समस्या है। यह सांस्कृतिक समन्वय ही प्राचीन बुराइयों को दूर कर सम्पूर्ण विश्व को एक सुदृढ़ और मानवीय इकाई में परिवर्तित करने में समर्थ होगा।

राजनीति का प्रश्न .. . . . में विकसित।

शब्दार्थ—अर्थ-साम्य = धन का समान वितरण। खड मनुजता = टुकड़ों में बँटे मनुष्य।

भावार्थ—कवि कहता है कि आज ससार के सामने राजनीति का प्रश्न नही है कि राजनीति का स्वरूप कैसा हो। क्योंकि राजनीतिक साधनो एव सिद्धातो द्वारा यदि ससार में धन का समान वितरण कर भी दिया गया अर्थात् साम्यवाद की स्थापना कर अमीर-गरीब का भेद मिटा दिया गया तो भी इससे मनुष्य का दुख दूर नही हो सकेगा। सम्पूर्ण इतिहासो तथा वैज्ञानिक आविष्कारो का सम्पूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत करना भी व्यर्थ होगा अर्थात् इन सब का विस्तृत अध्ययन कर मानव-कल्याण का कोई निष्कर्ष निकाल लेना असम्भव होगा क्योकि प्राचीन इतिहास और वैज्ञानिक प्रगति अभी तक मानव का कल्याण करने में असमर्थ रहे हैं। जिस प्रकार देव-दानवों ने सागर-मथन कर लक्ष्मी, अमृत और चन्द्रमा को प्राप्त किया था उस प्रकार इतिहास और वैज्ञानिक आविष्कारों का अध्ययन-मनन करने से इस युग का कल्याण करने वाली लक्ष्मी, जीवन प्रदान करने वाला अमृत तथा सबका मन मोहने वाला चन्द्रमा जैसी वस्तुओ की प्राप्ति असम्भव है।

आज तो ससार के सामने यह सबसे बड़ी समस्या है कि एक व्यापक विश्व सस्कृति का निर्माण कैसे किया जाय। आज युग-युग से विभिन्न राष्ट्रों, वर्गों, धर्मों, जातियों में विभक्त मानवता को इन भेद पैदा करने वाली भावनाओ से मुक्त कर एक रूप प्रदान करता है। मध्ययुगीन नैतिकता के जो मानदंड निश्चित किए गए थे उन्हें बदल कर मानवता के रूप में विकसित करता है।

अर्थात् आज नैतिकता के ऐसे मानदंड निश्चित करने हैं जो मानवता का विकास कर सकें।

जग जीवन के . . शनैः पराजित !,

शब्दार्थ—अन्तर्मुख = भीतरी, स्वाभाविक। प्रवर्तित = प्रेरित। उत्पीडन = अत्याचार। दंत-शून्य फणि = बिना दाँत वाला साँप। विग्रह = झगडा। तमस = अन्धकार। निमज्जित = डूब जायेगा। शनैः = धीरे-धीरे।

भावार्थ—आज सासारिक जीवन के नैसर्गिक गुणों से प्रेरित होकर मनुष्य का अवचेतन मन बदल गया है। अर्थात् आज मानव का अवचेतन मन जाग्रत हो यह अनुभव करने लगा है कि वर्तमान भौतिक साधनों द्वारा मानवता का कल्याण नही हो सकता। आज मनुष्य की वाह्य चेतना अर्थात् उसके सासारिक जीवन मे क्षोभ, क्रान्ति और उत्पीडन की भावना भरी हुई है। अर्थात् आज मानव क्षोभ से भरा, क्रान्ति करने के लिए सन्नद्ध तथा दूसरो पर अत्याचार करने की भावनाओ से आक्रान्त हो रहा है। विश्व मे आज इन्ही का साम्राज्य है। हमारी बीते हुए युगो की सभ्यता इस वर्तमान विषम स्थिति को दूर करने मे उसी प्रकार असमर्थ हो रही है जिस प्रकार जहर का दान्त टूटा हुआ सर्प क्रोध मे भर व्यर्थ ही अपना सिर इधर-उधर पटकता रहता है और किसी का विनाश नही कर पाता। भाव यह है कि हमारी पुरानी सभ्यता द्वारा वर्तमान युग की विषम समस्याओ को नहीं सुलझाया जा सकता।

कवि कहता है कि आज विभिन्न राष्ट्रों मे हो रहे युद्धो तथा तोपो की गर्जना द्वारा, मानव का सैकडो रूप से विनाश करने के प्रयत्न व्यर्थ हैं क्योकि इनके द्वारा जीवन के विकास की गति को नही रोका जा सकता। जीवन के विकास की गति अदम्य है, उसे कोई भी नही रोक सकता। नए युग के नए प्रकाश मे बीते हुए अज्ञानान्धकार से भरे युग स्वय डूब कर समाप्त हो जायेंगे और ससार नए-युग के नए जीवन के प्रकाश से भर उठेगा। बीते हुए युगो की प्रतिक्रियावादी धारणायें स्वय धीरे-धीरे पराजित हो नष्ट जायेंगी। अर्थात् प्राचीन भ्रान्तियो, रूढियो एव मान्यताओ पर आधारित सस्कृति, सभ्यता और समाज का पुराना ढाँचा नष्ट हो जायेगा और एक नवीन सस्कृति की स्थापना

होगी जो सम्पूर्ण विश्व को एकता के बन्धन मे आबद्ध कर देगी। इसलिए आज युद्ध, कटुता आदि से ग्रस्त विश्व की समस्या का समाधान राजनीतिक सिद्धान्तों या प्रयत्नों द्वारा नही किया जा सकता। विश्व मे शान्ति तभी स्थापित हो सकेगी जब सम्पूर्ण विश्व की एक विशाल, विस्तृत संस्कृति मे बाँध दिया जायेगा।

३६. विनय

कवि ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि मानव को ऐसा वरदान दो कि वह मानवता का निर्माण करने मे समर्थ हो सके।

विज्ञान ज्ञान बहु ... . जग के कारण !

भावार्थ—कवि भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि हे इस सम्पूर्ण संसार के निर्माता ! अनेक प्रकार के ज्ञान-विज्ञान तथा नीति और धर्म सबको सुलभ हो सकें अर्थात् जन-साधारण इनका ज्ञान प्राप्त कर इनका उपभोग कर सकें। मनुष्य नए-नए संकल्प कर सकें तथा अपनी इच्छाओ के अनुरूप कर्म करने को स्वतन्त्र हो। मानव को ऐसी शक्ति दो कि उसके उपचेतन मन पर उसका चेतन मन विजय प्राप्त कर सके। अर्थात् मानव अपनी जडता त्याग पूर्ण रूप से चैतन्य हो उठे।

मनुजों की लघु . .. .. मानवता का वर !

शब्दार्थ—लघु चेतना=हीन भावना। वर्गगत=वर्गों द्वारा उत्पन्न। प्रेत= भूतकाल की भयानक भावनाएं। संस्कृत=सभ्य। संयुक्त=सम्मिलित। धरणि=धरती। भव=जन्म।

भावार्थ—कवि भगवान से ऐसा वरदान मांगता है जिससे मनुष्यो की नीचे और तुच्छ कार्य करने की भावना नष्ट हो, छोटी-छोटी बातो से उत्पन्न उसकी तुच्छ अहंकार भावना का नाश हो तथा नवीन युग के नवीन गुणो के प्रकाश मे बीते हुए युग के बन्धनो का अन्धकार नष्ट हो जाय। अर्थात् प्राचीन जर्जर मान्यताएं नष्ट हो जांय और युगानुरूप नवीन मान्यताओ की स्थापना हो। जाति-गत विद्वेष की भावना शान्त हो तथा विभिन्न वर्गों मे होने वाला

रक्तपात समाप्त हो जाय। युगो से मानवता को पीडित करने वाले पारस्परिक विद्वेष रूपी प्रेम शान्त हो जाय और मानव का हृदय इनके प्रभाव से मुक्त हो निर्मल बन जाय।

सब लोग सभ्य हो, स्नेही, सहृदय तथा सुन्दर बनें। सबके सम्मिलित कर्मों पर विश्व की एकता निर्भर रहे। अर्थात् सब मिलकर विश्व की एकता के लिए प्रयत्न करें। आज सम्पूर्ण राष्ट्र और देश परस्पर एक दूसरे से मिल कर शान्तिपूर्वक रहे। मानव परस्पर एक होकर जीवन का निर्माण करने वाले कार्यो को करे। हे प्रभु! यह धरती मनुष्यो की हो, ससार स्वर्ग बन जाय तथा इस धरती पर जीवन का प्राधान्य रहे न कि परस्पर मार-काट से उत्पन्न मृत्यु और विनाश का साम्राज्य छाया रहे। हे प्रभु! तुम नवीन मानव को ऐसी ही मानवता की स्थापना करने का वरदान दो।

(१) कवि सम्पूर्ण विश्व की एकता तथा शान्ति का समर्थक है। उसकी अभिलाषा है कि ससार के सब मनुष्य मिल कर, पारस्परिक विद्वेषो से मुक्त हो एक ऐसी मानवता का निर्माण करें जो इस धरती को स्वर्ग बना सके।

३७ सम्मोहन

इस कविता मे कवि उदय होते हुए सूर्य के जग-जीवन पर पडे अलौकिक प्रभाव का वर्णन कर रहा है। यहाँ सूर्य के अतिरिक्त ईश्वर से भी अर्थ लिया जा सकता है।

जादू बिछा दिया . ... मुख पर सुन्दर।

शब्दार्थ—स्पन्दित = चेतन, कांपते हुए। सर = सरोवर। प्रणय दृष्टि = प्रेम दृष्टि।

भावार्थ—तुमने मनुष्यो से भरी इस धरती पर चारो ओर जादू सा बिछा दिया है। तुमने अपनी सुनहली किरणो द्वारा ससार में जीवन की हरियाली उत्पन्न कर दी है। अर्थात् सूर्योदय होते ही सारा ससार नए जीवन से खिल उठा है, लहलहा उठा है। (सूर्योदय नव-जीवन का प्रतीक माना जाता है।) तुम्हारी सुनहली किरणें एक फूल से उड दूसरे फूल पर जा बैठती हैं और

उनके प्रकाश मे फूलो के भीतर छिपे सूक्ष्म रंग निखर उठते हैं। तुम्हारी किरणो का यह सम्मोहन (जादू) मानव रूपी पुष्पो के हृदयो मे नव-जीवन के मधुर स्वप्नो की सृष्टि करते हैं और उनका हृदय स्वर्णिम रक्त के वेग से धड़कने लगता है, उनमे नई चेतना जाग्रत हो उठती है।

आज विश्व के कण-कण का हृदय धड़क रहा है, चारो ओर नव-जीवन की चेतना का साम्राज्य छा रहा है। वृक्षो की मर्मर् ध्वनि आज उनकी भाषा बन गई है जिसके द्वारा वे अपने आन्तरिक आनन्द और उल्लास को अभिव्यक्ति दे रहे है। सरोवर मे खिले कमल आज सुन्दरी रमणियो के नव जीवन से भरे मुख के समान दिखाई दे रहे हैं जिनके मुखो पर लहरें रूपी आंचल लहरा रहे हैं। वे कमल ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो प्रेम-भावना से भरे नेत्र मुग्ध हो देख रहे हों। तुमने धरती के सुन्दर मुख पर सुनहली कामनाओ का नया घूंघट डाल कर उसके प्राणो मे संगीत भर दिया है। अर्थात् पृथ्वी सुनहली कामनाओ से भरे सुन्दर मुख वाली रमणी के समान सौन्दर्यमयी हो उठी है।

निज जीवन का .. . .. मर्त्य शोक हर !

शब्दार्थ—मर्म ग्रंथि=हृदय का प्रेम अथवा प्रेम का रहस्य। मर्त्य= मरणशील।

भावार्थ—अब मानव इस सांसारिक जीवन के नए स्वप्नो के प्रकाश रूपी वर्षा मे शाश्वत स्नान कर अपने जीवन के कठोर संघर्षो को भूल गया। अर्थात् अब मानव को नए युग के नए जीवन के सुखद निर्माण की आशा है। तुमने मानव जीवन को स्वर्णिम बना दिया है। अर्थात् अपने हास्य द्वारा तुमने मानव जीवन मे सुनहली आभा भर दी है। अब इन प्राणो मे हार्दिक प्रेम का स्वर्णिम झरना निरन्तर बहता रहता है। हृदय प्रेम से सराबोर रहता है।

हे मरणशील प्राणियो के शोक दूर करने वाले ! तुमने स्वर्ग और पृथ्वी को एक बन्धन मे बांध दिया है अर्थात् इस पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि कर दी है। तुमने सुनहली चेतना के सदैव सुख प्रदान करने वाले स्वप्नो को जीवन का शरीर प्रदान कर दिया है। अर्थात् जीवन को स्वर्णिम सुखद स्वप्नो से भर दिया है।

(१) इस कविता मे छायावादी काव्य-शैली के मनोरम रूप के दर्शन होते है। छायावादी काव्य में जो अस्पष्टता सी रहता है वह यहाँ अपने मनोरम झीने रूप मे प्रस्तुत है। कवि का भावाकुल हृदय सरस-कोमल भाषा के माध्यम से सूर्योदय के जोवन-प्रदायक प्रभाव का अकन कर रहा है। सूर्योदय नव-जीवन का प्रतीक होता वही भावना यहाँ अभिव्यक्त होती है। यहाँ पन्त के प्रति प्रिय शब्दो—चिर, अमर, स्वर्णिम आदि का अत्यन्त कलात्मक प्रयोग हुआ है जो प्राय अर्थहीन होते हुए भो कविता मे एक अद्भुत सौन्दर्य का समावेश कर रहे है।

३८. हिमाद्रि

यहाँ कवि हिमालय का विभिन्न रूप से काव्यमय वर्णन कर रहा है।

मानदण्ड भू के .. . मेरी विस्मित !

शब्दार्थ—स्वर्गारोहण = ऊपर स्वर्ग मे जाना। हिमाद्रि = हिमालय। हिमकण = वर्फ के कण। अंचलवासी = गोद मे रहने वाला। भूभृत = पर्वत, राजा। जडीभूत = आश्चर्य से विजडित। महाश्चर्य = महान आश्चर्य।

भावार्थ—कवि हिमालय का स्तुति-गान करता हुआ कह रहा है—

हे पृथ्वी के अखण्ड मानदण्ड ! हे प्रिय हिमालय ! तुम इस पृथ्वी को स्वर्ग तक पहुँचाने वाले हो ! अर्थात् हिमालय इतना विशाल है मानो विधाता ने उसे पृथ्वी को नापने का मानदण्ड बना एक स्थान पर रख दिया हो। और वह इतना ऊँचा है मानो पृथ्वी उसके द्वारा ऊपर स्वर्ग तक पहुँचने का प्रयत्न कर रही हो। सक्षेप मे, हिमालय बहुत लम्बा-चौडा और गगन-चुम्बी है। कवि कहता है कि हे हिमालय ! मैं बचपन मे तुम्हारी गोद में रहता था। (कवि पन्त कुमायूँ प्रदेश के रहने वाले है।) बचपन मे तुमने अपने विशाल सौन्दर्य द्वारा मेरे हृदय मे पवित्र आशा का सचार कर दिया था और मैं तभी से अपने नेत्रो को ऊपर आकाश में गढ़ाए स्वप्न देखने का अभिलाषी बन गया हूँ, सदैव तुम्हारे ही समान ऊँचे, निर्मल, पावन स्वप्न देखता रहता हूँ।

मैं न जाने कब से अपने श्रेष्ठतम शब्द-चयन द्वारा तुम्हारा चित्र अंकित

करना चाहता रहा हूँ। हे शुभ्र शान्ति मे समाविस्थ योगी ! हे शाश्वत सौन्दर्य के अधिपति ! मेरी बाल-चेतना तुम्हारे रूप मे साकार-जड स्वरूप धारण कर आसीन हो गई है। अर्थात् हिमालय मानो कवि की बाल-चेतना का ही साकार रूप है। मैं तुम्हें देख कर आनन्द की तरगो में डूबने-उतराने लगता हूँ। तुम्हें देख कर मेरी सौन्दर्य-साधना महान आश्चर्य से विस्मित हो उठती है। अर्थात् तुम सौन्दर्य के अप्रतिम, अलौकिक रूप हो।

जिन किरणों को ... .. आलोक का तरल !

शब्दार्थ—स्खलित = गिर कर। तडित् = विजली । स्वर्गोन्नत = स्वर्ग के समान उन्नत। किरीट = मुकुट। शृंगों = शिखरो, चोटियो।

भावार्थ—हे हिमालय ! तुम्हारे जिन शिखरों पर सूर्य की सुनहली किरणें नित्य प्रकाश के मुकुट लगा कर उन्हें सुन्दर बनाती हैं, जिन शिखरो पर विजली सहसा गिर कर अपने ही प्रकाश से चकित सी हो उठती है। अर्थात् हिमालय की चोटियाँ सूर्य तथा विजली के प्रकाश से सुशोभित होती रहती हैं। जिन शिखरो पर पूर्णिमा की सुनहली चाँदनी ऐसी लगती है मानो ज्वार के समय उमडता हुआ सागर सहसा किसी को देख आश्चर्य से स्तम्भित हो वही जम कर रह गया हो। जिन चोटियो की निस्तब्ध शान्ति मे मेरे स्वप्न गीतो के रूप मे झकृत होते रहते हैं।

तुम्हारी जिन वर्फ से ढकी चोटियो की शीतल ज्वाला (वर्फ शीतल होने पर भी जला देने वाली होती है) मे जल कर मेरी चेतना निर्मल वनी है। जिनके स्वर्ग के समान श्रेष्ठ तरल सौन्दर्य मे मेरे प्राण आलोकित हुए थे, जिनके सौदर्य का प्रकाश मेरे प्राणो मे समा गया था। मेरा हृदय तुम्हारे शिखरो के तरल आलोक (पिघलने वाली वर्फ से उत्पन्न आलोक) को अपनी स्मृति द्वारा एक स्वर्गिक प्रकाश से भर अपनी काव्य-कल्पना को उज्ज्वल मुकुट पहनाना चाहता है। अर्थात् मैं अपने काव्य मे तुम्हारे तरल आलोक के समान स्निग्ध, पावन, मधुर, सौन्दर्य उत्पन्न करने का अभिलाषी हूँ।

वसुधा की .. . ... से लगते मोहित !

शब्दार्थ—महत्वाकाक्षा = महत् + आकाक्षा = महान आकाक्षा। अमरो = देवताओ। उरोभार = उरु + उभार = उभरी हुई जघा। गोर = गोरी। निना-

३९. द्वा सुपर्णा

इस कविता मे कवि यह कहना चाहता है कि इस शरीर मे दो प्रकार की शक्तियो का निवास रहता है जिन्हें प्राण और आत्मा, द्रष्टा और भोक्ता, वाह्य और आन्तरिक, मर्त्य और अमर्त्य आदि अनेक प्रकार के नाम दिये जा सकते हैं। ये दोनों शक्तियाँ मानो दो पक्षियो के समान हैं। यदि इन दोनो मे सन्तुलन रहेगा तो जीवन सफल बन जायेगा।

दो पक्षी हैं . . .. अमर्त्य चिरन्तन !

शब्दार्थ—सयुक्त = एक साथ रहने वाले। पिप्पल = पीपल। अशन = भोजन। अतर्लोचन = अन्तर्दृष्टि। सुहृदो = स्नेहियो। सयोनिज = एक ही माँ से उत्पन्न। मर्त्य = मरणशील। अमर्त्य = अमर।

भावार्थ—दो पक्षी हैं जो सहज-स्वाभाविक रूप से एक दूसरे के सखा अर्थात् साथी और सदैव एक साथ रहने वाले हैं। दोनो ही अनादि काल से उसी एक वृक्ष पर बैठे रहते हैं। उनमें से एक प्रतिक्षण पीपल के फलो का स्वाद लेता रहता और दूसरा बिना भोजन के मन ही मन सोचता रहता है। दो स्नेहियो के समान ये दोनो पक्षी एक ही माँ से उत्पन्न होने पर भी मरणशील और अमर हैं। अर्थात् इनमें से एक ऐसा है जिसको मृत्यु खा जाती है और दूसरा सदैव अमर रहता है। ये दोनो अपने-अपने भोजन को प्राप्त करने की लालसा मे ग्रस्त होकर ऊपर-नीचे भटकते रहते हैं। दोनो सदैव एक साथ रहते हुए विभिन्न लोको मे विचरते रहते हैं। इनमें से जो मरणशील है उसे तो सब जानते हैं और जो अमर और सदैव बना रहने वाला है उसे कोई भी नही जानता।

(१) इस पद का अभिप्राय यह है कि मानव शरीर मे प्राण और आत्मा दोनो रहते हैं। ये दो प्रकार की शक्तियाँ है जिनमे से एक सासारिक वासनाओं की तृप्ति मे सलग्न रहती है तथा दूसरी अज्ञात शक्ति का चिन्तन और अनुसन्धान करने मे व्यस्त रहती है। ये दोनो ही अपने-अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भटकती रहती हैं।

कहीं नहीं क्या .... सन्तुलन जो, विजय !

शब्दार्थ—अहम् = अहकार। द्रष्टा = देखने वाला। भोक्ता = भोग करने वाला। वहिरंतर = वाहरी अन्तर। सुपर्ण = पंख। द्वय = दो।

भावार्थ—कवि पूछता है कि क्या कही ऐसा पक्षी नही है जो जीवन के फल को चखता हो और इस ससार रूपी वृक्ष पर बने अपने घोसले मे बठा स्थिर दृष्टि से सब कुछ देखता हो। अर्थात् जो इस जीवन का उपभोग करता हो और साथ ही इस ससार से निर्लिप्त हो, पूर्ण तटस्थ भाव इसकी वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्म चिन्तन भी करता हो। जिसमें परम ब्रह्म और अह तथा दृष्टा और भोक्ता दोनो साथ-साथ हो। अर्थात् जो परम ब्रह्म के समान पूर्ण निर्लिप्त और सासारिक प्राणी के समान अपने अस्तित्व की अहकार-भावना से परिपूर्ण हो। जो इस ससार का निर्लिप्त दृष्टा भी हो और साथ-साथ इसका भोग करने वाला भी हो। जिसके पखो के बाहरी रूप मे रुपहले और सुनहले दोनो प्रकार के रग हो। अर्थात् जिसका वाह्य रूप आकर्षक हो।

एक ऐसा पक्षी हो जिसमे इन दोनो रूपो का पूर्ण सन्तुलन हो। ऐसा हो जाने पर मानव अपने जीवन को वृक्ष पर बैठे उस पक्षी के समान बना पूर्ण मानव बन सकता है। ऐसा मानव इस पृथ्वी पर शाश्वत और सुन्दर मानवीय सस्कृति की रचना कर उसे वाह्य जीवन विकास का जीवित दर्पण बना सकता है। अर्थात् ऐसी मानवीय सस्कृति ही मानव-जीवन के विकास का पूर्ण प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने मे समर्थ हो सकती है। कवि कहता है कि पक्षी के दो पखो के समान ही सत्य के दो रूप हैं—वाह्य और आन्तरिक। जैसे पक्षी अपने दोनो पखो मे सन्तुलन रखने पर ही उडान भर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार यदि मानव सत्य के इन दोनो रूपो मे सन्तुलन स्थापित कर लेगा तभी उसका जीवन सफल होगा और उसे विजय प्राप्त होगी।

(१) कवि के अनुसार जीवन मे भौतिक और आध्यात्मिक भावनाओ का सन्तुलन ही सफलता प्रदान करने वाला है। कोरा भौतिकतावादी दृष्टिकोण मानव को पूर्ण नही बनाता। उसमे आध्यात्मिकता का भी उतना ही महत्व है जितना कि भौतिकता का। इन्ही दोनो के सन्तुलन से निर्मित होने वाली सस्कृति ही सच्ची मानवीय सस्कृति होगी जो जीवन में सफलता प्रदान कर सकेगी।

(२) यहाँ कवि अति-भौतिकतावादी और अति आध्यात्मिकतावादी दृष्टिकोणो का खडन कर उनमे समन्वय स्थापित करने का सन्देश दे रहा है।

४०. ज्योति भारत

ज्योति भूमि .. . जहाँ अशेष !

शब्दार्थ—तेजोन्मेष=तेज से उद्दीप्त । अशेष=निरन्तर ।

भावार्थ—हे ज्योति की भूमि भारत देश ! जहाँ सभ्यता अपने ज्योति भरे चरणों को धर, अपने तेज से उद्दीप्त पहली बार उतरी थी, तेरी जय हो। (इतिहासकारो का मत है कि विश्व मे सभ्यता का जन्म भारत मे ही हुआ था।)

भारत ऐसा देश है जहाँ सुन्दर हिमालय है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वय सौन्दर्य समाधिस्थ हो हिमालय के रूप मे आसन जमाए बैठा शुभ्र शान्ति मे डूबा आत्म-चिन्तन मे निमग्न हो। जहाँ गंगा-यमुना का उज्ज्वल जल अबाध गति से निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।

फूटे जहाँ ज्योति के .. दो जग को आदेश !

शब्दार्थ—पूर्ण काम = निष्काम । लोकेश=ईश्वर । स्नात=नहाई हुई । प्लावन=बाढ । आदेश=आज्ञा ।

भावार्थ—जहाँ गीता के उपदेशो के रूप मे ज्ञान और भक्ति के वशी के से मधुर स्वर के समान शान्ति प्रदान करने वाले ज्ञान के अनेक झरने कल-कल निनाद करते हुए फूट उठे थे। अर्थात् भारत ने गीता के रूप मे ससार को ज्ञान और भक्ति का सन्देश दिया था। जहाँ की चेतना से भरी धूल मे निष्काम रूप ईश्वर भी बार-बार अवतार धारण कर बच्चे के रूप मे लोटते हुए किलकारियाँ मारा करते थे। अर्थात् जो ईश्वर पूर्ण रूप से निष्काम है वह भी यहाँ की भूमि में जन्म धारण करने का लोभ न सवरण कर बाल रूप धारण कर क्रीडा करता था।

ऐसे हे भारत देश ? तू युद्धो मे हुए रक्तपात से भीगी हुई, अर्थात् युद्धो से त्रस्त इस मूर्च्छित सी धरती को अपने ज्ञान रूपी अमृत की वर्षा कर उसे ज्ञान की सुनहली ज्योति से भर दे। और सारे संसार मे दिव्य चेतना उत्पन्न कर उसे शान्ति और अहिसा का आदेश दो।

४१. छाया पट

मन जलता है · मन जाता है।

भावार्थ—कवि कहता है कि मेरा मन जलता है। अर्थात् मन व्याकुल होता है। निराशा के अन्धकार रूपी क्षणो मे यह मन जलता रहता है। मेरा यह मन शरीर बन जाता है। अर्थात् इसे वैसी ही वेदना होती है जैसी कि शरीर को होती है। भाव यह है कि शारीरिक वेदनाओ के साथ-साथ मन छटपटाता रहता है। परन्तु फिर मन इस शरीर से अलग होकर, इसके प्रभावो से मुक्त होकर धीरे-धीरे ऊपर उठता है।

तन के मन के ·· ·· बनता जाता है।

भावार्थ—मेरे इस शरीर के मन के कान और नेत्र हैं। अर्थात् वह शरीर के ही समान सब कुछ सुनता और देखता है, अनुभव करता है। मेरे इस मन के जीवन से गहरे सम्बन्ध हैं। जिनमें से कुछ तो ज्ञात हैं और कुछ अज्ञात हैं। मन इन्ही सम्बन्धो द्वारा जीवन के सुख-दुख का अनुभव करता है। फिर न जाने मेरा यह मन कब इस शरीर के बन्धनो अर्थात् सम्बन्धो से मुक्त हो सारे ससार मे छा जाता है और जीवन के अनुभवो की धूल लिपटा कर लौट आता है। अर्थात् यह मन व्यक्ति की व्यक्तिगत सीमाओ से दूर ससार के अनुभवो, सवेदनो को देख-सुन, उनसे प्रभावित होता है। फिर मेरे चेतना रूपी आकाश मे इन्द्र धनुषी रग-बिरगे बादलो के समान मुस्कराने लगता है। अर्थात् मन कल्पना-लोक मे विचरण करता हुआ जीवन में एक आकर्पण और माधुर्य उत्पन्न कर देता है। मैं नही जानता कि यह कब और कैसे ज्ञान की किरणें बरसाने लगता है। मेरा यह मन कभी मेरे भीतर रहता है और कभी बाहर ससार में भ्रमण करता है और इस प्रकार सारे ससार के व्यक्तियो का प्रतिनिधि सा बनता जाता है।

तन के मन मे · ··· बाहर जाता है।

भावार्थ—मेरे इस शरीर के मन के भीतर कही एक आत्मा का मन और है जो सदैव चेतना के प्रकाश से प्रकाशित रहता है जो अपने प्रकाश से छाया के समान अस्पप्ट और रहस्यमय दृश्यो को प्रकाशित कर उनके रहस्य

का उद्घाटन कर देता है। मेरे मन का यह आदान-प्रदान मुझे न जाने कैसे और क्या-क्या सिखाता रहता है। ज्ञान प्रदान करता रहता है। भाव यह है कि मन इस संसार का ज्ञान प्राप्त कर उसे मुझे सिखाता रहता है। क्या जानना है और इसको जानने वाला कौन है, यह सब मेरा मन मुझे सिखाता रहता है। मेरा यह मन गूढ रहस्यमय और प्रत्यक्ष सब का ज्ञान प्राप्त करता रहता है।

मन जलता है .. .. मन जलता है।

भावार्थ—मेरा मन जलता है। मेरे इस शरीर और मन मे युद्ध होता रहता है। अर्थात् शरीर कुछ चाहता है और मन शरीर को रोकने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार मेरे मन का चेतन और अचेतन रूप इन संघर्षों द्वारा नित्य नए-नए रूप धारण करता रहता है।

(१) यहाँ कवि ने मन के दो रूप माने हैं। शरीर में रहने वाला मन और आत्मा का मन। आत्मा का मन ज्ञान प्रदान करता है। शरीर का मन शरीर को सासारिक कामनाओ से दूर रखने का प्रयत्न करता रहता है। इन सघर्षों द्वारा मानव के चिन्तन क्षेत्र में नित्य नवीन परिवर्तन होते रहते हैं।

४२. सविता

इस कविता मे कवि ने सूर्योदय का अत्यन्त मनोरम प्रभावक चित्र अंकित किया है। सूर्य उदय होकर ससार मे नव-जीवन की ज्योति भर देता है।

लो, सविता आता . . .. तम हर।

शब्दार्थ—सविता=सूर्य। सहस्रकर=हजार किरणो वाला। व्योम पृष्ठ=आकाश पर। नव्य=नवीन। महेन्द्र=इन्द्र, महान सम्राट। हर=विनाश कर।

भावार्थ—कवि सूर्योदय का वर्णन कर रहा है—

देखो, हजार हाथो (किरणों) वाला सूर्य आ रहा है। सूर्य प्रकाश भरे आकाश के उज्ज्वल वक्ष पर अपनी नवीन किरणों से अन्तरिक्ष (आकाश-मडल) को एक नवीन ज्योति से भर उसे प्रकाशित करता हुआ आ रहा है।

वह अपने सात घोडो वाले रथ मे सातो लोको को पार करना, अपनी गति में अलौकिक तेज भर अर्थात् अलौकिक तीव्र गति से अपनी किरणो द्वारा तीनो लोको के अन्धकार का विनाश करता महान सम्राट के समान घिरता चला आ रहा है।

उठो, मनुष्यो . .. से आवृत ।

शब्दार्थ—दिव=आकाश, स्वर्ग। पूषण=बारह आदमियो मे से एक। आभृत=अलकृत। आवृत=ढका हुआ।

भावार्थ—कवि मनुष्यो को उद्बोधन देता हुआ कहता है—हे मनुष्यो! उठो। अपनी तन्द्रा त्याग जागो और आकाश में खिलती उन उषाओ का अभिवादन करो जिन्होंने सूर्य का, जो बारह ज्योतिर्मय आदित्यो मे से एक है, मार्ग खोल दिया है। अर्थात् जो सूर्योदय की सूचना दे रही है। अब अन्धकार दूर हो गया है, ससार मे नई चेतना से भरा नया जीवन प्रवाहित हो रहा है। महान सम्राट अर्थात् इन्द्र के समान तेजस्वी वह सूय किरणो से सजा और प्रकाश से परिपूर्ण आ रहा है।

अन्धरूढि पर से निर्भर ।

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन। धावमान=चलने, बढने वाला। दिशिफल=दिशाएँ और क्षण। स्वर्ण पुरुष=सोने की सी कान्ति वाला पुरुष।

भावार्थ—आज प्राचीन अन्ध रूढियो पर चलने वाले एक नितान्त नवीन पथ पा गए हैं। अर्थात् उन्हे अन्ध रूढियो से मुक्त होने का मार्ग मिल गया है। आज उन्हे सात घोडो वाले दमकते रथ पर आसीन सूर्य का नवीन प्रकाश मिल गया है। अर्थात् आज अन्धरूढियो रूपी अन्धकारपूर्ण मार्ग पर भटकने वाले सूर्य के प्रकाश रूपी नव-जीवन और नई चेतना से भर ज्ञान के नवीन मार्ग पर चल पडे हैं। नित्य स्वर्ग की ओर उडने वाले उस सूर्य रूपी अलौकिक हस के प्रकाश से भरे पख हजारो दिनो से इसी प्रकार फैले हुए उसे आगे वढाते रहते हैं और वह निर्भय होकर आगे वढ़ता चला जाता है। वह सारे लोगो (चौदह भुवनो) को देखता हुआ, सम्पूर्ण देवताओ को अपने हृदय मे धारण कर आगे

बढता जाता है। (सूर्य देवताओ का स्वामी माना जाता है इसी कारण उसे 'महेन्द्र' अर्थात् इन्द्र कहा जाता है।) वह सम्पूर्ण लोको मे व्याप्त है। उसके असख्य, विशाल किरणो रूपी पखो में सम्पूर्ण दिशाएं और प्रत्येक फल समाया हुआ है। अर्थात् सूर्य प्रकाश मे सम्पूर्ण दिशाएं प्रकाशित रहती हैं और प्रत्येक क्षण वह प्रकाश सबको प्रकाशित करता रहता है।

जिस प्रकार पक्षी के उडने पर उसके पखो के चलने मे 'हाउ हाउ' का शब्द उत्पन्न होता है उसी प्रकार यह स्वर्ण-पुरुष के समान सूर्य अपनी किरणो रूपी पखो को चलाता हुआ उडता चला जाता है। कवि कहता है कि वह ज्योति का पु ज है और मैं अजर और अमर पुरुष हूं। अर्थात् मेरी आत्मा उसी के समान सर्वदा प्रकाशमान और अमर है। उससे सुनहले प्रकाश की सप्त-धारायें निरन्तर इस प्रकार झरती रहती हैं जैसे पवन निरन्तर झरने के समान प्रवाहित होता रहता है।

४३. वन्दे मातरम्

इस कविता मे कवि भारत माता की वन्दना कर रहा है।

वन्दे मातरम् .. .. गाएं जन।

शब्दार्थ—धरणी=धारण करने वाली। भरणी=भरण-पोषण करने वाली। प्रसविनी=उत्पन्न करने वाली। हरित=हरा। कूजित=कूक से भरा, गु जित। वसन=वस्त्र। नत=झुका हुआ। प्रणयाकाक्षी=प्रेमी। तूरी=तुरही, बिगुल। मादन=हर्ष उत्पन्न करने वाला। स्वन=ध्वनि, शब्द। वरे=स्वीकार करे, अपनाए। अक=गोद।

भावार्थ—हे माता! मैं तेरी वन्दना करता हूं। तू मनुष्यो को धारण करने वाली उनका पालन-पोषण करने वाली तथा अनेक प्रकार के रत्नो को उत्पन्न करने वाली है। तुझ पर छायी हरियाली का लहराना ही तेरा नृत्य है, कोयल की कूक ही वसन्त के समान खिला तेरा यौवन है। वायु के स्पर्श से उठती लहरो से भरा समुद्र का जाल ही तेरा वस्त्र है। सूर्य-चन्द्र से आलोकित नीचे झुका आकाश ही तेरा छत्र है। स्वर्ग अनादि काल से तेरे प्रेम को प्राप्त

करने का अभिलाषी है। अर्थात् स्वर्ग के देवता भी भारत मे जन्म लेने को तरसते रहते हैं।

हे माता। जन-जन के मन मे हर्ष उत्पन्न करने वाला क्रान्ति का विगुल वज उठे। नगाड़ो की कुड़ुम-कु ुम ध्वनि के साथ तेरा विजय-घोष विश्व मे व्याप्त हो जाये। मानव जीवन के कल्याण के लिए मृत्यु का आलिंगन करें और मृत्यु की गोद में पड़े हुए अर्थात् मरणासन्न रूप से घायल व्यक्ति भी गा उठें—'हे माता। तेरी जय हो।'

भू मन के **मनुजोचित।**

शब्दार्थ—दुरित=पाप। तमस=अन्धकार पूर्ण। प्रागण=आँगन। लोक-श्रम=मनुष्यो का परिश्रम। योजित=व्यस्त। भव=कल्याणमयी। ग्रथित=गुँथे हुए। मनुजोचित=मनुष्य के लिए उचित।

भावार्थ—इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यो के मन पर छाए प्राचीन रुढियो और रीति रिवाजो के सडे-गले वन्धन टूट जांय और मनुष्य इनसे मुक्त हो नए ढग से सोचने लगे। चारो ओर छाए दीनता रूपी पाप के सघन काले वादल हट जायें और यहाँ के प्रत्येक घर का आँगन नव-जीवनदायक सुनहले प्रभात की आभा से सुशोभित हो उठे।

सम्पूर्ण दिशाएं जनता के परिश्रम से हर्ष से भर उठें अर्थात् प्रत्येक मनुष्य अपने परिश्रम द्वारा चारो ओर सुख-समृद्धि का वातावरण उत्पन्न करने लगे। हमारा समय विश्व के निर्माण मे, उसे नया सुन्दर रूप प्रदान करने मे लगे। विश्व के सारे देश एक कल्याणमयी सस्कृति के वन्धन मे परस्पर आवद्ध हो जायं। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व मे एक नवीन कल्याणमयी सस्कृति हो। जनता सम्पन्न वने तथा यह ससार मनुष्य के रहने के योग्य वने। हे माता। मैं तेरी वन्दना करता हूं।

४४ सामजस्य

इस कविता मे कवि ने भावना के सत्य तथा भौतिक-सत्य के पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट करते हुए इन दोनो सत्यो के पारस्परिक सामजस्य और

संतुलन द्वारा ही जीवन की सफलता का सन्देश दिया है। आत्म-सत्य इन दोनो मे सामंजस्य स्थापित करता है।

भाव सत्य बोली . . . . एक सभी जन।

भावार्थ—यहाँ कवि भाव-सत्य और वस्तु-सत्य का मानवीकरण सा कर उन दानो के उत्तर-प्रत्युत्तर द्वारा दोनो के सामंजस्य पर बल दे रहा है। पहले भाव सत्य कहती है—

कवि कहता है कि भाव-सत्य ने मुँह मटका कर कहा कि तुम और मैं अर्थात् अपने और पराये की सीमाएँ निर्धारित करना बन्धन है। अपने और पराये की ये सीमाएँ मानव-प्रगति मे बाधा उत्पन्न करती हैं। मुझे तो यह अच्छा लगता है कि बादल के समान असीम-विस्तृत आकाश मे अपनापन खोकर पूरी तरह से मिल जाना। अर्थात् बादल जिस प्रकार असीम आकाश मे स्वच्छन्द रूप से सर्वत्र विचरण करता है और फिर उसी मे विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य को अपने-पराये के बन्धनो से मुक्त हो सबके कल्याण के लिए स्वयं को मिटा देना चाहिए। जो मनुष्य अपने-पराये की भावना रखते हैं वे सांसारिक और संकीर्ण हृदय वाले हैं। इनका जीवन ही मोल-तोल करने में अर्थात् पारस्परिक सांसारिक लेन-देन मे ही बीत जाता है। ये इस बात को नही देखते कि यह पृथ्वी एक है, आकाश एक है और सभी मनुष्य एक हैं। अर्थात् इनमें कोई भेदभाव नही है।

बोली वस्तु सत्य . . कुत्सित औ सुन्दर।

शब्दार्थ—वस्तु सत्य = व्यावहारिक सत्य, भौतिक सत्य। भाता = अच्छा लगता। द्वन्द्व = संघर्ष। स्नेही = प्रेमी। कुत्सित = घिनौने।

भावार्थ—भाव-सत्य की उपर्युक्त बातें सुन कर वस्तु-सत्य मुँह बिचका कर बोली—

मुझे तुम्हारी यह दार्शनिकता भरी बातें अच्छी नहीं लगती। यहाँ संसार मे मनुष्यो के शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार के है, उनकी रुचियाँ भिन्न-भिन्न हैं, स्वभाव भिन्न हैं और मन भिन्न है। यहाँ एक ही मनुष्य मे सम्पूर्ण गुण नहीं मिलते। इस संसार में सर्वत्र संघर्ष चलता रहता है। पुरुष और नारी प्रेमी, ईर्षी, चतुर मूर्ख, गरीब-धनी तथा घिनौने और सुन्दर सभी प्रकार के हैं।

अर्थात् सभी मनुष्य एक से नही है। उनके स्वभाव, गुण, रूप और आर्थिक स्थितियो मे बहुत अन्तर है।

आत्म सत्य बोली . . चल सकता जग।

भावार्थ—भाव-सत्य और वस्तु-सत्य के इस विवाद को सुन कर आत्म-सत्य (आत्मा-ज्ञान का सत्य) मुस्करा कर कहने लगी—

मुझे तुम दोनो का कारण मालूम है कि तुम दोनो परस्पर-विरोधी इस प्रकार की बातें क्यो कर रही हो। मै तुम दोनो को कभी नही भूलती। मै तुम दोनो का सचालन करती रहती हूँ। अर्थात् तुम दोनो को ही बढावा देती रहती हूँ। सपने तो पख खोल कर ऊपर उड जाते है परन्तु सत्य एक-एक पग गिन-गिन कर चलने से आगे नही बढ पाता। यदि मैं तुम दोनो मे सामजस्य न रख पाती तो क्या यह ससार चल सकता है। अर्थात् क्या ससार प्रगति कर सकता था।

भाव यह है कि ससार की प्रगति भावना के सत्य तथा व्यावहारिक सत्य—दोनो के परस्पर सहयोग मे ही सम्भव है। कोरा भौतिक सत्य एक सीमा तक पहुँच कर रुक जाता है। भावना का सत्य ही उसे उस सीमा से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। और इन दोनो की इस क्रिया-प्रक्रिया का सचालन आत्मिक ज्ञान द्वारा होता है। इन दोनो के सामजस्य द्वारा कवि आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति के प्रति सकेत कर रहा है। आध्यात्मिक तथा भौतिक विचारधाराओ द्वारा ही एक नवीन विश्व व्यापी सस्कृति का निर्माण होगा जो मानव को निरन्तर प्रगति-पथ पर आगे बढाती ले चलेगी।

४५ पतिता

जिस नारी का अत्याचारियो द्वारा बलात् शील भग कर दिया गया हो उसे जन-साधारण पतिता कहने लगते है। परन्तु इस कविता मे केशव अपनी प्रताडिता पत्नी को पतिता न मान अपने हृदय से लगा लेता है। मनुष्य मन मे पाप करने से कलकित होता है, शरीर मे नही—यह कवि का सन्देश है।

रोता हाय मार . . कर पुरजन।

भावार्थ—कवि कहता है कि मेरा चिर परिचित वृद्ध पडौसी माधव छाती

पीट-पीट कर रो रहा है कि "निर्दयी हत्यारे नीच लुटेरे मेरी वहू (पुत्रवधू) को कलंकित कर गए। अर्थात् उसके साथ बलात्कार कर गए। मेरा भाग्य फूट गया और धर्म भी लुट गया।" सारे परिवार के लोग सिर हिलाते हुए रो रहे हैं और वहू को अभागिनी और कलंकिनी कह रहे हैं। गांव के लोग भी बार-बार यही बातें कहते हुए अपने-अपने घरों को खिसक रहे हैं।

सिसक रही सहमी ... उठता तन।

भावार्थ—वह अबला पुत्रवधू सहमी हुई एक कोने में बैठी सिसक रही है। वह ऐसी लगती है मानो साँसों का एक ढेर कोने में बांध कर रख दिया हो। पड़ोसिनें उसे घेरे हुए कोस रही हैं और घर की नौकरानी तक उससे आंख चुराती फिर रही है, उसके पास तक नहीं जाती। इतने में उसका स्वामी केशव घर आता है। उसे देख उसके कुटुम्बी जन 'हा बेटा' कह जोर से रोते हुए अपना माथा पीट लेते हैं। उस रुदन को सुन और पति का आगमन जान वृक्ष से नोच कर नीचे फेंक दी गई लता के समान उस अबला का शरीर कांप उठता है कि अब न जाने क्या होगा।

सब सुन चुका ... न कलंकित।

भावार्थ—यह दृश्य देख कर केशव चीखता हुआ कहता है कि मैं सब सुन चुका हूँ। यह रोना-धोना बन्द करो। मालती (उनकी पत्नी) उठो। घर का यह काला अंधेरा कोना तुम्हें निगल जायेगा। मनुष्य मन से पाप करने पर ही कलंकित होते हैं। यह मिट्टी से बनी देह तो सदैव अपवित्र रहती है। प्रेम पतितों (पापियों) को पवित्र बनाने वाला होता है। इसलिए मैं तुम्हें कलंकित नहीं रहने दूंगा। तुम्हें अपनी ही बना कर रखूंगा।

४६ आजाद

पैगम्बर के एक ... एक पैर पर।

भावार्थ—एक बार पैगम्बर (हजरत मुहम्मद साहब) के एक शिष्य ने उनसे पूछा कि 'हजरत! तुम्हारे इस बन्दे अर्थात् मुझे इस बात का शक है कि इस दुनियां में इन्सान किस सीमा तक आजाद है और किस सीमा तक पाबन्द अर्थात् नियमों को मानने के लिए बाध्य है।' उसका यह प्रश्न सुन कर रसूल

अर्थात् हजरत मुहम्मद साहब ने कहा कि अच्छा, तुम इसी तरह खड़े रहो। फिर आगे आज्ञा दी कि अपना एक पैर ऊपर उठाओ। शिष्य 'जैसी आज्ञा' कह कर एक पैर ऊपर उठा कर केवल एक ही पैर पर खडा हो गया।

ठीक, दूसरा पैर • **था यह उत्तर।**

भावार्थ—शिष्य को एक पैर पर खडा देख हजरत मुहम्मद साहब ने हँस कर कहा कि ठीक है। अब दूसरा पैर भी ऊपर उठा लो। दूसरा पैर ऊपर उठाने का प्रयत्न करने पर शिष्य बार-बार धरती पर गिरने लगा। तब उसने कहा कि हजरत! दोनो पैर एक साथ ऊपर उठा कर खडे रहना तो नामुमकिन है। यह सुन कर हजरत ने उससे कहा कि तुम्हारा एक पैर ऊपर उठ कर तुमसे यह कहता है कि तुम इसी सीमा तक आजाद हो अर्थात् एक पैर केवल आगे बढने के लिए ही उठाया जाता है और तुम्हारा दूसरा पैर जमीन पर अडा हुआ कहता है कि तुम इस दुनिया से बँधे हुए हो।

(१) इस कविता के कई निष्कर्ष निकल सकते हैं—

(i) दोना पैर ऊपर उठा कर, इस ससार से सम्बन्ध त्याग कल्पना के लोक मे उडने का प्रयत्न करने से मनुष्य प्रगति नही कर सकता।

(ii) एक पैर उठा कर आगे रखा जाता है तब दूसरा पैर उठ कर आगे बढ़ता है। अर्थात् इस दुनियाँ से सम्बन्ध रख कर ही इन्सान प्रगति कर सकता है।

(iii) इन्सान अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है परन्तु उसे ससार द्वारा बनाये गए मान्य नियमो तथा प्राकृतिक नियमो का पालन करने के लिए बाध्य होना पडता है। ससार की अवहेलना कर वह आगे नहीं बढ सकता।

४७. स्वप्न बन्धन

कवि ने स्वप्न मे अपनी कल्पित प्रेयसी को देखा। उसके मानस की यह कल्पना स्वप्न मे साकार रूप धारण कर उसके पास आई। वह उसे देख विभोर हो उठा। कवि अपनी उसी कल्पित प्रेयसी का यहाँ वर्णन कर रहा है।

बांध लिया तुमने . .. .. मन में जगती !

भावार्थ—हे मेरे मानस की कल्पना मेरी प्रिया ! तुमने मेरे प्राणो को फूलो के कोमल बन्धन मे बांध लिया । तुम मेरे मन मे प्रकाश की साकार, सजीव मधुर मूर्ति के समान लिपट गई । तुमने मुझे स्वप्नो के आलिंगन मे बांध लिया । मैं अब तुम्हारे ही स्वप्न देखता रहता हूँ । अब मेरे सामने तुम्हारे शरीर की शोभा संकडो रूप धारण कर साकार-सजीव सी घूमती रहती है । अर्थात् मैं जागते हुए भी तुम्हारा ही स्वप्न देखता रहता हूँ । मेरी कल्पना तुम्हें अगणित रगो और भावो मे सजाती है । हे मानसि ! तुम क्षण भर मे ही मेरे मन मे सौ-सौ बार जाग्रत हो उठती हो । अर्थात् मैं प्रतिपल तुम्हारा ही रूप देखता रहता हूँ ।

तुम्हे स्मरण कर . . . उर कपन में ।

शब्दार्थ—आंक = अंकित कर । रस स्रोत = रस का झरना । विरस = नीरस ।

भावार्थ—तुम्हारा स्मरण कर, हृदय मे तुम्हारी छवि अंकित कर मेरे स्वप्न जाग्रत हो उठते है तो इसमे क्या आश्चर्य है कि मेरे प्राण गीत बन जांय, अर्थात् मेरे प्राण गीतो का रूप धारण कर साकार हो उठें और मेरा हृदय प्रेमी कवि बन जाय । और यदि सूर्य भी तुम्हे देख कर अपनी उष्णता त्याग स्निग्ध-शीतल चांदनी बरसाने लगे । तुम सुगन्धि के समान मेरे मन मे सहज-मधुर रूप से बरबस समा जाती हो । अर्थात् तुम्हारा स्मरण कर मेरा हृदय सहज भाव से मधुर-कोमल भावनाओ मे ओत-प्रोत हो जाता है । तुम मेरे नीरस, उजडे जीवन रूपी पतझड मे वसन्त की सी बहार उत्पन्न कर देती हो और प्रेम का सोता प्रवाहित कर देती हो । अर्थात् मेरा जीवन वसन्त के समान खिल उठता है । तुम मेरे प्राणो मे प्रेम और हृदय की धडकनो में गीत बन जाती हो । अर्थात् मेरे प्राण प्रेम से तथा हृदय गीतो से तरगित हो उठता है ।

तुम वेही हो . . तन धर पाई !

शब्दार्थ—कनक = सुनहली । अग भगिमा = अग सचालन । तनिमा = दुबलता, पतलापन ।

भावार्थ—आज सत्य अहिंसा के सिद्धान्तो ने अन्तर्राष्ट्रीय जागरण की चेतना उत्पन्न कर दी है अर्थात् सारा ससार इन सिद्धान्तो को स्वीकार कर अपनाने लगा है। अब सारा ससार मानवता को अपनाने का प्रयत्न करता हुआ धरती पर लगे युद्ध के घावो को भरने का प्रयत्न कर रहा है। अर्थात् ससार अब युद्ध से बचने का प्रयत्न कर विश्व-शान्ति का समर्थक बनता जा रहा है। मानवता के नवीन सिद्धान्त बिजली की सी अदम्य, प्रखर गति के साथ अणुबमो रूपी अश्वो को अपने वश मे कर निरन्तर आगे बढती हुई गान्धी की जय जयकार कर रहे हैं। अर्थात् आज अणु-बमों के प्रयोग पर बन्धन लगा मानव, विनाश से बच प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। आज मानव के निर्मल शान्ति रूपी वर्फ से मण्डित हृदय रूपी शिखर गान्धी के सिद्धान्तो से उत्पन्न नई चेतना से भर सुनहले रूप मे निखर उठे हैं। अर्थात् जैसे बाल रवि की सुनहली किरणें तुषार मण्डित पर्वत-शिखरो को एक नवीन स्वर्णिम आभा से नए सौन्दय प्रदान कर देती हैं वैसे ही गान्धी जी के सिद्धान्तों ने मनुष्य के हृदय को नई चेतना के प्रकाश से भर दिया है।

(१) कवि की धारणा है कि भयकर विनाशकारी अणु-आयुधो के इस युग मे केवल गान्धी जी के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त ही मानव को पूर्ण विनाश से बचा सकते हैं। सन् १९४८ मे व्यक्त की गई कवि की यह धारणा आज पन्द्रह वर्ष उपरान्त सत्य सी होती प्रतीत हो रही है। आज विश्व के लगभग सभी राष्ट्र विश्व-शान्ति के समर्थक और प्रचारक बन गए हैं। सह-अस्तित्व का सिद्धान्त गान्धी जी के विचारो पर ही आधारित है।

४९ भारत गीत

जय जन भारत ... शाश्वत गाता !

शब्दार्थ—अभिमत = स्वीकृत। गण तन्त्र = प्रजातन्त्र।

भावार्थ—कवि भारत की जनता के रूप मे भारत का जयगान कर रहा है।

हे भारत की जनता के प्रतीक भारत तेरी जय हो। तुझे जनता ने मन से स्वीकार कर लिया है। अर्थात् जनता ने मन से तेरी स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया है। तू जनता के प्रजातन्त्र का विधाता है। उज्ज्वल हिम मण्डित हिमालय तेरा गौरव से उन्नत मस्तक है और गगाजल हृदय का हार है। विन्ध्याचल तेरी कटि है और तेरे चरणो के सागर लहराता हुआ निरन्तर तेरी महिमा के गीत गाता रहता है।

हरे खेत लहरे ... शान्ति अधिष्ठाता।

शब्दार्थ—ऊर्वर=उपजाऊ। साम=सामवेद। अधिष्ठाता=स्वामी।

भावार्थ—यहाँ हरे-भरे खेत खडे हैं, नदी और झरने लहराते हैं। इनसे तेरी शोभा जीवन के उल्लास और समृद्धि से भर रही है। यहाँ के निवासियों की करोडो भुजाएँ ससार के सम्पूर्ण कार्य करने मे व्यस्त हैं और असख्य पग प्रगति के ध्रुव (अडिग) लक्ष्य की ओर बढ रहे है। हे भारत! तू इस ससार मे सभ्यता का आदि जनक है। सामवेद तेरी गुण-गाथा का गान कर रहे हैं। हे नवीन मानवता के निर्माता, सत्य अहिंसा के सिद्धान्तो का ज्ञान देने वाले तथा विश्व में शान्ति का प्रचार करने वाले तेरी जय हो, जय हो।

प्रयाण तूर्य ... अजय, त्राता!

शब्दार्थ—तूर्य=तुरही, शीघ्र। पटह=दुन्दुभी, नगाडा। ध्वज=पताका। त्राता=रक्षक।

भावार्थ—प्रस्थान करने का विगुल (तुरही) बज उठे, गम्भीर घोष करता हुआ नगाडा घहराने लगे। और इनके स्वरो पर सत्य की विशाल सेना अपनी लोहे के समान दृढ भुजाओ को ऊपर उठा कर आगे चल पडे। हे भारत माता! तू शक्ति का साकार रूप, अनेक प्रकार की शक्तिया को धारण करने वाली है। मैं तेरी वन्दना करता हूँ। अशोक के धर्म-चिन्ह से रक्षित तेरा तिरगा झण्डा किसी से भी पराजित न हो सदैव फहराता रहता है। हे निर्भय, अजेय और सब की रक्षा करने वाली भारत माता तेरी जय हो, जय हो, जय हो।

(१) भारत के तिरगे झण्डे पर अशोक के प्राचीन स्तम्भो पर पाए गए धर्म-चक्र का चिन्ह अकित है। इस धर्म-चक्र मे ऊपर तीन सिंह बने हुए हैं तथा उनके नीचे अनेक धुरियो वाला एक चक्र है। भारत के झण्डे पर केवल

इस चक्र का ही चिन्ह अकित रहता है, ऊपर वाले सिंहो का नही। अशोक ने इसी चिन्ह से अकित पताकाएँ देकर अपने दूतो को विदेशो में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार करने भेजा था। इसीलिए इसे धर्म-चक्र कहा गया है।

५०. गीत विहग

प्रस्तुत कविता मे कवि अपने गीतो को सूर्य का रूप प्रदान कर उनके द्वारा विश्व मे नव-जागरण भर देने का रूपक बाँध रहा है।

मैं नव मानवता   **पल्लव सुलगाता।**

शब्दार्थ—ज्योतिवाह = किरण, सूर्य। ज्वाला = लाल।

भावार्थ—कवि अपने गीत को सूर्य के समान नव-जीवन की ज्योति प्रदान करने वाला मानता है। यहाँ उसका गीत स्वय अपने सम्बन्ध मे कह रहा है कि—

मैं ससार को नवीन मानवता का सन्देश सुनाता हूँ। मैं स्वाधीन लोक की गौरव-गाथा के गीत गाता हूँ। अर्थात् स्वाधीनता के गौरव भरे गीत गाता हूँ। मैं मन रूपी क्षितिज के पार अर्थात् मन की सीमाओ से परे स्थित उस शाश्वत रूप से मौन रहने वाले ब्रह्म की ज्ञान के प्रकाश से प्रज्वलित भूमि के प्रकाश को लाने वाला बन जाता हूँ। अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान का प्रकाश लाकर विश्व मे फैलाता हूँ। (सूर्य ब्रह्म की ज्योति से प्रकाशित है अत उसे ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश विकीर्ण करने वाला माना गया है।)

मैं नष्ट-भ्रष्ट बीते हुए प्राचीन युगो के खडहरो पर अपनी सुनहली छाया फैला कर नवीन प्रभात के आकाश मे उठ कर मुस्कराता हूँ। अर्थात् कवि अपने गीतो द्वारा प्राचीन युग का गौरवमय वर्णन कर ससार को प्रभात के समान नव-जीवन का सन्देश देता है। जिस प्रकार वसन्त पतझड के उपरान्त लता-वृक्षो की शाखाओ को नई-नई लाल कोपलो से भर उनमे नव-जीवन का सचार कर देता है उसी प्रकार कवि के गीत मनुष्यो के निराशा के कारण मुरझाए नीरस जीवन मे नवीन उमगें जाग्रत कर उन्हे नव-जीवन से भर देता है।

आवेशों से उद्वेलित .... वक्षदिखाता !

शब्दार्थ—क्रान्त=आक्रान्त, सताया हुआ । वन-रोदन=वन मे रोना अर्थात् व्यर्थ का रोना । भू मन=पृथ्वी रूपी मन । पिक=कोयल । पावक=अग्नि । भव-क्लान्त=ससार के कष्टो के थके ।

भावार्थ—मैं विभिन्न प्रकार की आवेशपूर्ण भावनाओ से तरगित जनता रूपी सागर मे ज्वार अर्थात् अत्यधिक आवेश उत्पन्न कर पवतो के समान नवीन ऊँचे स्वप्नों की लहरें उत्पन्न कर देता हूँ। अर्थात् जनता की भावनाओ को अत्यधिक तीव्र वेग के साथ उभार देता हूँ। जिस प्रकार शिशिर ऋतु से आक्रान्त हो (पतझड हो जाने पर) वन पृथ्वी पर रुदन करता है उसी प्रकार जब मन पूर्ण रूप से हताश हो वन्य-रोदन (एकान्त-विलाप) करता है तब मैं मन मे युग का प्रतीक वन उसी प्रकार प्राणो की अग्नि अर्थात् नवीन-चेतना भर देता हूँ जिस प्रकार कोकिल अपनी कूक द्वारा सूखे, पत्रहीन मुरझाए वन मे वसन्त रूपी नव-जीवन भर देती है। (कोयल का कूकना वसन्त के आगमन का सकेत माना जाता है।)

मैं ससार के सकटो से थके, परिश्रम के कारण मिट्टी से सने पैरो वाले मनुष्यो को स्वप्न के चरण प्रदान कर उन्हे कल्पना लोक मे विचरण करना सिखा देता हूँ। अर्थात् जब व्यक्ति ससार से सघर्ष करते-करते थक जाता है तो मैं उसे वर्तमान को भूल भविष्य की मनोरम कल्पनाएँ करना सिखा देता हूँ जिनमे डूब वह अपनी सम्पूर्ण क्लान्ति भूल जाता है। मैं सासारिक कष्टो के कारण मलिन बने हृदय को प्रकृति का खुला हुआ शोभायमान वक्ष दिखा देता हूँ। अर्थात् सासारिक कष्टो मे पीडित जनो के सम्मुख प्रकृति का सुन्दर उन्मुक्त रूप प्रस्तुत कर उन्हे आनन्द प्रदान करता हूँ। मनुष्य प्रकृति के सुन्दर रूप को देख अपनी वेदना भूल जाता है।

जीवन मन के . . .. शख बजाता !

शब्दार्थ—अनिमेप=निरन्तर । पगु=लँगडा । सोपानो=सीढियो । ऊर्ध्व=ऊपर । मरुजल=मृग-मरीचिका । स्मित=खिला, मुस्कराता ।

भावार्थ—जीवन और मन के विभिन्न प्रकार के भेदो के कारण विभ्रान्त बनी बुद्धि को, अर्थात् उस बुद्धि को जो अनेक प्रकार के भेदो के कारण यह

निश्चित नही कर पाती कि सत्य क्या है, मैं निरन्तर इस भावना द्वारा जाग्रत करता रहता हूँ कि जीवन मे बाह्य-विरोध होते हुए भी सर्वत्र आत्मिक एकता है। मैं अज्ञान के अन्धकार के कारण, जगत के वाह्य रूपों में भटकते अशक्त मन को आत्मा के सोपानो पर ऊपर चढाता रहता हूँ। अर्थात् मनुष्य को आत्म-चिन्तन करने की प्रेरणा प्रदान कर निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर करता रहता हूँ।

मृग-मरीचिका के समान व्यर्थ के आदर्शो के मोह मे पडे, तृष्णा से व्याकुल मानवो रूपी मृगो को मैं आकाश-गगा के समान निर्मल, उज्ज्वल आत्मा के पथ को बताता रहता हूँ। अर्थात् उन्हे सासारिक खोखले आदर्शो के आकर्षण से मुक्त कर आत्मोन्नति का मार्ग दिखाता रहता हूँ। मैं प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे नई मानवता की भावना जाग्रत कर मुक्त कठ से जीवन-सघर्ष का शख बजाता हूँ। अर्थात् साहस के साथ जीवन-सघर्ष कर नई मानवता का निर्माण करने की प्रेरणा प्रदान करता हूँ।

मैं गीत विहग . . . . विभव लुटाता।

शब्दार्थ—मर्त्य=नाशवान। नीड=घोसला। स्वदूतो=स्वर के दूतो। मनोभावो=मन के भावो।

भावार्थ—मैं गीत रूपी सूर्य हूँ। मैं अपने नाशवान घोसले अर्थात् इस नाशवान घरती पर रहने वाले नाशवान मानव के हृदय रूपी घोसले से उड कर-उत्पन्न होकर-मानव-चेतना के आकाश मे मन रूपी कल्पना के पख फैलाता हूँ। मैं अपने हृदय के प्रकाश की वर्षा कर जीवन के अन्धकार को स्वर्णिम बना नहलाता हूँ। अर्थात् कवि अपने गीत में अपने हृदय की निर्मल कल्याणमयी ज्ञान और चेतना भरी अभिव्यक्ति कर जीवन में व्याप्त अज्ञान, अशान्ति आदि को दूर कर उसे मनोहर रूप प्रदान करता है।

मे अपने स्वर रूपी दूतो को अपने मन के भावो मे आवद्ध कर उनको जनता के जीवन का अग वना देता हूँ। अर्थात् मैं अपने भावो को स्वरो के सगीत मे वाँध जन-जीवन का अभिन्न अग बना देता हूँ। मेरे गीतो मे जनता का जीवन साकार हो उठता है। मैं मानव-प्रेमी हूँ। मे एक नई दुनियाँ और स्वर्ग का निर्माण कर मनुष्यो की इस घरती पर देवताओ की सम्पदा लुटाता हूँ।

अर्थात् इस धरती के मानवो को देवोपम उज्ज्वल, पवित्र भावनाओ से भर इस धरती को स्वर्ग बना देता हूँ।

मै जन्म मरण ... . जागरण गाता।

शब्दार्थ—अमरासन = देवताओ का पद।

भावार्थ—मैं मानव को जन्म और मरण के बन्धनो से मुक्त कर उसे देवताओं का अमर पद प्रदान करता हूँ। अर्थात् कवि अपने गीतो द्वारा मानव की गौरव-गाथा का वर्णन कर उसे अमर बना देता है। मैं विश्व को दिव्य चेतना का अमर सन्देश सुनाता हूँ और इस स्वाधीन धरती के सुनहले जागरण के गीत गाता हूँ।

(१) कुछ आलोचक इस कविता पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव मानते हैं। 'ऊर्ध्व' चेतना गगन, दिव्य चेतना आदि ऐसे शब्द हैं जिन्हे प्रयुक्त हुआ देख किसी दर्शन-विशेष के प्रभाव की कल्पना कर लेना हमारे कुछ आलोचको का स्वभाव सा बन गया है।

(२) इस कविता मे कवि अपने गीतो को सूर्य का रूप प्रदान कर उन्हे जन-जागरण का सन्देश-वाहक मानता है। यह कविता सन् १९४९ की रचना है। भारतवर्ष पूर्व ही स्वतन्त्र हुआ था। कवि देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति से एक अलौकिक उमग से भर उठा है। वह स्वय को जन-जागरण का सन्देश-वाहक मानता है और उसकी यही भावना इस कविता मे पूर्ण उमग के साथ अभिव्यक्त हो उठी है। मन की चेतना सदैव शुभ का प्रतिनिधित्व करती है।

५१. निर्माण काल

इस कविता मे कवि ने नवीन युग के नव-निर्माण और प्राचीन युग के ध्वस का चित्र अकित किया है।

लो, आज झरोखों . . जन भू पर।

भावार्थ—कवि कहता है कि देखो, आज झरोखो मे उड कर फिर देवदूत (फरिश्ते) भीतर आ रहे हैं और इन्द्रधनुषो के रगीन चमकीले पख खोल नवीन स्वप्न इस पृथ्वी पर उतर रहे हैं। भाव यह है कि आज नव-जीवन मे एक नई

चेतना जाग्रत हो रही है और विश्व के नव-निर्माण की नई-नई कल्पनाएँ, योजनाएँ बनाई जा रही है।

रग रग के छाया .. . होती क्षय।

भावार्थ—आज रग-विरगे छाया के समान कोमल पखो सी नव-युग की आभा की पखुडियाँ झर रही है। अर्थात् नव-निर्माण की रगीन कल्पनाएँ वातावरण मे चतुर्दिक व्याप्त हो रही है। फिर मन की लहरो अर्थात् कल्पनाओ पर देवलोक की अप्सराये प्रतिविम्बित हो निश्शब्द तैरने लगती है। अर्थात् नव-निर्माण की ये कल्पनाएँ अप्सराओ के समान मोहक है जो निश्शब्द पग धरती-उतरती चली आ रही है।

कवि कहता है कि यह धरती का निर्माण काल है, धरती का नया निर्माण हो रहा है। यहाँ अरुणोदय (सूर्योदय) के समान नव-जीवन का प्रकाश विकीर्ण हो रहा है। अब नई मानवता जन्म ले रही है और बौने के समान निम्न कोटि की मनुष्यता का विनाश हो रहा है। अर्थात् अब मनुष्य हीनता की भावना त्याग नई मानवता का निर्माण कर रहा है।

धू धू कर . . करता नर्तन।

शब्दार्थ—प्रपात = झरना। रक्त जिह्व = लाल जीभ, काली।

भावार्थ—आज नव-निर्माण की इस बेला मे प्राचीन सडा-गला ससार अर्थात् प्राचीन सडी-गली रूढियाँ, रीति-रिवाज, मान्यताएँ धू-धू कर जल रही है नष्ट हो रही है। आज मनुष्यो के हृदय की सम्पूर्ण कलुषता जल कर भस्म हो रही है। आज अन्धकार के पर्वत पर विजली के झरने सी प्रकाश की प्रखर रेखा आक्रमण कर रही है। अर्थात् अज्ञान के अन्धकार पर नए ज्ञान की प्रकाश रेखा का अवतरण हो रहा है। अज्ञान का विनाश और ज्ञान का प्रसार हो रहा है।

एक के वाद दूसरे भयकर सघर्ष आते जा रहे है। इन ईश्वरीय एव मानवीय सघर्षो से सारी धरती काँप रही है। आज जनता का मन रूपी समुद्र उद्वेलित हो रक्त मे सनी जिह्वा वाली काली के समान भयकर नृत्य कर रहा है। अर्थात् आज प्राचीन का भयकर रूप से विनाश हो रहा है।

ढह रहे अन्ध .. . करते सुरगण ।

शब्दार्थ—शृंग = चोटियाँ, शिखर । अहद् = दिन । सचरण = गति ।

भावार्थ—आज अन्ध-विश्वासो के ऊँचे शिखर ढह रहे हैं । युग बदल रहा है । आज का यह दिन ब्रह्मा के समान नव-सृजन कर रहा है । आज चिरन्तन से चले आते ज्ञान रूपी शिखर नए ज्ञान के प्रकाश से निखर उठे हैं । आज यह विश्व अपनी प्राचीन गति को त्याग एक नई गति से आगे बढ रहा है । अर्थात् विश्व मे नई भावनाओ का उदय हो रहा है और अज्ञान के कारण प्राचीन शाश्वत सिद्धान्त नए रूप से प्रकाश मे आ रहे हैं ।

आज वृक्षो के पत्ते घटियो की सी सुमधुर ध्वनि के साथ बज रहे हैं । आज ससार का जीवन सौन्दर्य की ज्वाला से नवीन रूप धारण कर रहा है । आज सृजन अपने नवीन ज्योति रूपी चरण धर कर आगे बढ रहा है । अर्थात् आज नवीन ज्ञान से आलोक मे नया सृजन हो रहा है । जगत की इस नवीन उपलब्धि को देख देवतागण मुग्ध हो इस पर फूलो की वर्षा कर रहे हैं ।

अब स्वर्ण द्रवित रहे परिरम्भण ।

शब्दार्थ—अन्तर्नभ—हृदय रूपी आकाश ।

भावार्थ—जिस प्रकार प्रभात वेला मे आकाश पिघले हुए सोने की सी सुनहली आभा से शोभायमान हो उठता है उसी प्रकार नव-निर्माण की इस वेला मे मनुष्यो का हृदय नव-निर्माण की नई चेतना के स्वर्णिम मनोहर प्रकाश से भर उठा । उसमे नई चेतना रूपी शोभा के झरने निश्शब्द रूप से झर रहे हैं । अर्थात् मनुष्यो के हृदय अपने सम्पूर्ण आन्तरिक कलुष से मुक्त हो नवीन सुन्दर, सुखद कल्पनाओ से ओत-प्रोत हो उठे हैं । अब हृदयो मे सूक्ष्म शक्तियाँ, ऐसी शक्तियाँ जिनके द्वारा युग-जीवन मे एक नवीन प्रेरणा का सचार हो रहा है, उत्पन्न हो रही हैं । इन शक्तियो के अवतरित होने से हृदय रूपी आकाश गुंजार अर्थात् नवीन उत्साह की ध्वनियो से गुंजरित हो रहा है । अर्थात् हृदय नए उत्साह से भर उठे हैं ।

पहले मानव की जो भुजाएँ निराशा और अज्ञान के अन्धकार के कारण अशक्त और निर्जीव सी हो रही थी वही अब नई चेतना के प्रकाश को अपना कर क्रियाशील हो उठी है, नव-निर्माण कर रही हैं । अब देवता मानव शरीर

धारण कर अवतरित हो रहे हैं। यह धरती लोक चेतना की रगभूमि बन रही है जहाँ धरती और स्वर्ग मिल कर आनन्द क्रीडा कर रहे हैं। भाव यह है कि अब मनुष्यो मे दैवी एव मानवीय गुणो का समन्वय हो रहा है जिसके कारण यह धरती स्वर्ग का सा रूप धारण करती जा रही है। नव-निर्माण की भावना धरती को स्वर्ग बना रही है।

(१) इस कविता का मूल भाव यह है कि नव-निर्माण की इस वेला मे प्राचीन सडी-गली अन्ध रूढियों, भ्रान्तियो, रीतियो आदि का विनाश और नई युग-चेतना के अनुरूप नए जीवन-मूल्यो और उन्नत, स्वस्थ परम्पराओ की स्थापना हो रही है।

(२) यह कविता भी सन् १६४६ की रचना है। कवि नव-प्राप्त स्वतन्त्रता की उमङ्ग से भर रहा है। उसकी यही उमङ्ग इसमे अभिव्यक्त हुई है।

५२ युग दान

कवि नवीन युग को भावी उपलब्धियो की कल्पना-कामना करता हुआ उसे सम्बोधन कर कह रहा है।

जीवन-बाहों मे   **तुम्हारा लोकोत्तर।**

शब्दार्थ—मादन=मादक। भव व्यथा क्लात=सासारिक कष्टो से थका हुआ।

भावार्थ—कवि नवीन युग को सम्बोधन कर कह रहा है कि—

मैं तुम्हारे नित्य नवीन बने रहने वाले सौन्दर्य को जीवन की भुजाओ म बाँध सकूँ अर्थात् जीवन में उस सौन्दर्य को उतार कर जीवन को सौन्दर्य से भर सकूँ। मैं मनुष्यों के मन मे तुम्हारे अमर और मादक स्वरा भरे सगीत को भर सकूँ।

तुम्हारा आनन्द सासारिक व्यथाओ से क्लान्त बने हृदयो मे आनन्द की वर्षा कर सके। और तुम्हारा अलौकिक देवत्व इस ससार के जीवन का अग बन सके। अर्थात् यह ससार तुम्हारे अलौकिक देवत्व को आत्मसात कर स्वय स्वर्ग बन जाय। यहाँ अलौकिक भावनाओ का साम्राज्य छा जाय।

करुणा धारा से .... को भू पर !

शब्दार्थ—निर्मम=कठोर। मनोमुक्त=मन मुक्त हो रहा है। शनैः= धीरे। गोपान=छिपा हुआ। स्पृहा=इच्छा।

भावार्थ—मनुष्य का पृथ्वी के समान कठोर हृदय करुणा की धारा से उर्वर (उपजाऊ) बन सके। अर्थात् जिस प्रकार कठोर अर्थात् बजर धरती पर जल-वर्षा होने से वह उपजाऊ बन जाती है उसी प्रकार मनुष्यो के कठोर हृदय करुणा की धारा से ओत-प्रोत हो कोमल भावनाओ वाले बन जाय, कठोरता का आमूल उन्मूलन हो जाय। इस ससार के सारे अच्छे-बुरे कर्म उन्नत बान तुम्हे अर्पित हो जाय। अर्थात् मनुष्यो के सारे कर्म केवल नवीन युग का निर्माण करने के लिए ही हो।

अब मनुष्यत्व अर्थात् भौतिक भावनाओ-आकाक्षाओं से मनुष्यो के मन मुक्त हो धीरे-धीरे देवत्व अर्थात् अलौकिक-उच्च-कोमल भावनाओ और आकाक्षाओं से भर निखर रहे हैं। मनुष्य सासारिक राग-द्वेष आदि की भावनाओं से मुक्त हो करुणा, सौहार्द्र, निष्काम कर्म जैसी देवोपम भावनाओ से परिचालित हो रहे हैं। इस धरती पर रहने वाले मानवो की सदैव यह गुप्त अभिलाषा रही है कि इस धरती को स्वर्ग बना सकें। अब धरती को स्वर्ग बनाने की मनुष्यो की वही गुप्त अभिलाषा इस धरती पर विचरण करने वाली है। अर्थात् मनुष्य इस धरती को स्वर्ग बना देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यह अन्धकार का .. . ... शोभा मे चेतन !

शब्दार्थ—भूत शक्तियां=सासारिक शक्तियाँ। अभिशापित=शाप से कुंठित।

भावार्थ—कवि कहता है कि यह घोर अन्धकार का समय है। जिस प्रकार अन्धकार के उपरान्त सूर्योदय होता है और ससार मे नव-जीवन का सचार हो जाता है उसी प्रकार कष्टो रूपी यह अन्धकार समाप्त होता जा रहा है और मनुष्यो के हृदय नई चेतना से द्रवित हो रहे है, उनमे नई चेतना उत्पन्न हो रही है। अन्धकार के समय मनुष्य की जो शक्तियाँ किसी के शाप के कारण जड हो गई थी, मनुष्य निष्क्रिय से हो रहे थे, अब वही शक्तियाँ पुन

चैतन्य हो मनुष्यो को क्रियाशील बनने का आह्वान दे रही हैं। अर्थात् मनुष्य नई चेतना से भर पुन क्रियाशील हो उठने का प्रयत्न कर रहे हैं।

जिस प्रकार वृक्षो के ऊपर पुष्प मुकुट के समान खिल पवन के हृदय मे अपनी मादक गन्ध भर देते हैं उसी प्रकार अब नवीन युग मनुष्यो के जीवन से, मन से नई शोभा और चेतना से उत्पन्न हो रहा है। अर्थात् मनुष्य नवीन युग की पुकार सुन -नई चेतना से भर उसे नया रूप और नई शोभा प्रदान करने को प्रस्तुत हो उठे हैं।

(१) इस कविता में 'नव-निर्माण', 'गीत-विहग' आदि कविताओं मे व्यक्त भावनाओ की पुनरावृत्ति हुई है। कवि ने भविष्य निर्माण की अपनी कल्पनाओ को इन कविताओ मे नए-नए ढग से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

५३ नमन

इस कविता मे भी नवीन-युग के प्रति पिछली कविताओं मे व्यक्त भावनाओ की पुनरावृत्ति हुई है। कवि नवीन-युग को प्रणाम कर रहा है।

नमन तुम्हें करता मन।

शब्दार्थ—नमन = नमस्कार, प्रणाम। प्रीति-मौन = मूक प्रेम। स्पन्दन = धड़कन।

भावार्थ—कवि नवीन-युग को सम्बोधन कर कह रहा है—

मेरा मन तुम्हें प्रणाम करता है। हे इस ससार के प्राणियो के जीवन। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति मूक-प्रेम भरा हुआ है, मैं मन ही-मन तुम्हें प्रेम करता हूँ। मेरा मन अपने हृदय की प्रत्येक धड़कन में सदैव तुम्हारा ही स्मरण करता रहता है।

अश्रु सजल अब युग नूतन।

शब्दार्थ—आनन = मुख। तुहिन = ओस। तरल = गीले। वारिज = कमल। मानस स्थिति = मानसिक स्थिति।

भावार्थ—अब मेरा मुख आँसुओ से गीला हो रहा है। कमल के नेत्र ओस की बूँदो मे तरल हो रहे हैं। अर्थात् जिस प्रकार अरुणोदय से पूर्व कमल का

पखुडियाँ ओस की बूँदों से गीली हो जाती हैं उसी प्रकार हे नवीन युग ! तुम्हारे आगमन की कल्पना कर मेरा हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो उठा है और मेरे नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आए हैं। तुम्हारी पवित्र स्मृति से मेरी मानसिक स्थिति ओत-प्रोत हो उठी है और मैं अपनी इस पवित्र मानसिक स्थिति को तुम्हें समर्पण करता हूँ।

हे नूतन युग ! तुम सबके हृदय में होकर आओ। अर्थात् सबके हृदय तुम्हारे आगमन की भावना से भर उठें। तुम्हारे प्रति सबकी शाश्वत श्रद्धा रहे। तुम साथ उसी प्रकार नव-जीवन की रंगीनी लाओ जिस प्रकार अरुणोदय अपने साथ नव-प्रभात रूपी नव-जीवन लाता है।

बहे रुधिर में ... युक्त आराधन !

शब्दार्थ—स्वर्गिक पावक = अलौकिक अग्नि, चेतना। जावक = महावर। आराधन = पूजा।

भावार्थ—तुम्हारे आगमन से रक्त में अलौकिक अग्नि अर्थात् अलौकिक चेतना उत्पन्न हो उठे। नेत्र स्वप्नों के पंख लगा कर निरन्तर भविष्य के उज्ज्वल स्वप्न देखते रहें और जीवन का प्रत्येक कदम शोभा और समृद्धि के महावर में रंग जाय। अर्थात् मानव का प्रत्येक कार्य जीवन को समृद्धि और शोभा से भर देने वाला बन जाय।

हे नूतन युग ! आज तुम व्यक्ति के हृदय में अपना स्थान जमाओ। और फिर नव निर्माण के रूप में सम्पूर्ण विश्व में साकार रूप धारण कर प्रगट हो। अर्थात् मनुष्य तुमसे नवीन चेतना ग्रहण कर अपने प्रयत्नों से सम्पूर्ण संसार को नया उज्ज्वल स्वरूप प्रदान कर दें। मनुष्यों के कर्म और वचन मिल कर एक साथ तुम्हारी पूजा करने लगें। अर्थात् मनुष्य कर्म और विचारों द्वारा नवीन युग का निर्माण करें।

असफल हो जब ... कर दो चेतन !

शब्दार्थ— श्रान्त = थकित। मनोबल = मन की शक्ति। करुणा-कर = करुणा हस्त।

भावार्थ—जब अपने प्रयत्न में असफल होकर मन की शक्ति थक जाय

और आवेशो के कारण हृदय व्याकुल हो उठे उस समय तुम अपने करुणा भरे हाथो से स्पर्श कर मेरी उस जडता को दूर कर मुझ मे निमल चेतना का सचार कर दो। अर्थात् मेरी उस निराशा और व्याकुलता की स्थिति को दूर कर मुझ मे पुन चेतना भर दो।

५४. जिज्ञासा

इस कविता मे कवि नवीन भावनाओ के उदय को झरनो का रूप प्रदान कर यह जिज्ञासा कर रहा है कि ये कैसी भावनाएँ है जो मेरे जीवन मे आनन्द और नवीन सौन्दर्य का सचार कर रही है।

कौन स्रोत ये   **कँपते रहते !**

भावार्थ—स्रोत=झरने। अवाक्=मौन। मुक्ता=मोती। रव=ध्वनि। अतलताओ=अथाह, गहराइयाँ। हिलकोरो=हिलोरो, लहरो।

भावार्थ—कवि जिज्ञासा कर रहा है कि—ये कौन से झरने है ? ये किन आकाशो मे खोए हुए थे जो अब न जाने किन मौन पर्वत-शिखरो से झर-झर कर किस प्रशान्त समतल प्रदेश मे अपने सफेद झागो रूपी मोती उत्पन्न कर कल-कल ध्वनि करते बढ़ रहे है। भाव यह है कि मेरे हृदय मे उमडती नवीन भावनाएँ न जाने कहाँ से उत्पन्न हो मेरे शान्त हृदय मे अद्भुत सौन्दर्य की चेतना भर रही हैं। ये झरने न जाने किन निर्मल अथाह गहराइयों मे और शान्त नीले आकाश मे बह रहे है। अर्थात् ये भावनाएँ मेरे हृदय की न जाने किस गहराई मे उठ-उठ कर मेरे सारे हृदय पर छा रही है। ये झरने न जाने किन सुखो का स्पर्श पाकर सुनहरी लहरो के रूप मे काँप रहे हैं। अर्थात् ये भावनाएँ मेरे हृदय में सुख उत्पन्न कर मुझे रोमाचित कर रही हैं।

किरणों के वृन्तों   .   .   **तन्मय अन्तस्तल !**

शब्दार्थ—वृन्तो=टहनियो। स्वप्नोत्पल=स्वप्न रूपी कमल। रक्त पीत सित नील=लाल, पीला, सफेद और नीला। सौरभ=सुगन्धि। मज्जित=स्नान करा कर। दिगचल=दिशाओ का आँचल। रहस=केलि-क्रीडा। अन्त-स्तल=हृदय।

भावार्थ—ये कौन से झरने हैं जिनके जल मे किरणे प्रतिबिम्बित होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो उन किरणो के डण्ठलो पर भावों के सतरगे स्वप्नो के अगणित कमल मन रूपी लहरो पर प्रतिबिम्बित से लाल, पीले, सफेद, नीले रग वाली उज्ज्वल पखुडियो के साथ खिल उठे हों। अर्थात् किरणो से रगीन बनी उन लहरो को देख मन मे अनेक प्रकार की निर्मल कल्पनाएं जाग्रत हो उठती हैं। न जाने किस नामहीन अर्थात् अलौकिक सुगन्धि में डूब कर सम्पूर्ण दिशाएं चचल हो उठती है और उस मादक केलि-क्रीडा से गु जरित वातावरण मे मेरा मूक हृदय तन्मय हो जाता है। अर्थात् हृदय मे मादकता भर जाती है। भाव यह है कि उन नवीन कल्पनाओ से मेरा शान्त हृदय एक अलौकिक आनन्द से भर उठता है।

श्रद्धा औ विश्वास ऊपर शाश्वत।

शब्दार्थ—मरालो=हसो। सरसी=छोटा सरोवर। ग्रीवा=गर्दन। अविगत=अज्ञात, रहस्यमय।

भावार्थ—ये कौन से झरने है जिन्हें देख कर मेरे सात्विक हृदय रूपी सरोवर मे श्रद्धा और विश्वास रूपी राज हसो के जोडे अपनी सफेद सुनहली गर्दन मोडे तैरने लगते है। अर्थात् मेरे हृदय में श्रद्धा और विश्वास के सात्विक भाव क्रीडा करने लगते है। मेरा हृदय सहसा शोभा के स्वर्गीय रूप से भर जाता है। मेरे हृदय मे अलौकिक सौन्दर्य छा जाता है। और नए छन्दो के घु घरू विना लिखे हुए गीतो के मधुर पद बन जाते है। अर्थात् मेरे हृदय से नवीन छन्दो वाले ऐसे गीतो के पद निकलने लगते हैं जिनकी अभी रचना नहीं हुई है। मैं नए-नए छदो मे नए गीतो की रचना करने को व्याकुल हो उठता हूं।

मेरे सारे बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते है अर्थात् मैं सासारिक बन्धनो को छिन्न-भिन्न कर उन्मुक्त हो जाता हूं। मेरे हृदय मे उठने हर्ष की ज्वार में उमङ्ग मे सारे बन्धन टूट जाते हैं। मेरे हृदय की अथाह नीली गहराइयो मे से उठ कर इस नाम रूप वाले जगत के ऊपर शाश्वत सत्य का रूप लहराने लगता है। अर्थात् मैं अनुभव करने लगता हूं कि इस नाम रूप वाले जगत से परे एक शाश्वत सत्य है जो अनादि और अनन्त है।

कवि कहना चाह रहा है कि मेरे हृदय मे उमडने वाली ये नवीन भावनाएं उसी शाश्वत सत्य का स्वरूप हैं।

५५ शान्ति और क्रान्ति

इस कविता मे जीवन मूल्यो में हो रहे नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तनो की ओर कवि सकेत कर रहा है। आज के इस तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे युग मे मानव जीवन के नवीन मूल्यो की स्थापना कर रहा है। वह अपनी गति के अवरोधक प्राचीन का मोह त्याग नव-मानवता का निर्माण करने मे प्रयत्नशील है।

शान्ति चाहिए शान्ति .... कल उसको।

शब्दार्थ—रजत=रुपहली, चाँदनी के समान शीतल। अवकाश=विश्राम, स्थान।

भावार्थ—कवि कहता है कि मानव को शान्ति चाहिए। मानव मन का स्वरूप है, वह चिन्तक है इसलिए उसे चाँदनी जसा शीतल विश्राम चाहिए जिससे वह शान्ति के साथ चिंतन कर सके। मानव आत्मा का स्वरूप भी है इसलिए आत्मा को उन्नत बनाने के लिए ज्ञान का महान प्रकाश भी चाहिए। परन्तु मानव शरीर रूप भी है इसलिए उसे इस शरीर को सुरक्षित रखने के लिए अन्न, वस्त्र और घर भी चाहिए। आज तो उसके सम्मुख प्रमुख रूप से अपने शरीर को सुरक्षित रखने की ही समस्या है और शरीर मन मे उठे विचारो के अनुसार तुरन्त उनकी पूर्त्ति कर आनन्द मनाना चाहता है। अर्थात् शारीरिक आवश्यकताओ—अन्न, वस्त्र, घर आदि ही आज प्रमुख हैं। आत्मा तो वह भविष्य मे बन लेगा। भाव यह है कि आज मानव के सम्मुख सूक्ष्म आत्मा को उन्नत करने की समस्या नही है। आज तो वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्त्ति चाहता है। जब शारीरिक आवश्यकताएं पूरी हो जायेंगी तब वह आत्मा को उन्नत बनाने की चिन्ता करेगा। पहले शरीर है फिर आत्मा।

हाय, प्रनागा, ... ग्रहता शासित !

शब्दार्थ—ग्रग-जग = जड़ ससार । मत्त = मस्त । गरिमा = गौरव । स्वर्णांकुश = सुनहली ग्रकुश । ग्रहता = ग्रभिमान ।

भावार्थ—हाय, ग्राज ग्रभागा मानव जड़-संसार के वाहरी जाल मे बुरी तरह से उलझ गया है। वह वाह्य ग्रर्थात् भौतिक जीवन को ही सब कुछ समझ रहा है जहाँ युगान्त का प्राचान युग की मान्यताग्रो की समाप्ति का भयकर ग्रन्धकार छा रहा है। ग्रर्थात् मानव प्राचीन मान्यताग्रो का तो विरोध कर रहा है। ग्रौर ग्रभी नवीन मान्यताग्रो का सृजन नही कर पाया है इसलिए उसके सामने भयानक ग्रन्धकार सा छा रहा है। ग्राज मनुष्य के भीतर का ससार ग्रर्थात् उसकी ग्रात्मा खोखली, सूनी, जीवित रहते हुए भी मृत के समान ग्रर्थात् निर्जीव, ग्रौर छाया के समान ग्रस्पष्ट, धुँधली ग्रौर ग्रस्तित्व हीन हो रही है। मानव प्राचीन सडे-गले सस्कारो से परिचालित हो रहा है। प्रत ग्रर्थात् विगत का मोह उसे सदैव पीडित करता रहता है।

ग्राज मनुष्य सकटो में घिरा हुग्रा है। ग्राज उनके कदम सकटो रूपी खाई-खन्दको, खोहो (गुफाहो), सुनसान रास्तो ग्रौर रेगिस्तान मे भटक रहे हैं। ग्रर्थात् ग्राज वह ग्रपना लक्ष्य भूल इधर-उधर भटक रहा है। ग्राध्या-त्मिकता को त्याग भौतिकता के वीहड़ वन मे भटकता फिर रहा है। ग्राज का हाथी के समान मदमस्त भौतिकवादी युग ग्रपने ही वर्ग के भयकर बोझ मे दब दलदल मे फँस गया है ग्रर्थात् ग्रत्यधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण ने ग्राज मानव को पथभ्रष्ट कर सकटो मे फँसा दिया है। ग्राज जीवन की तृष्णा-भौतिक सुख-सुविधाग्रो की तृष्णा उसके घायल पैरो मे चक्की के पाटो सी लिपट वेडी वन गई है। ग्राज वह भौतिक तृष्णा के कारण ग्राध्यात्मिक चिन्तन से विरत हो ग्रागे बढना भूल गया है। ग्राज का मानव धृष्ट, निरकुश, स्वेच्छाचारी वन शील के सुनहले ग्रकुश के प्रति ग्रसहिष्णु हो उठा है। शील के वन्धनो को स्वीकार नही करता। ग्राज उसका ग्रभिमान ही उसका मार्ग दर्शक वना हुग्रा है।

सोच रहा मैं, · ··· ··· चक्र अकुण्ठित !

शब्दार्थ—महत्=महान । कायिक=शारीरिक । नि सशय=निश्चित रूप से । नियित=भाग्य । जैवी=जीवन सम्बन्धी, सासारिक । भागवत=ब्रह्म सम्बन्धी । सम्प्रति=पूरी तरह से । अकुण्ठित=निरन्तर, बिना रुके ।

भावार्थ—कवि कहता है कि मैं आज सोच ही नही रहा बल्कि स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि आज मानव के जीवन मे एक महान् युगान्तर उपस्थित हो रहा है । आज मानव के भौतिक, शारीरिक, प्राण-सम्बन्धी, सूक्ष्म मानसिक स्तर तथा न दिखाई पड़ने वाले आध्यात्मिक लोक बदल रहे है । अर्थात् आज इनसे सम्बन्धित प्राचीन मान्यताएँ खडित हो नवीन मान्यताओ की स्थापना हो रही है । अपने को ईश्वर के समान सर्व शक्तिमान कर्त्ता समझने वाला अर्थात् स्वय अपना स्वामी मानव भी जो युग-युग से मानव-जगत को लोक के भाग्य को सासारिक जीवन और मानसिक चिन्तन को परिचालित करता आ रहा है, अब बदल रहा है । इस सासारिक जीवन सम्बन्धी स्थिति से लेकर उच्च ब्रह्म-चिन्तन तक पहुँचने का परिवर्तन का चक्र निरन्तर अबाध गति से घूम रहा है । अर्थात् सासारिक जीवन से लेकर उच्च आध्यात्मिक चिन्तन की क्रिया निरन्तर गतिशील है ।

आज घोर जन · · स्थूल चरण धर !

शब्दार्थ—अतद्रित=चैतन्य, जागरण देने वाला । अविरत=निरन्तर । उद्जन=हाइड्रोजन । दारुण=भयानक । निरत=व्यस्त । अतिक्रम कर=पार कर । अकथित=अवर्णनीय ।

भावार्थ—कवि कहता है कि मैं मानव के अत्यधिक व्यस्त भयकर कोलाहल से भरे इस ससार मे आज भी स्वर-शब्द-रहित उस चैतन्य सगीत को गूँजता हुआ सुन रहा हूँ । उस सगीत को जो चेतन प्रदान करने वाला है । यह चतन्य सगीत मेरे मन के कानो मे निरन्तर गूँजा करता है । अर्थात् मेरा सूक्ष्म मन इस सगीत को सुन मानव के भावी आध्यात्मिक विकास के प्रति आश्वस्त रहता है । इस अणु-बम और उद्जन-बम के भयकर विनाशकारी युग मे भी मानव के हृदय मे सूक्ष्म मे सूक्ष्मतर अमर शक्तियाँ निरन्तर सृजन के कार्य मे लगी हुई हैं । अर्थात् इस वर्तमान घोर भौतिकतावादी और विनाश

के भयकर साधनो से युक्त युग मे भी मानव भावी विकास, शान्ति और सुख के मानसिक स्वप्न देखता रहता है। दार्शनिक मानव-कल्याण के निमित्त निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं और भावी मानव-जीवन के ऐसे स्वप्नो का उनके पास अक्षय वैभव है। अर्थात् ऐसे स्वप्न सदैव चलते रहते हैं। ये स्वप्न ऐसे हैं जो युग के यथार्थवादी दृष्टिकोण की सीमा पार कर अवर्णनीय शोभा के लोको की सृष्टि करते हैं, मानव-जीवन के भावी सुन्दर रूप की कल्पना करते हैं और उन्हें प्रतिपल मनुष्यो के सम्मुख प्रस्तुत करते रहते हैं। मानव अपलक दृष्टि से इन कल्पनाओ की ओर आकर्षित होता रहता है। इस प्रकार विनाश के स्थूल उपकरणो और क्रियाओ के भीतर सूक्ष्म सृजन का चक्र अवाध गति से चल रहा है। अर्थात इस वतमान विनाश के गर्भ मावी सुख और शान्ति का रहस्य छिपा हुआ है।

कवि कपोल कल्पना · आमूल मनुज जग।

शब्दार्थ—अनुभूत = अनुभव किया हुआ। निभ्रात = भ्रांतिहीन, शुद्ध। आरोहण = ऊपर उठना। पूरक = पूर्णता प्रदान करने वाला। विवर्त = रूपान्तर। आमूल = पूर्ण।

भावार्थ—कवि कहता है कि मेरी यह वात कवियो की कपोल-कल्पना के समान सारहीन नहीं है। यह तो अनुभव किया हुआ सत्य है। यह भयकर भ्रमो मे भरे इस युग का निर्मल सत्य है। मनुष्य की चेतना अव निरन्तर प्रगति की ओर उठती चली जा रही है। अपनी इस यात्रा मे वह मार्ग की वाधाओ से सघर्ष करती है, चोट खाकर कराह उठती है परन्तु हताश न हो सदैव विजयी के समान आगे बढ़ती चली जा रही है। अर्थात् भौतिक वाधाएँ मानव की चेतना की गति को कुण्ठित करने मे असमर्थ रहती हैं। उसका चिन्तन निरन्तर विकासमान रहता है।

कवि कहता है कि इसीलिए मैं शान्ति, क्रान्ति के सहार और उससे उत्पन्न सृजन को, जय-पराजय, प्रेम-घृणा, उन्नति-अवनति को, आशा-कुण्ठा, युग के सुन्दर और कुरूप रूपो को एक साथ अपनी भुजाओ मे समेटे हुए हूँ। क्योकि ये सब मानव-प्रगति के विभिन्न सोपान हैं। ये परस्पर विरोधी भावनाएँ और गतियाँ परस्पर एक दूसरे को पूर्णता पदान करने वाली हैं।

मैं उन्हे अभिन्न मान कर इस युग मे हो रहे परिवर्तनो से उत्पन्न रुदन और हास्य मे बीच ध्यानावस्थित बैठा हूँ। अर्थात् इन्हे मानव-प्रगति का प्रतीक मान अविचलित हूँ, पूर्ण आश्वस्त हूँ कि मानवता का भविष्य उज्ज्वल है। यदि मानव का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और वैयक्तिक दृष्टिकोण बदल रहा है, उसमे परिवर्तन हो रहा है तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है। यदि मानव की चेतना विश्रृंखलित न रह कर अब सामूहिक चिन्तन का रूप धारण कर रही है, यदि वह बाहरी रूप से वर्ग हीन समाज की स्थापना का प्रयत्न कर रही है, यदि भूतकाल का मानसिक चिन्तन धारणायें, मान्यताएं आज छिन्न-भिन्न हो रही है तो इसमे आश्चर्य क्या है ? इसमे आश्चर्य की क्या बात है यदि आज यह मानव-जगत पूर्ण रूप से बदल रहा है।

स्वय, युगों का ... कुसुमाकर सा।

शब्दार्थ—ईश्वर = स्वामी। निश्चेतन = अचेतन। उपचेतन = अर्द्ध चेतन। अन्तश्चेतन = आन्तरिक चेतन। आवर्त = जल का भँवर। सयोजित = एकत्रित। वर्जनाओ = रोक। नि सृत = निकलना। सक्रमण = आगे बढना। अवतरित = उत्पन्न। स्फुरित = कम्पित। तडित् = बिजली। कुसुमाकर = फूलो का गुच्छा।

भावार्थ—आज युगो का निर्माण करने वाला मानव स्वय बदल रहा है। आज अचेतन, उपचेतन, अन्तश्चेतन के ससार बदल रहे है। अर्थात् आज इनसे सम्बन्धित प्राचीन मान्यताओ मे परिवर्तन हो रहे है। (मनोविज्ञान मे मन की उपर्युक्त तीन स्थितियाँ मानी गई है।) आज इनसे सम्बन्धित नए मूल्यो, नई धारणाया का विकास हो रहा है। हमारे जो सम्पूर्ण सास्कृतिक सम्बन्ध पहले प्राचीन धारणाओ पर आधारित रहते थे आज उनके रूप मे परिवर्तन हो रहा है। सस्कृति सम्बन्धी हमारी धारणाएं बदल रही है। हमारी प्राचीन मान्यताएं परिवर्तन के चक्र मे पड, मथी जाकर आज नए रूपो मे इस पृथ्वी पर एकत्रित हो रही है। अर्थात् सस्कृति सम्बन्धी हमारे मानदड बदल रहे हैं। प्राचीन बन्धनो, रूढियो और वजनाओ को छिन्न-भिन्न कर आज

हमारे प्राणो का रथ, हमारे जीवन के मार्ग को विस्तृत कर तूफानी गति मे आगे बढ रहा है।

आज हमारी प्राचीन नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताए और चिन्तन अपनी प्राचीन सीमाओ को भग कर आगे बढ रहा है। उसके आलोक में नए आदर्शों की, सौन्दर्य के नवीन तत्वो का सृजन और स्थापना हो रही है। आज नया मानव अपना स्वामी बन ईश्वर के समान इस धरती पर अवतरित हो रहा है। नवीन चिन्तन की स्वर्ण रश्मियाँ थामे, मुस्कान उत्पन्न करने वाली ऊषाओ के रथ पर वह आगे बढा चला जा रहा है। उसके जीवन मे ऐसी चेतना भर उठी है मानो लहराती लताओ से ढके बादल पर बिजली सी कौंध उठी हो। उसका चेतन-स्वर देवताओ की असख्य वीणाओ के स्वरो के समान ऐसा मनोरम हो उठा है मानो झरने कलकल-नाद करने बह रहे हो। या नए फूलो के गुच्छो पर उन्मत्त भ्रमर गु जार कर रहे हो।

(१) इस छन्द की अन्तिम पक्तियो मे प्राकृतिक उपमाओं द्वारा कवि मानव के उज्ज्वल, पावन, मधुर भविष्य की कल्पना कर रहा है।

भरते शत सीत्कार . . .. रूपान्तर कर।

शब्दार्थ—सीत्कार=ठडी गहरी साँसे, सी-सी करना। गत=बीते हुए। नव मधु=नवीन वसन्त। पावक=अग्नि। गोपनतम=सर्वाधिक गुप्त। गढ रहे=बना रहे। अति इन्द्रिय=अतीन्द्रिय, अलौकिक।

भावार्थ—आज बाह्य रूप मे सैकडों बीते हुए पतझड के सीत्कार कर रहे है। अर्थात् बाह्य रूप से आज पतझड के समान भयकर विनाश का दृश्य उपस्थित हो रहा है। परन्तु जिस प्रकार पतझड की शीतल आन्तरिक रूप मे छिपी अग्नि स्वर्ग के समान मनोरम नए वसन्त को जन्म देती है उसी प्रकार आज भयकर विनाश के भीतर भावी उज्ज्वल मानव जीवन की शक्ति छिपी हुई है। आज मनुष्य का मन, उसका चिन्तन आत्मा के गहनतम रहस्यो का उद्घाटन कर, अधिक पूर्ण हो, बाहरी रूप से खुल रहा है। अर्थात् आज के चिन्तन ने आत्मा के गहनतम रहस्यो को जान उन्हे बाह्य जगत में साकार रूप मे प्रकट कर दिया है।

आज विनाश के साधन रूपी हाथ नए मानव की रचना कर रहे हैं। आज मानव की इन्द्रियाँ नए रूप धारण कर रही हैं। आज उनकी चेतना मे विकास हो रहा है और अब वे अलौकिक बन गई हैं। अर्थात् आज मानव अपनी इन्द्रियो के नए रूप एव उपयोग के कारण अलौकिक रूप से शक्ति-सम्पन्न बन गया है। अब अपना स्वामी बदल रहा है, अब मानवता का नया स्वरूप प्रस्तुत मानव का हृदय, मानव का चिन्तन बदल रहा है।

(१) इस कविता मे मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति कवि की दृढ आस्था अभिव्यक्त हुई है। उसे विश्वास है कि वर्तमान विनाश के भीतर भावी उज्ज्वल मानवता का रहस्य छिपा हुआ है। विनाश और सृजन परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। मानवता के वर्तमान विनाशकारी रूप को देख भयकर रूप से मस्त और निराश व्यक्तियो के लिए कवि का यह आशाभरा उद्बोधन अमृत के समान है।

५६ यह धरती कितना देती है

प्रस्तुत कविता मे कवि मानव-जीवन के वास्तविक ऐश्वर्य और उपलब्धि के प्रति पैसों और मेम के बीजो के माध्यम से अप्रत्यक्ष सकेत कर रहा है। धन-सग्रह लालसा मानव की स्वार्थ सकुचित प्रवृत्ति है।

मैंने छुटपन में   तृष्णा को सींचा था।

भावार्थ—कवि अपने बचपन की एक घटना का वर्णन कर रहा है—

बचपन मे एक दिन मैंने सबसे छिपा कर जमीन मे पैसे गाड दिये थे और सोचा था कि जिस प्रकार बीज बोने से उनमे से पौधे निकलते हैं और उन पर फल लगते हैं उसी प्रकार इन पैसो से मे पैसो के फल देने वाले प्यारे पेड उगेंगे और उन पर चाँदी के रुपयो की झनकार करती हुई फसल लगेगी। अर्थात् इन पेडो पर रुपये लगेंगे। और उन रुपयो को पाकर में फल-फूल कर अमीर बन जाऊंगा और मोटा सेठ हो जाऊंगा। परन्तु वह धरती ऐसी बजर निकली कि उसमे से एक भी अकुर नही फूटा। उस बाँझ धरती ने एक भी पैसा बाहर नही निकाला। अर्थात् पैसे मिट्टी मे दबे पडे रह गए। धनी मोटा सेठ

वनने के मेरे सपने न जाने कहाँ और कैसे धूल मे मिल गए। मैं मोटा सेठ न वन सका। मैं निराश होकर अपनी वाल-सुलभ कल्पना द्वारा कि उन पैसो के पेड उगेंगे, वहुत दिनो तक उनके उगने की प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु मै अवोध था। मैंने धरती मे गलत वीज वोए थे, पैसे रूपी ऐसे वीज वोए थे जो कभी नही उगते। मैंने उन पैसो को वोकर अपने मन मे यह ममता पाली थी कि मैं अमीर वन जाऊँगा और अमीर वनने की इस तृष्णा के कारण उन्हें सीचता रहा था।

अर्धशती हहराती . .. मैं विस्मय से।

शब्दार्थ—अर्धशती = पचास वर्ष, एक शताब्दी का आधा। ऊदी = उमडती।

भावार्थ—जब मैंने वे पैसे वोए थे तव से ससार के जीवन मे तूफान सा मचाते पचास वर्ष वीत गई हैं। इस वीच मेरे जीवन मे अनेक वसन्त और पतझड की ऋतुएं आई—सुख और दुख आए—तथा अनजाने ही वीत गई। ग्रीष्म ऋतुएं भयकर रूप से तपी, वर्षा ऋतुओ मे आकाश मे मेघ घहराए, शरद ऋतुएं मुस्कराती आई, हेमन्त ऋतुओ मे हम शीत से थर-थर कांपे, पतझडो मे वृक्षो के पत्ते झडे और फिर वसन्त आने पर वन खिल उठे। अर्थात् विभिन्न ऋतुएं वर्षों तक अपना प्रभाव दिखाती रहीं। और जव एक वार अपने हृदय मे धरती को सरावोर कर देने की गहरी उमडती लालसा लिए गहरे कजरारे (काले) वादल धरती पर वरसे तो मैंने कौतूहल वश, एक दिन अपने आंगन के कोने वाली मिट्टी की गीली तह मे यो ही अपनी उंगलियो से सहला कर सेम के वीज दवा दिए। मानो मैंने धरती के अचल मे मणि और माणिक्य वांध दिए हो। अर्थात् सेम के वे वीज मणि-माणिक्यो के समान लाल, उज्ज्वल और मूल्यवान थे। फिर मैं इस छोटी सी घटना को भूल गया। यह घटना ऐसी महत्वपूर्ण भी नही थी कि उसे मैं याद रखता। किन्तु एक दिन सन्ध्या समय जव मैं अपने आंगन मे टहल रहा था तो मैंने जो दृश्य देखा उसे देख मे हर्ष और आश्चर्य से पागल सा हो उठा।

देखा, आंगन के कोने . . वढती जाती है।

शब्दार्थ—नवागत = नए आने वाले। डिम्व = अडा। निर्निमेष = अपलक।

भावार्थ—उस सन्ध्या को मैंने देखा कि मेरे आँगन के कोने मे कई नए आने वाले फूल अपने छोटे-छोटे से छाते ताने खडे हुए हैं। (सेम के बीजो मे अकुर फूट आए थे और अकुरो के खुले दो-दो नन्हे पत्ते छाते के सामने प्रतीत हो रहे थे।) मैं उन्हे छाता कहूँ या जीवन की विजय पताकाएँ कहूँ। अर्थात् वे ऐसे लग रहे थे मानो उनके रूप मे जीवन अपनी विजय की घोषणा कर रहा हो। या वे नन्हे से पत्ते ऐसे लगते थे मानो वे अकुर उनके रूप मे अपनी नन्ही-नन्ही सी प्यारी हथेलियाँ फैलाए खडे हो। इनमे से उन्हे चाहे जो समझ लो मगर वे ऐसे लग रहे थे मानो अडे तोड कर बाहर निकले चिडियो के बच्चे उल्लास से भर अपने पख फैला ऊपर आकाश मे उड जाने को उत्सुक हो रहे हो। (यहाँ अकुरो के दो-दो पत्ते चिडियो के बच्चो के खुले पंखो के समान हैं।)

सहसा मुझे याद हो आया कि मैंने कुछ दिन पहले आँगन में सेम के बीज बोए थे। और अब उन्ही बीजो मे से नन्हें से पौधो की यह पल्टन निकल कर गर्व से भरी अपने नन्हे छोटे पैरो को सैनिको के समान पटकती आगे बढती चली जा रही हो।

तब से उनको देखता . . . बूटों से।

भावार्थ—उस समय से मैं उन्हे बराबर देखता रहा। वहाँ धीरे धीरे असख्य पत्तो से लद कर सेम की अनेक झाडियाँ खडी हो गई। वे ऐसी लगती थी मानो वहाँ अनेक हरे-भरे मखमली चँदोवे (शामियाने) टाँग दिए गए हो। सेम की बेलें बल खाती हुई, बाडे की टटिया का सहारा ले लहराती हुई आँगन मे फैल गई, छा गई। मानो हरियाली के सैकडो झरने पृथ्वी से फूट ऊपर को ओर फूट पडे हो। (हरी बेलें हरियाली के फुव्वारो सी लगती थी।) मैं यह देख कर आश्चय चकित रह गया कि वश किस प्रकार आगे बढता है। उन लहराती साँवली बेलो पर लगे नन्हे-नन्हे फूल तारो के समान चारो ओर छिटके हुए ऐसे लगते थे मानो हरियाली के समुद्र का सतह पर झागो के छींटें छा रहे हो, अथवा अमावस्या के साँवले आकाश पर तारो रूपी हँसी झलक रही हो, अथवा काली वेणी मे मोती गुथे हुए हो, अथवा आँचल मे रुपहली बूटे टाँक दिए गए हों।

मोह, समय पर .... प्यारी फलियाँ !

भावार्थ—समय आने पर उन वेलो मे असख्य फलियाँ लद गई । वे फलियाँ कितनी अधिक, कितनी प्यारी थी । वे फलियाँ पतली और चौडी थी । वे इतनी अधिक थी कि उनका गिनना असम्भव था । वे उँगलियो सी लम्बी-लम्बी नन्ही-नन्हीं तलवारो की तरह मुडी हुई, पन्ने के सुन्दर हारो सी थी । कवि कहता है कि मेरी बात को झूठ मत समझना । जिस प्रकार चन्द्रमा की कला नित्य-प्रति बढती जाती है उसी प्रकार वे फलियाँ नित्य प्रति बढ़ती जाती थी । वे सच्चे चमकीले मोतियो की लडियो के समान ढेर-की ढेर खिलती जाती थी और असख्य गुच्छो के रूप मे कचपचिया तारो (तारों के छोटे-छोटे समूह) की भाँति झिलमिलाती हुई चमकती रहती थी । उन वेलो पर से इतनी फलियाँ उतरी कि हमने जाडो भर खाई । पास-पडोस मे परिचित या अपरिचित जितने भी लोग थे सबको बाँटी और सुबह-शाम घर-घर मे पकाई गई । भाई-बन्दो, मित्रो, महमानो, भिखारियो तथा मुहल्ले के सारे लोगो ने दिन-रात उन फलियो को खूब मन भर-भर कर खाया । वे फलियाँ कितनी अधिक र कितनी प्यारी थी ।

यह धरती कितना .. .. समझ सका हूँ ।

भावार्थ—कवि कहता है कि यह धरती माता ! अपने प्यारे पुत्रों को ितना अधिक देती है । अफसोस, मैं बचपन मे धरती माता के इस महत्व को ही समझ पाया था । इसी कारण मैंने स्वार्थ और लोभ के कारण धरती मे से बोए थे । मैं इस बात को अब समझ पाता हूँ कि यह धरती रत्नो को दा करने वाली इस धरती से सेम की फलियो जैसे सबको आनन्द और तृप्ति दान करने वाले रत्न उत्पन्न होते हैं न कि स्वार्थ और लोभ के प्रतीक पैसे ।

इसमे सच्ची समता .. .. वैसा ही पाएँगे ।

भावार्थ—कवि धरती माता के महत्व को समझ लेने के उपरान्त कहता है—

इस धरती में हमे समता के बीज बोने में अर्थात् ऐसी भावनाएं उत्पन्न करनी हैं । जिनमे मानव-मानव का भेद समाप्त हो जाय । इसमे हमे शक्ति के

बीज बोने हैं। अर्थात् अपनी शक्ति को ऐसे कामो मे लगाना है जो सबको आनन्द और सुख प्रदान करें। इसमे ऐसी शुभ भावनाएँ उत्पन्न करनी हैं जिनसे मानव-मानव से प्रेम करने लगे। ऐसा हो जाने पर ही ससार मे मानवता की सुनहली फसल लहलहाने लगेगी। अर्थात् संसार मे मानवता का साम्राज्य छा जायेगा। जीवन के परिश्रम से सारी दिशाएँ हँस उठेगी। मानव श्रम द्वारा अपने जीवन को सुखमय बना लेगा। हम जैसा कार्य करेंगे उसका वैसा ही फल पाएँगे।

(१) इस कविता द्वारा कवि रुपए-पैसे को तुच्छ घोषित कर रहा है। अब कमाने की हमारी प्रवृत्ति में स्वार्थ और लालच की संकीर्ण भावना छिपी रहती है। धनी व्यक्ति सकुचित मनोवृत्ति का होता है। परन्तु परिश्रमी व्यक्ति उदार हृदय का धनी होता है। हम पैसा पैदा कर उस पैसे को सबके कल्याण और आनन्द के लिए खर्च नही करते परन्तु परिश्रमी व्यक्ति सेम की फलियाँ पैदा कर उन्हे समान उदार भाव से परिचित-अपरिचित सबको बाँटता है और उन्हे पाकर सब आनन्दित होते हैं। अत परिश्रम की सार्थकता तभी है जब उससे उत्पन्न सुख और आनन्द का सब लोग समान रूप से उपभोग कर सकें।